ISSN 0976-0830

Mānaviki

A PEER REVIEWED INTERDISCIPLINARY JOURNAL OF HUMANITIES & SOCIAL SCIENCES

Volume 12 • Number 1 & 2 • 'Varsh Pratipada' & 'Vijaya Dashami', April & October 2021

विशेषांक

(संगोष्ठी कार्यवृत्त)

: राष्ट्रीय संगोष्ठी :

भारत का स्वातंत्र्य समर : गोरखपुर परिक्षेत्र के विशेष संदर्भ में

भाद्रपद कृष्ण द्वादशी एवं त्रयोदशी, युगाब्द-5123, वि.सं. 2078

तदनुसार 16 एवं 17 अक्टूबर, 2021 ई.

Editors

Pradeep Kumar Rao

Om Jee Upadhyay

The Journal of Maharana Pratap Mahavidyalaya, Jungle Dhusan, Gorakhpur (U.P.)

Mānaviki

ISSN 0976-0830

Mānaviki

A Peer Reviewed Interdisciplinary Journal of Humanities & Social Sciences

Editorial Advisory Board

U.P. Singh, Ex Vice Chancellor, V.B.S. Purvanchal University, Jaunpur

Ram Achal Singh, Ex Vice Chancellor, R.M.L. Awadh University, Faizabad and Ex Chairman, Higher Education Service Commission (HESC), Uttar Pradesh

K.B. Pandey, Ex Vice Chancellor, Chhatrapati Shahu Ji Maharaj University, Kanpur and Ex Chairman, Public Service Commission, Uttar Pradesh

Makkhan Lal, Director, Delhi Institute of Heritage Research and Management, New Delhi

Mrinal Shankar Raste, Ex Vice Chancellor, Symbiosis International University, Pune

Surendra Dubey, Ex Vice Chancellor, Siddhartha University, Kapilvastu, Siddharthanagar

V.K. Singh, Ex Vice Chancellor, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Shri Prakash Mani Tripathi, Vice Chancellor, Indira Gandhi National Tribal University, Amarkantak (M.P.)

Chandrashekhar, Vice Chancellor, Raja Mahendra Pratap Singh Vishwavidyalaya, Aligarh

Murli Manohar Pathak, Vice Chancellor, Sri Lal Bahadur Shastri Central Sanskrit University, New Delhi

Rajesh Kumar Singh, Vice Chancellor, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

A.K. Singh, Vice Chancellor, Mahayogi Guru Gorakhnath Ayush Vishwavidyalaya, Gorakhpur

A.K. Vajpai, Vice Chancellor, Mahayogi Gorakhnath University, Gorakhpur

Sadanand Prasad Gupta, Ex Executive Chairman, U.P. Hindi Sansthan, Lucknow

Shivajee Singh, Professor, Ancient History, Archaeology and Culture, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

V.K. Srivastava, Professor, Geography, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Pratibha Khanna, Professor, Education, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

S.S. Das, Professor, Chemistry, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

D.K. Singh, Professor, Zoology, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Rajawant Rao, Professor, Ancient History, Archaeology and Culture, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Himanshu Chaturvedi, Professor, History, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Harsh Sinha, Professor, Defence and Strategic Studies, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Shikha Singh, Professor, English, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Divya Rani Singh, Professor, Home Science, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Shailja Singh, Professor, Education, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Shobha Gaur, Professor, Education, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Raj Sharan Shahi, Professor, Education, Bhimrao Ambedkar Central University, Lucknow

Vivek Nigam, Professor, Economics, Ewing Christian College, Prayagraj

Pragya Mishra, Professor, Ancient History, Ram Manohar Lohia Awadh University, Faizabad

Rajesh Singh, Professor, Political Science, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Mahesh Kumar Sharan, Professor, Magadh University, Bodhgaya (Bihar)

Vinod Kumar Singh, Professor, Defence & Strategic Studies, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Mrityunjay Kumar, Renowned Journalist

ISSN 0976-0830

Mānaviki

A PEER REVIEWED INTERDISCIPLINARY JOURNAL OF HUMANITIES & SOCIAL SCIENCES

Volume 12 • Number 1 & 2 • 'Varsh Pratipada' & 'Vijaya Dashami', April & October 2021

Editors

Pradeep Kumar Rao
Principal
Maharana Pratap Mahavidyalaya
Jungle Dhusar, Gorakhpur

Omjee Upadhyay
Director
Indian Council of Historical Research
New Delhi

Co-Editor

Subodh Kumar Mishra
Asstt. Professor, Ancient History,
Archaeology & Culture Department
Maharana Pratap Mahavidyalaya
Jungle Dhusar, Gorakhpur

Abhishek Singh
Asstt. Professor
Defence & Strategic Studies
Maharana Pratap Mahavidyalaya
Jungle Dhusar, Gorakhpur

Ikshwaku Pratap Singh
Asstt. Professor
Ancient History, Archaeology & Culture Department
Maharana Pratap Mahavidyalaya
Jungle Dhusar, Gorakhpur

The Journal of
Maharana Pratap Mahavidyalaya
Jungle Dhusan, Gorakhpur (U.P.)

This Journal is a Peer Reviewed & *Referral* Volume.

ISSN- 0976-0830

Vol. 12 • No. 1 & 2 • 'Varsh Pratipada' & 'Vijaya Dashami', April & October 2021

Manaviki, an interdisciplinary ***refereed & peer reviewed*** journal of Humanities and Social Sciences is a biannual (Varsh Pratipada and Vijaya Dashami, i.e. April and October months of a year) and bilingual journal of Maharana Pratap Mahavidyalaya, Jungle Dhusan, Gorakhpur (UP).

Copyright of the published articles, including abstracts, vests in the Editors. The objective is to ensure full Copyright protection and to disseminate the articles, and the journal, to the widest possible readership. Authors may use the article elsewhere after obtaining prior permission from the editors.

Research Papers related to Humanities and Social Sciences are invited for publication in the journal. Research papers, book reviews, Subscription and other enquiries should be sent to – Subodh Kumar Mishra, Maharana Pratap Mahavidyalaya, Jungle Dhusan, Gorakhpur-273014 (U.P.), Mob. : 9452971570, 6394315107. You may also e-mail your contributions and correspondence at *manavikijournals@gmail.com or mpmpg5@gmail.com*

Guidelines for Contributors given on the inner side of the back cover.

The Editors and the Publisher can not be held responsible for errors and any consequences arising from the use of information contained in this journal. The views and opinions expressed do not necessarily reflect those of the editors and the publisher.

Designed & Printed at : Moti Paper Convertors, Betia Raj House, Betiahata, Gorakhpur

Subscription Rates

	Individual		Institutional	
Annual	Rs. 300	US $ 30	Rs. 500	US $ 50
Five Years	Rs. 1250	US $ 80	Rs. 2000	US $ 125
Life (15 Years)	Rs 2500	US $ 150	Rs. 4000	US $ 200

सम्पादकीय ...

भारत का स्वातंत्र्य समर एक ऐसी ऐतिहासिक घटना है, जिसने भारत ही नहीं विश्व के अन्य भू-भागों पर भी अपनी छाप छोड़ी हैं। भारत के इस स्वातंत्र्य समर की पूर्णाहुति 15 अगस्त सन् 1947 ई. को देश की स्वतंत्रता के साथ हुई। भारत की राष्ट्रीय स्वाधीनता कैसे आई? क्या वह सिर्फ किसी एक महान व्यक्ति, किसी एक वर्ग या एक पार्टी की बदौलत आई? क्या किसी एक स्थान विशेष की घटना ने भारत को स्वतंत्र कराया? यदि हम उपरोक्त प्रश्नों का सूक्ष्म विश्लेषण करेंगे तो हम पाएगें कि राष्ट्रीय स्वाधीनता की प्राप्ति का श्रेय असंख्य व्यक्तियों, विभिन्न वर्गों एवं विभिन्न घटनाओं को है। यह श्रेय उन सभी ज्ञात-अज्ञात व्यक्तियों को जाता है जो देश की स्वाधीनता के लिए शहीद हो गए, जिन्होंने हँसते-हँसते फाँसी का फन्दा चूम लिया, जिन्होंने अपने जीवन के स्वर्णिम बसन्ती दिनों को काल कोठरी अथवा काले पानी के स्याह अंधियारों में न्यौछावर कर दिया। देश की स्वतंत्रता का श्रेय उन वीर सपूतों को है जिन्होंने पराधीनता की गर्मी से झुलसे आजादी के पौधे को बचाने के लिए, उसे हरा-भरा करने के लिए और उसे उत्तरोत्तर विकसित करने के लिए अपने रगों में बहने वाले लहू के एक-एक कतरे से सींचा। आजादी के इस संग्राम में हिस्सा लेने वाले पूँजीपति, व्यापारी, मजदूर, दस्तकार, जमींदार, किसान, छात्र, शिक्षक, बुद्धिजीवी और वृत्तिजीवी सभी थे। इसमें कोई शक नहीं कि ये विभिन्न वर्ग अपने अलग-अलग विचारधाराओं को लेकर राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम में शामिल हुए थे, तथापि सबका उद्देश्य एक था-देश की आजादी। उपरोक्त सभी वर्गों की भूमिका का समुचित विश्लेषण इतिहास में किया जाना चाहिए।

भारतीय स्वाधीनता संग्राम का रास्ता और स्वरूप सदैव एक नहीं रहा। इसे यूँ कहा जा सकता है कि जैसे गंगा, गंगोत्री से एक क्षीण धारा के रूप में निकलती है और जैसे-जैसे आगे बढ़ती है, वैसे-वैसे आस-पास की सरिताओं को अपने में समेटते हुए विशाल होती जाती है। ठीक वैसी ही स्थिति भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की हुई। इस समर के माडरेट, उग्रवादी, राष्ट्रवादी, क्रांतिकारी, साम्यवादी, समाजवादी एवं गाँधीवादी सभी विचारधाराएं शामिल होती गईं और इसे एक विशाल नद का स्वरूप प्रदान किया। आवेदन-निवेदन से आरम्भ होकर इस संयुक्त नद ने वैधानिकतावादी, स्वदेशी, क्रांतिकारी, सशस्त्र-संग्राम, शांतिपूर्ण सत्याग्रह जैसे अनेक रूप धारण किया। अंततः उपरोक्त समस्त विचारधारा और क्रिया रूपी नद ने जन-आन्दोलन के एक ऐसे विक्षुब्ध महासागर का रूप धारण किया कि पराधीनता और औपनिवेशिक शक्तियाँ उसके प्रबल आघात के सामने न टिक सकीं। परिणामतः भारत का यह

राष्ट्रीय महासमर पूर्ण हुआ और देश पराधीनता के दंश से मुक्त होकर स्वतंत्र हुआ।

भारत के स्वातंत्र्य समर का एक प्रमुख मार्ग जनपद गोरखपुर से भी होकर गुजरता है। गोरखपुर परिक्षेत्र अत्यन्त प्राचीनकाल से मध्य पूर्वी भारत का एक प्रमुख स्थल रहा है। यहाँ मानव गतिविधियों का सातत्य ईसा की सहस्रत्राब्दियों पूर्व से ही परिलक्षित होता है। एक ओर यहाँ सोहगौरा-खैराडीह-इमलीडीह-नरहन इत्यादि मानव सभ्यता से सम्बन्धित आरम्भिक स्थल हैं, तो वहीं दूसरी ओर चौरी-चौरा, डोहरियाँ कला, पैना जैसे स्वतंत्रता संग्राम से सम्बन्धित स्थल भी देखने को मिलते हैं। भारत के स्वतंत्रता संग्राम में गोरखपुर परिक्षेत्र और इससे जुड़ी हुई घटनाओं का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रहा है। हम कैसे भूल सकते हैं चौरी-चौरा की उस ऐतिहासिक घटना को जिसने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को एक नया आयाम दिया। कैसे भूल सकते हैं इसी परिक्षेत्र के अमर शहीद बंधु सिंह को जिन्होंने अनेक अन्यायी और अत्याचारी अंग्रेजों का सिर काटकर तरकुलहाँ देवी के चरणों में अर्पित किया था। कैसे भूल सकते हैं हम पैना के उन वीर सपूतों को जिन्होंने अपना सर्वस्व त्यागकर राणा प्रताप जैसे ही घास की रोटी खायी और तालाबों से पानी पीया किन्तु बर्बर अंग्रेजों से लोहा लेते रहे। डोहरियाँ कला के उन रणबांकुरों को हम कैसे भूल सकते हैं, जिन्होंने अपने सीने पर गोली खाकर अपना जीवन माँ भारती को समर्पित कर दिया। हम कैसे-भूल सकते हैं श्रीगोरक्षपीठ और उसके पीठाधीश्वर ब्रह्मलीन गोपालनाथ जी, योगिराज बाबा गम्भीरनाथ जी एवं ब्रह्मलीन महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज को, जिन्होंने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में न सिर्फ आगे बढ़कर गोरखपुर परिक्षेत्र का नेतृत्व किया, अपितु अपने दूरगामी चिंतन से इस क्षेत्र का शैक्षणिक उन्नयन भी किया। भाईजी के नाम से विख्यात हनुमान प्रसाद पोद्दार जी का योगदान भी अविस्मरणीय है जिन्होंने इस सम्पूर्ण झंझावात भरे माहौल में भी गीता-प्रेस के माध्यम से भारतीय संस्कृति का अबाध प्रसार जनमानस में करते रहे। इसी प्रकार बाबा राघव दास और उनके जैसे ही सैकड़ों ज्ञात-अज्ञात दिव्य व्यक्तित्वों ने भारतीय स्वतंत्रता समर में अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया जिसका वर्तमान में अध्ययन, विश्लेपण एवं जनमानस में उनके उक्त कार्यों का प्रसरण अत्यन्त आवश्यक है।

उपरोक्त इन्हीं प्रकरणों एवं तथ्यों पर विचार-विमर्श करने हेतु महाराणा प्रताप महाविद्यालय, जंगल धूसड़, गोरखपुर ने **''भारत का स्वातंत्र्य समर : गोरखपुर परिक्षेत्र के विशेष सन्दर्भ में''** विपय पर 16-17 अक्टूबर 2021 को दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया। इस राष्ट्रीय संगोष्ठी ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में गोरखपुर परिक्षेत्र के योगदान को नए सिरे से रेखांकित कर उसके विशिष्ट अवदानों से विद्वानों और जनमानस को न सिर्फ जागरूक

किया, अपितु विद्वानों एवं शोधार्थियों को इस दिशा में और अधिक शोध करने को प्रेरित भी किया। इस राष्ट्रीय संगोष्ठी में सम्मिलित विद्वानों, शोधार्थियों के साथ-साथ संगोष्ठी में उपस्थित न हो पाने वाले अनेक विद्वानों ने इस विषय पर प्रस्तुत एवं प्रदत्त शोध-पत्रों/आलेखों के प्रकाशन की इच्छा व्यक्त की थी। उन सभी के आग्रह एवं प्रकाशन की अपनी समृद्ध परम्परा को बढ़ाते हुए हमने उक्त विषय पर 'मानविकी' के विशेषांक को प्रकाशित करने का निर्णय लिया है।

भारत का स्वातंत्र्य समर : गोरखपुर परिक्षेत्र के विशेष सन्दर्भ में विषय पर आयोजित दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी को सम्पन्न कराने हेतु दिए गये सहयोग के लिए मैं उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान के कार्यकारी अध्यक्ष प्रो. सदानन्द प्रसाद गुप्त का मैं हृदय से आभारी हूँ। इस संगोष्ठी के उद्घाटन समारोह में मुख्य अतिथि के रूप में अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना के राष्ट्रीय संगठन सचिव डॉ. बालमुकुन्द पाण्डेय ने अपना अमूल्य मार्गदर्शन दिया साथ ही उ.प्र. शासन के सूचना आयुक्त डॉ. हर्षवर्द्धन शाही का भी मैं हृदय से आभार ज्ञापित करता हूँ जिनके सानिध्य एवं सहयोग से यह संगोष्ठी अपने निर्धारित उद्देश्यों की पूर्णता की ओर अग्रसर हो सकी। महात्मा गाँधी अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र के कुलपति प्रो. रजनीश शुक्ल का भी मैं आभारी हूँ जिन्होंने इस संगोष्ठी को सफल बनाने हेतु अपना अमूल्य मार्गदर्शन दिया। इस राष्ट्रीय संगोष्ठी में दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर के प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग के पूर्व अध्यक्ष एवं आचार्य प्रो. राजवन्त राव, इतिहास विभाग के पूर्व अध्यक्ष एवं आचार्य प्रो. हिमांशु चतुर्वेदी, प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग के अध्यक्ष प्रो. दिग्विजयनाथ मौर्य, सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु, सिद्धार्थनगर के हिन्दी विभाग के आचार्य प्रो. हरीश शर्मा ने अपनी सशक्त एवं प्रभावी उपस्थिति दर्ज करायी। संगोष्ठी में प्रो. महेश कुमार शरण (गया), डॉ. अजय कुमार सिंह (दिल्ली), डॉ. दुष्यन्त शाह (दिल्ली), डॉ. रितेश्वरनाथ तिवारी (आरा), डॉ. प्रवीन कुमार त्रिपाठी (जौनपुर), डॉ. अखिलेश उपाध्याय (देवरिया), डॉ. शत्रुजीत सिंह (कुशीनगर), डॉ. सचिन्द्र मोहन (सिद्धार्थनगर), डॉ. अविनाश प्रताप सिंह (सिद्धार्थनगर), डॉ. अम्बिका तिवारी (कुशीनगर), डॉ. राजेश नायक (आरा), डॉ. ज्ञानप्रकाश मंगलम् (कुशीनगर), डॉ. राजेश कुमार (कुशीनगर), डॉ. सर्वेश शुक्ल (गोरखपुर), डॉ. सलिल कुमार पाण्डेय (सुल्तानपुर), डॉ. संतोष कुमार ओझा (गोरखपुर), डॉ. मुकेश दूबे (कुशीनगर), डॉ. बृजेश पाण्डेय (महराजगंज) आदि विद्वानों के शोध-पत्र सर्वाधिक प्रशंसित हुए। कई विद्वानों ने अपनी अनुपस्थिति के बावजूद अपने-अपने शोध-पत्र प्रकाशन हेतु उपलब्ध कराया। उपर्युक्त

इन सभी विद्वानों का मैं हार्दिक आभार ज्ञापित करता हूँ।

इस राष्ट्रीय संगोष्ठी के सफल आयोजन हेतु भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद (**ICHR**), नई दिल्ली का भी मैं हृदय से आभारी हूँ, जिसके वित्तीय अनुदान से यह सारस्वत अनुष्ठान सफलतापूर्वक पूर्ण हो सका। परिषद के निदेशक द्वय डॉ. सौरभ कुमार मिश्र एवं डॉ. प्रवीन शर्मा ने इस संगोष्ठी में उपस्थित होकर अपने देख-रेख एवं दिशा निर्देशन में यह संगोष्ठी सम्पन्न करायी, अस्तु मैं उन्हें भी हार्दिक आभार ज्ञापित करता हूँ।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि मानविकी का यह विशेषांक भारत के स्वातंत्रता संग्राम में गोरखपुर जनपद के महत्वपूर्ण योगदान को रेखांकित करने में सर्वतोभावेन समर्थ सिद्ध होगा। साथ ही विषय से सम्बन्धित जिज्ञासु पाठकों के लिए भी यह प्रकाशन अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा।

(प्रदीप कुमार राव)

Mānaviki

A Peer Reviewed Interdisciplinary Journal of Humanities & Social Sciences

Volume 12 Number 1 & 2 'Varsh Pratipada' & 'Vijaya Dashami', April & October 2021

CONTENTS

Articles **Pages**

1. गोरखपुर परिक्षेत्र में औपनिवेषिक सत्ता के विरुद्ध जन-प्रतिरोध : मौखिक स्रोत के विशेष संदर्भ में
डॉ. राजेश कुमार नायक 1

2. बांग जोगिनी का स्वतंत्रता आन्दोलन में योगदान
डॉ. मनोज कुमार तिवारी 9

3. गोरखपुर परिक्षेत्र में स्वतन्त्रता आन्दोलन
डॉ. प्रवीण कुमार त्रिपाठी 22

4. 'स्व' का जागरण और चौरीचौरा जनक्रान्ति
डॉ. अजय कुमार सिंह 27

5. भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में गोरखपुर का योगदान
अनिल कुमार त्रिपाठी 41

6. भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में पूर्वांचल की हिन्दी पत्रकारिता का विश्लेषण (दैनिक समाचार-पत्र 'आज' के विशेष सन्दर्भ में)
अखिलेश कुमार उपाध्याय 46

7. भारत का स्वतंत्रता संग्राम : पूर्वी उत्तर प्रदेश में जनमानस की मनोदशा
डॉ. अविनाश प्रताप सिंह 51

8. भारत का स्वतंत्रय समर : जनपद बस्ती के विशेष
डॉ. इक्ष्वाकु प्रताप सिंह 56

9. 1942 की क्रान्ति और कुशीनगर परिक्षेत्र
डॉ. शत्रुजीत सिंह 61

10. भारत का स्वातन्त्र्य समर और जनमानस का ज्वार
('भारत छोड़ो आन्दोलन' के विशेष सन्दर्भ में)
डॉ. यशवन्त सिंह 66

11. भारत छोड़ो आन्दोलन में देवरिया जिले के छात्र रामचन्द्र का योगदान
शचीन्द्र मोहन, अस्मित शर्मा 73

12. 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में ग्राम पैना, जनपद देवरिया का योगदान एवं संघर्ष का इतिहास
प्रो. डी.के. सिंह 76

13. चौरी-चौरा : मात्र घटना नहीं
प्रो. हिमांशु चतुर्वेदी 86

14. भारत के स्वातंत्र्य समर में पडरौना क्षेत्र का योगदान
डॉ. सुबोध कुमार मिश्र 90

15. भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का उत्प्रेरक जलियाँवाला बाग नरसंहार
डॉ. विनोद कुमार 95

16. पुराणों में इतिहास दृष्टि
डॉ. पद्मजा सिंह 104

17. State of U.P. v. Gayatri Prasad Prajapati
Neelank Rao 117

18. संगोष्ठी रिपोर्ट
..... 123

गोरखपुर परिक्षेत्र में औपनिवेषिक सत्ता के विरुद्ध जन-प्रतिरोध : मौखिक स्रोत के विशेष संदर्भ में

डा. राजेश कुमार नायक*

शोध सारांश: बहुप्रचलित है कि इतिहास अतीत और वर्तमान के बीच चलने वाला सतत् संवाद है। इतिहासकार इस संवाद का सूत्रधार होता है। उस संवाद के सूत्र विभिन्न तथ्यों के रूप में बिखरे होते हैं– लिखित दस्तावेजों में, परम्पराओं में और मौखिक साक्ष्यों में। यह सारे तथ्य मनुष्य के आस-पास ही निर्मित होते हैं। इतिहास की रचना एक व्यक्ति करता है जो किसी आर्थिक राजनीतिक तथा सामाजिक सांस्कृतिक परिवेश में रहता है। जीवन और परिवेश की उसकी अपनी समझदारी होती है, उसकी अपनी एक अस्मिता होती है। ये बातें उसके इतिहास लेखन पर विशिष्ट प्रभाव डालती हैं। इस प्रकार व्यक्ति एवं इतिहास के सम्बन्ध दोहरे हो जाते हैं। रेमो आरों के शब्दों में आदमी एक साथ इतिहास का कर्त्ता एवं पात्र दोनों होता है।[1] इतिहासकार अतीत में बिखरें उन तथ्यों में अर्थ तलाशता है, उन्हें संयोजित करता है। ऐसे में मौखिक इतिहास का प्रादुर्भाव 'समष्टि के अतीत की आवाज' के रूप में होता है। अतीत की यह आवाज समाज की मौखिक परम्पराओं एवं मौखिक साक्ष्यों के रूप में निहित होती हैं। इस आवाज को इतिहास लेखन के अनुशासन में निबद्ध कर दिया जाये तो वह **'मौखिक इतिहास'** कहलाता है।

बीजशब्द: इतिहास, मौखिक इतिहास, पूर्वी उत्तर प्रदेश, जन संघर्ष, मौखिक स्रोत, सत्याग्रह, जन-आन्दोलन

यदि इतिहास जनाकांक्षाओं, जनसंघर्ष एवं जन-शक्ति की अभिव्यक्ति है तो मौखिक स्रोतों का महत्व था, है और रहेगा, क्योंकि कभी भी दस्तावेजों में सब कुछ नहीं संजोया जा सकता। इसलिये जनता का इतिहास लिखने के लिये एवं जनता को इतिहास में अवस्थित करने के लिये जरूरी है कि हम स्रोतों के लिये भी उनके पास जायें क्योंकि लिखित दस्तावेजों (जो बहुधा सरकारी होता है) में अधिकांशतय: जनता का पक्ष नहीं होता, जो होता भी है वह अपर्याप्त है और उसका सही प्रयोग नहीं होता। ऐसे में मौखिक इतिहास में साक्ष्य ग्रहण करने हम जनता के करीब जाते हैं और उनके पूछे प्रश्नों तथा उत्तर से जो प्रश्न इतिहास के सामने खड़े होते हैं– उनका जवाब देना

*एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा, बिहार

होता है। मौखिक इतिहास की चुनौती अंशतः इतिहास के इसी अनिवार्य सामाजिक उद्देश्य में निहित होती है। वहीं एक बड़ा कारण यह है कि वह कुछ इतिहासकारों को बेहद उत्तेजित करता है तथा अन्य को बहुत डराता है।[2]

सामान्यतः मौखिक इतिहास के दो हिस्से होते हैं– मौखिक परम्परा एवं मौखिक साक्ष्य। पहली कोटि समष्टि की चेतना में उपजती है। इसमें शामिल किया जा सकता– मिथकों, गाथाओं, लोक-कथाओं, लोकगीतों, किंवदन्तियों और मुहावरों आदि को। इनके रचयिता अज्ञात होते हैं और इनमें से किसी एक व्यक्ति का व्याख्यात्मक हस्तक्षेप पता नहीं चलता। इसका अर्थ यह नहीं कि इनमें कोई व्याख्या का संयोजन नहीं होता। इनमें संजोये मूल्य एवं व्याख्याएँ समष्टि की एवं सार्वजनिक होती है। उनमें वर्ग जाति या धर्म-सम्प्रदाय के पूर्वाग्रह होते हैं फिर भी वे एक समष्टि का प्रतिनिधित्व करते हैं।[3] मौखिक परम्परायें तभी उपस्थित होती हैं जब वह कही जाती हैं। कुछ समय के लिये वह सुनी जा सकती है किन्तु अधिकांशतः वह लोगों के मस्तिष्क में निवास करती हैं। मस्तिष्क स्मृति के माध्यम से संस्कृति को पीढ़ी दर पीढ़ी पहुंचाता है।[4]

भारत में पहली मौखिक इतिहास परियोजना का प्रारम्भ 1966 ई. में दिल्ली स्थित नेहरू मेमोरियल म्यूजियम एवं लाईब्रेरी में शोध-क्रियाओं के लिये किया गया। 1992 ई. तक वहाँ राष्ट्रीय आन्दोलन से सम्बन्धित लगभग 3000 साक्षात्मकार एवं प्रतिलेख हैं। वहाँ पर माउण्टबेटन, खान अब्दुल गफ्फार खान, दलाईलामा, ईरान के शाह, इन्दिरा गांधी, चरण सिंह, व्ही.वी. गिरी, जयप्रकाश नारायण, आचार्य कृपलानी, कमला देवी चट्टोपाध्याय एवं फैज अहमद फैज सहित अनेकों प्रमुख लोगों के साक्षात्कार है।[5]

अरूण गांधी (महात्मा गांधी के पौत्र) तथा हीरो श्रॉफ ने 1982 ई. में नेशनल आर्काइव ऑफ ओरल हिस्ट्री की शुरूआत बम्बई में की। उनका उद्देश्य वहाँ के प्रमुख राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक घटनाओं का लोगों द्वारा प्रथम वर्णन रिकार्ड करना है। इस बीच उन्होंने ब्रिटेन के नेशनल साउण्ड आर्काइब्स के साथ संयुक्त परियोजना की। हीरो श्रॉफ का कहना है– "भारत में मौखिक इतिहास बहुत सम्पन्न हैं, लेकिन उसको रिकार्ड करने में बेहद विपन्न है।" उनका मानना है कि अभी भी यहां यह एक संगठित क्षेत्र नहीं हैं।[6]

पूर्वी उत्तर प्रदेश का ऐसा ही एक परिक्षेत्र गोरखपुर था, जो सामाजिक व आर्थिक रूप से पिछड़ा होने के बावजूद भी स्वतंत्रता संग्राम में बड़े से बड़ा बलिदान देने में भी पीछे नहीं रहा। स्वतंत्रता के संघर्ष में यहाँ के लोगों ने धैर्य और साहस के साथ जो त्याग और बलिदान दिया, वह देशभक्ति का अप्रतिम उदाहरण है, जिसके पर्याप्त मौखिक स्रोत उपलब्ध है तथा इस शोध पत्र का संदर्भ इसी मौखिक स्रोतों के आधार पर इसी परिक्षेत्र से है।

गोरखपुर परिक्षेत्र के जनविद्रोह की शुरूआत को मोटे तौर पर यदि 1857 ई. के विद्रोह से

माना जाये तो प्रारम्भिक तौर पर गोरखपुर जिले में पैना गांव के राजपूतों ने अंग्रेजों की नावों को लूटकर तथा डुबो कर विद्रोह का प्रारम्भ किया। संघर्ष का स्वरूप धीरे-धीरे विस्तृत होता गया। सतासी, नरहरपुर और डुमरी के राजाओं ने मिल-जुल कर संघर्ष की योजना बनायी। बस्ती जिले के अमोढ़ा के लोग भी इनके साथ हो गये। क्रान्तिकारियों की सहायता से गोरखपुर पर अवध के नाजिम मुहम्मद हसन ने अधिकार कर लिया। जिससे सीमित समयावधि तक गोरखपुर स्वतंत्र भी हो गया।

गोरखपुर परिक्षेत्र में जिन बहादुर योद्धाओं ने सन् 1857 ई. की क्रान्ति में अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध किया, उनमें नरहरपुर के राजा श्री हरि प्रताप सिंह, गढ़रामपुर के परमार राजपूत, पैना के राजपूत, रुधौली के राजा श्री शिव गुलाम सिंह एवं डुमरी के बाबू बन्धू सिंह का नाम सर्वोपरि है।[7] इनके संदर्भ में मौखिक स्रोत पर्याप्त है।

आवश्यक है कि जन-जन से मौखिक स्त्रेतों के माध्यम से इतिहास लेखन किया जाय। इतिहास की सबसे बड़ी भूमिका इतिहास निर्माण के लिए ही होती है। हमारी दृष्टि में जन ही इतिहास का निर्माता है इसलिए जन इतिहास जन के लिये अपने इतिहास के निर्माण में उत्प्रेरक की भूमिका निभा सकता है। पूर्वी उत्तर प्रदेश के बस्ती जनपद के स्थानीय जन की राष्ट्रीयता व संघर्ष का अनुशीलन का आधार मौखिक स्त्रेतों को बनाया जा सकता है। आधुनिक बस्ती जो कि 1865 ई. के पूर्व गोरखपुर के अन्तर्गत था, ने अपने क्षेत्र में भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम 1857 ई. से ही अपनी प्रमुख भूमिका निभाई थी। उस दौरान अम्होड़ा और महुआ डाबर का क्षेत्र किस प्रकार अपने बलिदान के लिए प्रसिद्ध हुआ उसकी जन-कथा मौखिक स्त्रेतों के रूप में स्थानीय जन के हृदय में संस्मरण के रूप में आज भी व्याप्त है, जो पीढ़ी दर पीढ़ी सुनाई जाती है।

1857 ई. के महान राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम को भी दस्तावेजों के हवाले करते हुए साम्राज्यवादियों द्वारा गोरखपुर परिक्षेत्र के आधुनिक बस्ती जनपद के आम-जन की वेदना की अनदेखी की गई और उस अतीत को इतिहास ही नहीं बनने दिया। जबकि स्थानीय इतिहास लेखन व भारतीयता की ऐतिहासिक दृष्टि चौरी-चौरा की भाँति इसे मात्र एक स्थानीय घटना नहीं वरन् एक बड़ा जन-संघर्ष मानती है। विडम्बना यह है कि साम्राज्यवादी दृष्टि से बस्ती के गजेटियर[8] को प्राथमिक स्त्रोत मान लिया गया। कालान्तर में कैलाश नाथ पाण्डेय द्वारा लिखित गजेटियर[9] ने इसे जन कथा के आधार पर पूर्ण स्थान दिया। जिससे 1857 ई. के विद्रोह के दौरान शहादत गवाह के रूप में उस पीपल के पेड़ की अर्थवत्ता उजागर हुई जिस पर इस दौरान सैकड़ों स्वतंत्रता सेनानियों को फांसी पर लटकाया गया था। बस्ती जनपद के अम्होड़ा और नगर राज्य के ध्वस्त ऊँचे टीले आज भी उस कीमती कुर्बानी की कहानी कहते हैं। बली बलिकरन सिंह तथा रुधौली के भैया शिवगुलाम सिंह की कथाएं जिले में अब भी गायी जाती है।

इनके अतिरिक्त कुछ नाम ऐसे हैं जो आज भी लोगों की स्मृतियों में चल रहे हैं जिनके

इतिहास मौखिक स्त्रोत के रूप में उपलब्ध है उनमें श्रीमती तलाश कुंअरि अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं। उनके सेनापति बाबू अवधूत सिंह के बारे में कहते हैं कि उन्होंने कई हजार क्रांतिकारी युवकों को एकत्र कर 6 मार्च, 1958 ई. को अम्होड़ा में तत्पश्चात् प्रतापगढ़ में बाबू सबल साह के कोट के पूर्वी द्वार पर अंग्रेजों से भयंकर युद्ध किया था। इस लड़ाई में मरे हुए अंग्रेज अधिकारियों की कब्रें अब भी बाबू सबल साह की कोट के पूर्व-दक्षिण में देखी जा सकती हैं।[10] वे कोहरावं, लमही, लारेपुर कटरा, नवाबगंज, रामपुर और बनकसिया तक लड़े तथा बेगमों को नेपाल राज में सुरक्षित पहुंचा कर ही वापस आये। वापस लौटने पर पकड़े गये और छावनी थाना के उत्तर बावली वाले पीपल के पेड़ पर लटकाये गये।[11] उनके वंशजों में राम सिंह पुत्र शिवशरन सिंह, ग्राम बनगांवा, थाना छावनी, परगना अम्होड़ा, तहसील हरैया, जिला बस्ती में रहते हैं। शिवशरन सिंह 1920 ई. से ही कांग्रेस के आन्दोलनों में निरन्तर सम्मिलित होते थे। कालान्तर में अम्होड़ा को अंग्रेजों के द्वारा जब्त करके बस्ती के राजा शीतला बक्स सिंह की दादी श्रीमती रानी दिगम्बर कुंअरि को पुरस्कार में दिया गया।[12]

फाँसी पर लटकने वाले दूसरे क्रांतिकारी ईश्वरी शुक्ल थे जिनके वंशज रामानन्द शुक्ल अब भी ग्राम बेलाड़ी में रहते हैं।[13] इसके अतिरिक्त बनवीर सिंह, रिसाल सिंह, कुलवंत सिंह, रामदीन सिंह, रघुवीर सिंह भी ऐसे शहीद हैं, जिनका नाम लोगों को अब तक जुबानी याद है। सुग्रीव सिंह ग्राम जद्दूपुर भी फाँसी पाने वाले में से एक थे जिनके वंशज रामाधार सिंह 1920 ई. के प्रमुख सेनानी थे। संतबक्स सिंह, ग्राम चनोखा, परगना रसूलपुर, डुमरियागंज, बस्ती भी पढ़रीं रूधौली के संग्राम में रामगुलाम सिंह के साथ लड़े थे। इनके वंशज चन्द्रपाल सिंह और चन्देश सिंह अभी जीवित हैं।[14] जय सिंह सुबेदार, ग्राम अटवा तहसील हरैया, परगना अम्होड़ा को भी फाँसी की सजा हुई। उनके वंशज मोती सिंह 1920 ई. से ही कांग्रेस में थे। राम जियावन सिंह, ग्राम करमपुर हरैया के वंशज ठाकुर बब्बन सिंह आज भी जीवित हैं। सूबेदार मुहेम सिंह के वंशज ठाकुर बजरंगी सिंह ग्राम मुसोड़ी, पोस्ट अरमिया बाजार, तहसील शाहगंज जिला जौनपुर में रहते हैं।[15] भवन सिंह के वंशज साकल सिंह ग्राम सुखला, जिला गोण्डा में रहते हैं।[16] ये सभी अपने शहीद पूर्वजों की कथा बड़े गर्व से बताते हैं। एक अन्य सेनानी धर्मराज सिंह ने मरते-मरते भी जिस अंग्रेज अफसर को अपनी किरच से मारा था उसकी कब्र फाँसी वाले पीपल के पेड़ से एक फर्लांग दूर बनी हुई है। बाद में धर्मराज सिंह को भी फाँसी दे दी गई थी।[17] असहयोग आन्दोलन के साथ ही भारतीय राजनीतिक जीवन में एक नए युग का प्रारम्भ हुआ, जिसे 'गाँधी-युग' की संज्ञा दी जाती है। असहयोग आन्दोलन वास्तव में भारत का पहला जन-आन्दोलन था। इस आन्दोलन से कांग्रेस एक राष्ट्रीय पार्टी बन गयी।

गोरखपुर में असहयोग आन्दोलन की सफलता हेतु आवाज बुलन्द करने वालों में बाबा राघवदास, बाबू त्रिवेणी सहाय, विन्ध्यवासिनी प्रसाद श्रीवास्तव, मौलवी सुभानउल्लाह, भगवती प्रसाद

दूबे, प्रभात कुसुम बनर्जी, गौरी शंकर मिश्र आदि प्रमुख थे।

स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान गोरखपुर की सबसे महत्वपूर्ण घटना चौरी-चौरा की घटना थी। 4 फरवरी सन् 1922 ई. को गोरखपुर में चौरी-चौरा नामक स्थान पर हिंसा की जो घटना हुई, उसने आन्दोलन का स्वरूप ही बदल दिया। मौखिक स्रोत बताते है कि यह मात्र एक स्थानीय घटना न होकर राष्ट्रीय आन्दोलन की दिशा को परिवर्तित करने वाली महत्वपूर्ण घटना थी, नि:संदेह यह घटना स्थानीय न होकर राष्ट्र की स्वतंत्रता संघर्ष का एक हिस्सा था। चौरी-चौरा जनक्रान्ति के शहीदों के नाम जिसमें मेघू तिवारी, लाल मुहम्मद, रामरूप बरई, लौटू, काली चरन, विक्रम अहिर, नजर अली, रामसुभग यादव, चिनगी, पांचू और इन्द्रजीत हैं, जिनके परिजनों को गोरखपुर विश्वविद्यालय में आयोजित संगोष्ठी में सम्मानित किया गया तथा उनके संस्मरणों ने चौरी-चौरा के इतिहास की पूर्वाग्रह रहित सच्ची तस्वीर प्रस्तुत की।[18]

1930 ई. में नमक सत्याग्रह के दौरान गोरखपुर ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। नमक कानून तोड़ने पर गाँधी जी की गिरफ्तारी के विरोध में आन्दोलन प्रारम्भ हो गया, सभाएँ की गयी, जुलूसों व हड़ताल का आयोजन किया गया। अप्रैल 1930 ई. में स्थान-स्थान पर नमक कानून सार्वजनिक रूप से तोड़ा गया।[19] गोरखपुर में बंगरा नामक स्थान पर बाबा राघवदास के नेतृत्व में लोगों ने नमक कानून तोड़ा। इसके अतिरिक्त जिले के अन्य स्थानों पर भी नमक बनाकर नमक कानून तोड़ा गया। इसे दबाने के लिए गिरफ्तारियां शुरू हुई और आन्दोलन तीव्र होता गया। पूरे जिले में बहिष्कार आन्दोलन चलाया गया। विदेशी वस्त्र, मादक द्रव्य, विदेशी चीनी आदि के बहिष्कार में जिले को पर्याप्त सफलता मिली। इसमें राजकुमार सिंह, श्री अक्षयवर सिंह, श्री रामकोमल सिंह, सन्त बिहारी, पं. ब्रह्मदेव शर्मा, सूर्यनारायण मिश्र, सूर्यबली पाण्डेय, रामपति सिंह तथा श्री त्रिवेणी सहायक आदि ने उल्लेखनीय योगदान दिया।[20] पूर्वी उत्तर प्रदेश में भारत छोड़ो आन्दोलन का नेतृत्व गोरखपुर ने किया। आन्दोलन के प्रारम्भ होते ही कई सरकारी प्रतिष्ठानों पर जनता ने तिरंगा झण्डा फहरा दिया। गोरखपुर में आन्दोलन का प्रारम्भ बांसगांव से हुआ और शीघ्र ही चारों तरफ फैल गया। गोरखपुर में कई स्थानों पर आन्दोलन के समर्थन में जुलूस निकाले गये। सरकारी भवनों पर झण्डा फहराया गया। सरकारी प्रतीकों जैसे थाना, डाकघर, टेलीफोन के तार व खम्भों आदि को नष्ट करने का प्रयास किया गया। यह कार्य गोला, उरुवा, देवरिया, मलेमपुर, भाटपाररानी, लार रोड, बरहज आदि स्थानों पर किया गया। कई स्थानों पर सड़क मार्ग को अवरुद्ध करने के लिए पुलिया तोड़ी गयी, रेलवे लाइनों को क्षतिग्रस्त करने का प्रयास किया गया, जिससे सरकारी सहायता में अवरोध उत्पन्न हो। इस प्रकार पूरे जिले में ध्वंसात्मक कार्यवाहियों को इतने व्यापक पैमाने पर किया गया कि इस क्षेत्र में सरकारी प्रशासन ही निष्क्रिय हो गया। गोरखपुर जिले की जनता ने आन्दोलन में नि:सन्देह सक्रिय भूमिका का निर्वहन किया।

10 अगस्त 1942 ई. को गोरखपुर में एवं 11 व 12 अगस्त 1942 ई. को पड़रौना तथा कठकुईयां में छात्रों द्वारा वातावरण को अशांत बनाया गया। 11 अगस्त सन् 1942 ई. को ही श्री सूर्यबली पाण्डेय, जगदीश पाठक, सच्चिदानन्द, राम प्रसाद, श्रीकृष्ण चतुर्वेदी, रामसमुझ और कमल विहारी को गिरफ्तार कर लिया गया।[21]

21 अगस्त सन् 1942 ई. की रात्रि में पूरे जिले में रेल की पटरियां उखाड़ फेंकने व रेल संचालन बाधित करने का निश्चय किया गया। रेलवे पुल और सड़क पुलों को उड़ा देने की योजना थी। इसी के साथ थानों, डाकघरों और सरकारी खजानों पर कब्जा करने का लक्ष्य था। घटित घटनाओं से पता चलता है कि गोरखपुर, देवरिया, सलेमपुर ने इन कार्यक्रमों को पूरा करने का प्रयत्न किया तथा इसके लिए अनेक कष्ट सहे और बलिदान दिये।

21 अगस्त सन् 1942 की रात्रि में 400 लोगों की भीड़ ने कसया रोड पर बने खजुआ पुल को तोड़ना शुरू किया तथा पाँच घण्टे के परिश्रम के पश्चात् पुल को बेकार कर दिया।[22]

गोरखपुर जिले में जनता के उत्साह में कोई कमी नहीं आयी थी। जनता ने विद्रोहात्मक तरीकों से अंग्रेजी शासन को किंकर्तव्यविमूढ़ बना दिया। बरहज बाजार में विद्रोहियों ने डिप्टी सुपरिटेन्डेन्ट गुडवर्ड को खाली हाथ ललकारा था। यह जानते हुए कि इसका परिणाम अंग्रेजों का अत्याचार होगा उन्होंने शासन को चुनौती दी। परिणामस्वरूप अंग्रेजों द्वारा की गयी गोलीबारी में विश्वनाथ तिवारी व जगन्नाथ मल्ल मौके पर ही मारे गये। बनरहीं में हुए गोलीकाण्ड में श्री राम लगन बढ़ई तथा रामानन्द तेली शहीद हुए और कई व्यक्ति घायल हुए। भटनी, भाटपाररानी, सलेमपुर, कसया, कठकुईया, सेवरही फार्म, गौर पुल तथा स्टेशन के गोली काण्डों में मथुरा सिंह, धरीक्षण राय, रघुवीर लोनिया, लुटावन सिंह, भोला प्रसाद, फेंकू भगत जैसे अनेक लोग शहीद हुए।[23]

भारत छोड़ो आन्दोलन में गोरखपुर के खोपापार गाँव ने प्रारम्भ से ही बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया। वहाँ के रामबली मिश्र एवं गुरू प्रसाद सिंह ने आन्दोलन का नेतृत्व किया।

गोरखपुर जनपद गाँधीवादी व क्रान्तिकारी दोनों विचार धाराओं से युक्त था। कुछ लोगों ने स्वतंत्रता प्राप्ति के हिंसात्मक मार्ग को भी चुना। हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिक एसोसिएशन के सक्रिय कार्यकर्ताओं में गोरखपुर के भी लोग सम्मिलित थे। इनमें प्रमुख हैं– लक्ष्मी नारायण पाण्डेय, विद्याधर शाही, अवधराज त्रिपाठी, बैजनाथ सिंह, रमाशंकर सिंह, बालस्वरूप शर्मा तथा श्याम कृष्ण दूबे आदि। हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिक एसोसिएशन के गोरखपुर के सदस्यों ने सहजनवां में एक ट्रेन डकैती कर सरकारी खजाने को लूट लिया। इस ट्रेन डकैती के षड्यन्त्र में अवधराज त्रिपाठी, विद्याधर शाही, लक्ष्मी नारायण पाण्डेय आदि गिरफ्तार हुए तथा उन्हें आजीवन कारावास हुआ। पण्डित राम प्रसाद बिस्मिल के गोरखपुर जेल में बन्द होने से क्रांतिकारी गतिविधियों में विस्तार हुआ।[24]

इसके अतिरिक्त गोरखपुर में हाल ही में कौड़ीराम में सम्पन्न हुये संगोष्ठी तथा गौरी श्रीराम, कुशीनगर में हुई राष्ट्रीय संगोष्ठी के दौरान कई ऐसे मौखिक स्रोत प्राप्त हुये, जिसमें स्वतंत्रता सेनानी राम नारायण राय जो सुभाष चन्द्र बोस के आजाद हिन्द फौज की सेना में थे, के पुत्र तथा सेंवरही में रेलवे लाईनों को उखाड़ने वाले स्वतंत्रता सेनानियों में से एक के वंशज विमलेश पाण्डेय के संस्मरण प्रमुख है, जिन पर अभी और शोध करना आवश्यक है। निष्कर्ष रूप में, यह कहा जा सकता है कि मौखिक स्त्रोतों की महत्ता इसीलिए है क्योंकि उसमें आम-जन की राय उनकी जुबानी मिल जाती है। यदि इतिहास को वास्तव में यूनिवर्सल होना है अर्थात पूर्वाग्रह से परे समाज को समग्रता से लेना है तब तो मौखिक इतिहास की अर्थवत्ता बनी रहेगी क्योंकि न तो सबके बारे में लिखा जाता है, न सब लिखते हैं परंतु कहने की क्षमता सबमें होती है। इसलिए इतिहास जन का, जन के लिए और जन के द्वारा हो यही आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है।

संदर्भ :-

1. वर्मा, लाल बहादुर; *इतिहास के बारे में*, साहित्य उपक्रम, 2012, पृ.-22-23
2. थाम्पसन, पाल; *द वायस ऑफ द पास्ट : ओरल हिस्ट्री*, आक्सफोर्ड, यूनिवर्सिटी प्रेस, 1978 पृ.-2
3. वर्मा, लाल बहादुर; पूर्वोक्त, पृ. -37
4. जैन, वैनसिना; *ओरल ट्रेडीशन ऐज हिस्ट्री* - द यूनिवर्सिटी ऑफ विन्कान्सिन प्रेस, 1985 प्रस्तावना
5. द *टाइम्स ऑफ इन्डिया*: 22-09-92 तथा नेहरू मेमोरियल संग्रहालय एक पुस्तकालय से प्रकाशित मौखिक इतिहास परियोजना पर एक सूचना।
6. द *हिन्दुस्तान टाइम्स*, 7 जून 1997.
7. स्वतंत्रता संग्राम के सैनिक, *सूचना विभाग. लखनऊ*, उ.प्र.-2000
8. नेविल, एच.आर.; *गजेटियर बस्ती, अ गजेटियर बीइंग वॉल. XXXII ऑफ द डिस्ट्रिक्ट गजेटियसर्स ऑफ द यूनाईटेड प्रोविन्सेज ऑफ आगरा एण्ड अवध*, गवर्नमेन्ट प्रेस, इलाहाबाद, 1907
9. पाण्डेय, कैलाश नाथ; (राज्य संपादित), *उत्तर प्रदेश डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स, डिपार्टमेन्ट ऑफ डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स*, यू.पी. लखनऊ, 1988।
10. गुप्त, अयोध्या प्रसाद; *महात्मा गांधी और स्वतंत्रता आन्दोलन में बस्ती का योगदान*, बस्ती 2006 (अयोध्या प्रसाद गुप्त जी स्वतंत्रता सेनानी थे, उनके वंशज आज भी पाण्डेय बाजार में निवास करते हैं। उनके संस्मरण व पाण्डुलिपि से प्राप्त)।
11. सिंह, राम; *साक्षात्कार साभार*, दिनांक 21 अगस्त 2021, 11 बजे
12. पाण्डेय, कैलाश नाथ; पूर्वोक्त, पृ. 107
13. शुक्ल, रामानन्द; *साक्षात्कार साभार*, दिनांक 21 अगस्त 2021, 12 बजे
14. सिंह, चन्द्रेश; *साक्षात्कार साभार*, दिनांक 30 अगस्त 2021, 10:30 बजे
15. सिंह, ठाकुर बजरंगी; *साक्षात्कार साभार*, दिनांक 02 अक्टूबर 2021, 11 बजे
16. सिंह, साकल; *साक्षात्मकार साभार*, दिनांक 02 अक्टूबर 2021, 11 बजे

17. पाण्डेय, कैलाश नाथ; पूर्वोक्त, पृ. 187

18. चतुर्वेदी, हिमांशु; (संपा.) : *चौरी चौरा : एक पुरावलोकन, राष्ट्रीय आयाम की स्थानीय घटना*, अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना दिल्ली, 2021, पृ. 307

19. पूर्वोक्त, *डिस्ट्रिक्ट गजेटियर ऑफ गोरखपुर* 1985, पृ.-42

20. वहीं, पृ. 42-43

21. *साक्षात्कार*, संस्मरण स्वतंत्रता सेनानी राम नारायण राय के सुपुत्र, 08 अगस्त, 2022 दिन 01:00 बजे

22. *होम पोलिटिकल फाइल*, त्रिमूर्ति, दिल्ली

23. *साक्षात्कार* संस्मरण, विमलेश पाण्डेय, 7 जुलाई, 2021, दिन 01 बजे

24. स्वतंत्रता संग्राम के सैनिक, *सूचना एंव प्रसारण विभाग* उ.प्र. लखनऊ, 2000, पृ.-4

बांग जोगिनी का स्वतंत्रता आन्दोलन में योगदान

डॉ. मनोज कुमार तिवारी*

अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत में अंग्रेजी उपनिवेशवाद के प्रारम्भ के साथ ही जहाँ एक तरफ ईस्ट इण्डिया कम्पनी एवं अंग्रेजों ने किसानों, व्यापारियों, बुनकरों, जमींदारों, साधु-सन्यासियों, आमजन इत्यादि का शोषण प्रारम्भ कर उनको गुलाम बनाने की प्रक्रिया प्रारम्भ की, वहीं दूसरी तरफ इसके विरूद्ध एक प्रबल भारतीय प्रतिरोध ने जन्म लिया जिसने समय के साथ भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन को जन्म दिया। इस आन्दोलन ने अन्ततः विश्व के सबसे बड़े उपनिवेश विरोधी जनसंग्राम को जन्म देकर ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के पंजे से भारत की स्वतंत्रता को अधिकारपूर्वक छीन लिया। भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन की नींव रखने में हमारी मातृभूमि के अनेक प्रहरियों एवं स्थानों ने महत्वपूर्ण योगदान देकर 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' की अवधारणा को चरितार्थ किया।

वर्तमान में स्वतंत्रता की हीरक जयन्ती के उपलक्ष्य में राष्ट्रीय स्तर पर आयोजित अमृत महोत्सव के अवसर पर प्रस्तुत इस शोधपत्र में स्वतंत्रता आन्दोलन के एक ऐसे विस्मृत आदि पुरुष एवं आद्य स्थान पर प्रकाश डालने की कोशिश की गयी है, जिनके साथ यदि इतिहासकारों ने न्याय किया होता तो वे इतिहास की मुख्य धारा में अग्रणी स्थान पर होते और शायद तब स्वतंत्रता के अमृत महोत्सव की शुरूआत दाण्डी से न होकर उस स्थान से होती। हम बात कर रहें हैं हुसेपुर एवं तमकुही रियासत के महाराज फतेहबहादुर शाही एवं *बांग जोगिनी के जंगल* की। जिनके बारे में प्रताप नारायण झा ने लिखा है कि– "फतेह शाही वास्तव में स्वतंत्रता सेनानी थे। उन्होंने स्वतंत्रता, भाईचारे एवं मातृभूमि के सम्प्रभुता की लड़ाई लड़ी। वह ईस्ट इण्डिया कम्पनी की बढ़ती शक्ति के खिलाफ विद्रोह का झण्डा बुलन्द करने में अग्रणी थे।" बांग जोगिनी जंगल के महत्व पर प्रकाश डालते हुए उन्होनें ने लिखा कि *"बांग जोगिनी जंगल, विद्रोहियों का केन्द्र तथा राष्ट्रवादियों का तीर्थ स्थान बन गया था।"* प्रस्तुत शोध पत्र में महाराज फतेह बहादुर शाही द्वारा महाराणा प्रताप एवं शिवाजी से प्रेरणा प्राप्त कर तत्कालीन गोरखपुर परिक्षेत्र एवं वर्तमान कुशीनगर जनपद में स्थित *बागजोगिनी के जंगलों को केन्द्र बना कर अंग्रेजों के विरूद्ध प्रारम्भ किये गये प्रथम दीर्घतम संग्राम का प्राथमिक स्रोतों के आधार पर विश्लेषण किया गया है।*

बीज शब्द : बांग जोगिनी जंगल महाराज फतेह बहादुर शाही, हुसेपुर, तमकुही, बड़ागाँव, जादोपुर, मंजुरा नागा सन्यासी, कुंभ, नाथपंथी

*सहयुक्त आचार्य, इतिहास विभाग, दी.द.उ. गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर; **Email :** manojtiwariddugkp@gmail.com

अठारहवीं शताब्दी में बंगाल सूबे के एक भाग बिहार के सारण जिले में स्थित हुसेपुर की जमींदारी जो वर्तमान में बिहार प्रान्त के गोपालगंज जिले में स्थित है, मध्य गंगा घाटी की एक महत्वपूर्ण रियासत थी। इसके शासकों की एक अत्यन्त प्राचीन लम्बी वंशावली थी, जो भूमिहार ब्राह्मणों की बघोचिया शाखा से सम्बन्धित है।[1] जबकि मझौलीराज के स्रोतों के अनुसार इस रियासत के संस्थापक मयूर की तीसरी पत्नी जो एक भूमिहार कन्या थी, की सन्तति से हुसेपुर, हथुआ और तमकुही जमींदारियों की स्थापना हुई।[2] इसी रियासत के एक महत्वपूर्ण शासक महाराज फतेह बहादुर शाही ने 1767 ई. से तत्कालीन गोरखपुर जिले में स्थित *बांग जोगिनी के जंगल* को केन्द्र बनाकर अंग्रेजों के विरूद्ध स्वतंत्रता संग्राम की नींव डाली। बिहार एवं अवध राज्य की सीमा पर अवध के तरफ तत्कालीन गोरखपुर परिक्षेत्र में स्थित इन घने विशाल जंगलों ने फतेह शाही को अंग्रेजों के विरूद्ध दुर्दमनीय बनाने में, रणनीतिक बढ़त दिलाने में एवं एक प्रशिक्षित फौज तैयार कर संघर्ष को दीर्घकालिक बनाकर अंग्रेजों के विरूद्ध आम जन में स्वतंत्रता की भावना पैदा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। इस जंगल ने बड़ी मात्रा में नागा सन्यासियों एवं नाथपंथियों को भी अपनी तरफ आकर्षित किया। जिसके कारण फतेह शाही अंग्रेजों के लिए काल एवं आतंक का पर्याय बन गये।

'स्व' के बोध से युक्त यह राजवंश तथा इनका क्षेत्र प्रारम्भ से ही मातृभूमि को देवभूमि मानते हुए उसमें किसी भी तरह के बाहरी अथवा विदेशी हस्तक्षेप का विरोधी एवं अपनी स्वतंत्रता का पक्षधर रहा है। महाराज फतेह बहादुर शाही के दादा महाराज युवराज शाही के शासन काल में पीटर मुण्डी नामक एक अंग्रेज यात्री ने इस पूरे क्षेत्र सहित उनके दरबार की यात्रा की थी। यहाँ के लोगों की निर्भीकता, मातृभूमि के प्रति प्रेम, विदेशी हस्तक्षेप के प्रति घृणा के भाव को देखकर, उसने अंग्रेजों को इस इलाके से दूर रहने, इस क्षेत्र में व्यापार न करने की सलाह दी थी।[3] समय के साथ पीटर मुण्डी की यह सलाह काफी हद तक सही साबित हुई।

इसी राजवंश के 99वें शासक के रूप में महाराज सरदार शाही के पुत्र महाराज फतेह बहादुर शाही 1747 ई. के आस-पास हुसेपुर रियासत की गद्दी पर आसीन हुए।[4] यह समय भारतीय इतिहास का और उससे भी अधिक बंगाल के इतिहास का संक्रमण काल था। 1757 ई. में प्लासी के युद्ध के पश्चात् बंगाल पर प्रभाव स्थापित कर अंग्रेजों ने भारत के औपनिवेशीकरण के मार्ग को प्राप्त कर लिया और बहुत तेजी के साथ वो इस मार्ग पर आगे बढ़े तथा 1764 ई. के बक्सर के युद्ध के पश्चात् 1765 ई. में मुगल बादशाह शाह आलम द्वितीय से इलाहाबाद की सन्धि करके 26 लाख रूपये वार्षिक पेंशन के बदले बंगाल, बिहार एवं उड़ीसा के दीवानी अधिकारों के स्वामी बन गये। इसके साथ ही बंगाल एवं बिहार का राजस्व एक वर्ष में ही लगभग दो गुना हो गया। जहाँ 1764-65 ई. में यहाँ से राजस्व वसूली एक करोड़ तेईस लाख थी, वहीं 1765-66 ई. में यह बढ़कर दो करोड़ बीस लाख रूपये तक पहुँच गयी।[5] कई अतिरिक्त कर लगा दिये गये। पारम्परिक व्यवस्था ध्वस्त

करने की कोशिश की गयी। अंग्रेजों की इन उत्पीड़क औपनिवेशिक नीतियों से बंगाल के विभिन्न भागों में प्रतिरोध की शुरूआत होती है और उसकी खबरें बिहार एवं उत्तर प्रदेश की सीमा पर स्थित सारण जिले की हुसेपुर रियासत तथा आस-पास तक पहुंचती हैं।

दूरदर्शी, स्वाभिमानी, स्वतंत्रता प्रेमी, हुसेपुर के धर्मनिष्ठ जमींदार, महाराज फतेह बहादुर शाही ने प्लासी के युद्ध के पश्चात् से ही अंग्रेजों के सम्भावित लक्ष्यों एवं मातृभूमि पर संकट को पहचान लिया था। यही कारण था कि बक्सर के युद्ध के समय महाराज ने मीर कासिम, सुजाउद्दौला एवं तथाकथित मुगल सम्राट शाहआलम द्वितीय की गठबन्धन सेनाओं का भरपूर सहयोग किया था। इसी के पश्चात् अवध के नवाब से इनकी घनिष्ठता स्थापित हुई। ऐसे भी कई स्रोत मिलते हैं जिनसे ज्ञात होता है कि 1764 ई. में नागा संन्यासियों ने भी गठबन्धन सेनाओं का साथ दिया था।[6] और यहीं से महाराज फतेह बहादुर शाही एवं नागा संन्यासियों में स्थायी सम्बन्ध कायम हुए। भविष्य में इन लड़ाकू संन्यासियों एवं नाथपंथियों ने फतेह बहादुर शाही के लक्ष्यों को पहचान कर कई महत्वपूर्ण अवसरों पर इनका साथ दिया।[7]

बक्सर का युद्ध, महाराज फतेह बहादुर शाही के लिए एक प्रस्थान बिन्दु था। क्योंकि अपनी परम्पराओं के अनुरूप उन्होंने इसी समय यह घोषित कर दिया था कि वो विदेशी सत्ता एवं हस्तक्षेप को स्वीकार नहीं करेंगे। इसीलिए सीमित संसाधनों के बावजूद उन्होंने गठबन्धन सेनाओं का सिर्फ साथ ही नहीं दिया बल्कि युद्ध में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।[8] परन्तु दुर्भाग्यवश बक्सर की पराजय एवं अंग्रेजों को दीवानी अधिकारों की प्राप्ति ने महाराज को और भी अधिक चौकन्ना कर दिया। दूरदर्शी महाराज ने भविष्य के संकटों को पहचानते हुए अंग्रेजों के विरूद्ध मातृभूमि के रक्षार्थ अपने आपको एक सफल प्रतिरोधी शक्ति के रूप में विकसित करने के उपाय ढूढ़ने प्रारम्भ कर दिये। उन्हें पता था कि भविष्य में अंग्रेजों से प्रत्यक्ष भिडन्त होनी है। इन परिस्थितियों में प्रतिरोध को लम्बे अर्से तक कायम रख करके विदेशी शक्ति के विरूद्ध आम जनता में स्वतंत्रता की अलख जगाने के लिए, स्वदेशी व्यवस्था में जनता की आस्था को और दृढ़ बनाने के लिए, विरोधी शक्तियों को इकट्ठा करने के लिए एक सुरक्षित पनाहगार की आवश्यकता होगी। *प्रो. रत्नेश्वर मिश्रा* ने अपने एक लेख में बताया है कि "अंग्रेजों से प्रत्यक्ष शत्रुता मोल लेने के कुछ ही दिनों पूर्व महाराज ने अवध सूबे के गोरखपुर सरकार के अन्तर्गत तमकुही की जमींदारी खरीदी थी और बाद में जब भी परिस्थितियाँ उन्हें सारण से पलायन करने को विवश करती थीं तो वह तमकुही में ही वास करते थे।"[9] अवध में तमकुही स्थित बांग जोगिनी के विशाल घने जंगलों का फतेह शाही ने अंग्रेजों के विरूद्ध अत्यन्त कुशलतापूर्वक रणनीतिक इस्तेमाल किया।

अंग्रेजों ने दीवानी अधिकारों की प्राप्ति के पश्चात् बंगाल, बिहार के राजाओं, जमींदारों से कर वसूलने उसे और बढ़ाने तथा उनकी निष्ठा प्राप्त करने की जब कोशिश प्रारम्भ की तो स्थानीय

जमींदारों में सुगबुगाहट तेज हुई। महाराज फतेह बहादुर शाही हुसेपुर की जमींदारी का राजस्व बंगाल के नवाब के पटना स्थित खजाने में तथा तमकुही का राजस्व अवध के नवाब के गोरखपुर स्थित खजाने में जमा कराते थे। परन्तु दिवानी अधिकारों के पश्चात्, अंग्रेजी कम्पनी के सारण जिले के रवेन्यू कलेक्टर ने जब हुसेपुर के राजस्व के साथ ही महाराज से निष्ठा की मांग की तो उन्होंने कम्पनी को राजस्व देने से इंकार करते हुए स्पष्ट रूप से कहा दिया कि वो बंगाल के नवाब अथवा अवध के नवाब को ही राजस्व देगें किसी अन्य को नहीं अर्थात भारतीय गरिमा, 'स्व' एवं स्वाभिमान से भरे महाराज ने न सिर्फ स्वयं अंग्रेजों को अपना अधिपति मानने से इंकार कर दिया बल्कि आस-पास के जमींदारों को भी इसके लिए प्रेरित किया। क्योंकि उनका मानना था कि यदि अंग्रेजों का अभी प्रारम्भिक स्तर पर ही प्रतिरोध नहीं किया गया, उन्हें हटाया नहीं गया तो इस पवित्र मातृभूमि को इनसे मुक्ति मिलने में सदियाँ लग जायेंगीं।

डब्ल्यू.डब्ल्यू. हण्टर ने स्वीकार किया है कि, फतेह शाही ने हुस्सेपुर पर अंग्रेजी दीवानी की स्थापना को 1767 ई. में ही चुनौती दी और ऐसा करने वाले वह प्रायः प्रथम ही थे।[10] परन्तु 1767 ई. की अपेक्षा इसे 1764 ई. कहना अधिक तार्किक है क्योंकि बक्सर के युद्ध में ही उन्होंने अंग्रेजी शक्ति को चुनौती दे दी थी। महाराज के प्रभाव में आकर अनेक जमींदारों ने भी, जैसे बेतिया के जमींदार इत्यादि ने भी विद्रोह किया पर जल्दी ही उन्होंने समर्पण कर दिया।

फतेह शाही की चुनौती को समाप्त करने के लिए जब अंग्रेजी सेना भेजी गयी तो उसे महाराज के सैनिकों ने पराजित कर भगा दिया।[11] *जेमिनी मोहन घोष* ने लिखा है कि 1767 ई. में 5000 नागा सन्यासियों ने सारण में प्रवेश कर अंग्रेजों को चुनौती दी थी।[12] 20 अप्रैल, 1767 ई. को पटना स्थित अंग्रेज फैक्ट्री के अध्यक्ष थॉमस रमबोल्ड ने भी अपने पत्र में प्रवर समिति के अध्यक्ष को यह सूचित किया था कि 5000 के करीब सन्यासी सारण जिले में प्रवेश कर चुके हैं।[13] इस प्रथम संघर्ष में महाराज विजयी हुए थे।[14] ***कैलेण्डर आफ पर्सियन करेसपाण्डेंस, वॉल-II,*** में पटना के उप दिवान राजा सिताब राय के हवाले से 1768 ई. में यह बताया गया कि हालसीपुर अथवा हुस्सेपुर के जमींदार द्वारा नागा सन्यासियों की सहायता से क्षेत्र की सुरक्षा को खतरे में डाल दिया गया है।[15] इससे यह स्पष्ट होता है कि महाराज फतेह बहादुर शाही के 'स्व' आधारित प्रतिरोध के प्रारम्भ से ही नागा सन्यासियों ने उनका घनिष्ठ रूप से साथ दिया। क्योंकि ये सन्यासी भी 'स्व' के जागृत प्रतिनिधि थे।

इस प्रथम विजय के पश्चात् फतेह शाही अपनी स्वतंत्रता बनाये रखने तथा इस क्रम में महाराणा प्रताप की तरह कठिनाई, संघर्ष और बलिदान का जीवन अपनाने के लिए तैयार एवं दृढ़ प्रतिज्ञ हो गये। दूसरी तरफ अंग्रेज भी उन्हें समाप्त करने अथवा सारण से निष्कासित करने के लिए कटिबद्ध हो गये। महाराज ने अंग्रेजों के सम्भावित आक्रमण का जवाब देने के लिए पूरी तैयारी के

साथ लामबन्द होकर किले में रहना प्रारम्भ किया। बिहार के नायब दीवान सिताब राय के अनुरोध पर पुनः कैप्टन बीलिंडंग के नेतृत्व में एक अंग्रेजी सेना ने 1768 ई. में हुसेपुर पर आक्रमण किया, महाराज ने संन्यासियों के एक दल की सहायता से प्रबल प्रतिरोध किया परन्तु परास्त[16] होकर *बांगजोगनी जंगलों के अपने सुरक्षित पनाहगार में परिवार के साथ रहने लगे। जो अवध सूबे का हिस्सा था और गोरखपुर सरकार को हुसेपुर से अलग करता था।*[17] अंग्रेज यहाँ आक्रमण नहीं कर सकते थे। इस घटना के कुछ दिनों पश्चात् अक्टूबर, 1770 ई. में, ब्रिगेडियर जनरल राबर्ट बार्कर ने बताया था कि दस हजार नागा सन्यासी बनारस में इकट्ठा हुए थे, जो बिहार होते हुए बंगाल जाना चाहते थे। परन्तु अगले महीने पटना कौंसिल को पता चला कि वो मिर्जापुर के तरफ बढ़ गये।[18] 29 अप्रैल 1771 ई. को पुनः राबर्ट बार्कर ने अवध के नवाब को सूचित किया कि आपके द्वारा प्रदान किये गये परवाने (अवध क्षेत्र से गुजरने के लिए आदेश पत्र) के आधार पर छः से सात हजार नागा सन्यासी कालपी के पास यमुना नदी पार कर गंगा नदी को पार करने के लिए आगे बढ़े हैं परन्तु कम्पनी के बंगाल सूबे में उनके प्रवेश का कोई चिन्ह नहीं है।[19] ऐसे और भी बहुत से उदाहरण हैं जिससे यह प्रतीत होता है कि इस पूरे इलाके में संन्यासियों का आना-जाना एवं दबदबा था एवं फतेह शाही पूर्वांचल में संन्यासियों के बड़े संरक्षक थे।

फतेह शाही के निर्वासन के पश्चात् हुसेपुर से राजस्व वसूली का अधिकार कम्पनी ने गोविन्द राम को दे दिया।[20] अब महाराज ने अपनी मातृभूमि को बचाने के लिए, अंग्रेजों को सबक सिखाने के लिए, हुसेपुर से राजस्व संग्रह न होने देने के लिए शिवाजी की छापामार युद्ध पद्धति (गुरिल्ला युद्ध प्रणाली) को अपना हथियार बनाया। जिसका परिणाम हुआ कि पूरे सारण जिले का प्रशासन आतंक एवं अव्यवस्था का शिकार हो गया तथा कम्पनी को हुसेपुर की जमींदारी से राजस्व मिलना मुश्किल हो गया। इन्हीं परिस्थितियों में 1772 ई. में फतेह शाही ने बांग जोगिनी से निकल कर हुसेपुर पर अचानक हमला करके गोविन्द राम की हत्या कर दी।[21] इस सफलता के पश्चात् महाराज की प्रतिष्ठा में जबरदस्त वृद्धि हुई और अब नागा संन्यासियों के साथ ही आस-पास के उत्साही समर्पित लोग उनके पास बांग जोगिनी के जंगल में एकत्र होने लगे, स्वतंत्रता की आकांक्षा प्रबल होने लगी। कैप्टन बिल्डिंग ने पुनः हुसेपुर लौट कर महाराज को पकड़ने की अथक कोशिश की परन्तु असफलता ही हाथ लगी। कम्पनी प्रशासन अस्त-व्यस्त हो गया। अब अंग्रेजी कम्पनी किसी भी कीमत पर महाराज को अपने पक्ष में मिलाने को तत्पर दिखाई देने लगी। क्योंकि मराठों के सम्भावित आक्रमण के भय तथा सारण, चम्पारण, गोरखपुर एवं बनारस इत्यादि के अन्य जमींदारों से फतेह शाही के सम्बन्धों के साथ ही नागा संन्यासियों की घनिष्ठता ने कम्पनी को बेचैन कर दिया था।

ऐसी परिस्थिति में कम्पनी प्रशासन के प्रस्ताव पर रणनीति के तहत फतेह शाही ने पटना में

कम्पनी के प्रतिनिधियों से सन्धि कर एक निश्चित भत्ता प्राप्त कर अपने परिवार के साथ हुसेपुर में रहना स्वीकार किया। परन्तु जब हुसेपुर की जमींदारी का नियन्त्रण उन्हें न देकर मीर जमाल को वहां का राजस्व अधीक्षक एवं महाराज के चचेरे भाई बसन्त शाही को 'बाटों एवं राज करो' की नीति के तहत वहां की जमींदारी सौंप दी गयी, यानि हुसेपुर की स्वतंत्रता छीनने की अंग्रेजों ने कोशिश की तब महाराज मातृभूमि के रक्षार्थ पुन: विद्रोही बन बैठे और बांग जोगिनी के जंगल में लौट गये, तत्पश्चात् एक बार पुन: अंग्रेजों के विरूद्ध अभियान प्रारम्भ कर दिया। अब तक आते-आते यह प्रतिरोध जमींदारी अधिकारों को बचाने की अपेक्षा स्वतंत्रता की लड़ाई बन गयी। बहुत से अन्य जमींदारों पर भी इसका प्रभाव पड़ा– नरौने, मझौली, पेरोना इत्यादि। अंग्रेजों के आधिकारिक अभिलेख फतेह शाही को लूटेरा, शांतिभंजक तथा भारतीय उपद्रव के जनक, विद्रोहियों के सरगना के रूप में देखने लगे।[22]

अब तक फतेह शाही ने हजारों की संख्या में नवयुवकों, नागा संन्यासियों, नाथपंथियों को अपने आस-पास इकट्ठा कर स्वतंत्रता का बिगुल बजा दिया। उधर बसंत शाही अंग्रेजी सेना के साथ मिलकर फतेह शाही को किसी भी तरह समाप्त करने के अभियान में लग गया। फतेह शाही ने पहले अंग्रेजों के अन्याय, दमन और आतंक का हवाला देते हुए परिवार एवं मातृभूमि की प्रतिष्ठा के लिए बसंत शाही को समझाने की कोशिश की परन्तु उसके न मानने पर 1775 ई. में अचानक हमला कर हुसेपुर के निकट जादोपुर में बसंत शाही एवं मीर जमाल की हत्या कर दी।

ऐसी मान्यता है कि 1775 ई. के प्रयाग कुंभ के समय फतेह शाही ने संन्यासी वेश में हुसेपुर-तमकुही-प्रयाग के रास्ते में नागा संन्यासियों से मुलाकात की थी। चुनार के सैन्य आफिसर लेफ्टिनेन्ट कर्नल म्यूर ने कम्पनी के कमाण्डर इन चीफ को सूचना दी थी कि इलाहाबाद (वर्तमान प्रयागराज) कुंभ[23] के पश्चात् बहुत से सशस्त्र संन्यासी देखे गये हैं।[24] इसी समय गवर्नर जनरल ने बनारस के राजा चेत सिंह को इन संन्यासियों को कम्पनी की सीमाओं में घुसने से रोकने के आदेश दिये थे। परन्तु चेत सिंह ने ऐसा नहीं किया। ***असीत नाथ चन्द्रा, जेमिनी मोहन घोष* इत्यादि ने कई प्रमाणों के आधार पर यह लिखा है कि–1775 ई. में अवध की सीमा पर स्थित जंगल में शरण लेकर फतेह शाही ने प्रशिक्षित सन्यासियों की एक बड़ी फौज भर्ती की थी।**[25] इससे भी स्पष्ट है कि महाराज और नागा संन्यासियों के मध्य घनिष्ठ सम्बन्ध थे तथा वो पूर्वांचल में संन्यासियों के सशक्त नेतृत्वकर्त्ता थे।

बसंत शाही की हत्या एवं अंग्रेजों की नाकामी के पश्चात् कोई भी हुसेपुर में राजस्व कृषि के दायित्व को महाराज के विरूद्ध जाकर स्वीकार करने को तैयार नहीं था। इतना ही नहीं इस समय बड़ी संख्या में युवाओं एवं नागा संन्यासियों के फतेह शाही से जुड़ जाने के कारण वो और भी शक्तिशाली हो गये थे तथा गोरखपुर एवं आसपास के अंग्रेज समर्थक लोगों से भी आर्थिक सहायता

लेनी शुरू कर दी।

अंग्रेजी प्रशासन को अब यह पूरी तरह स्पष्ट हो गया कि बांग जोगिनी के जंगलों के निकट स्थित हुसेपुर को केन्द्र बनाकर रियासत को सम्भालना नामुमकिन है। बसंत शाही के पुत्र महेश दत्त शाही ने अंग्रेजों के संरक्षण में हथुआ को केन्द्र बनाया परन्तु महाराज के आतंक के कारण सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए अंग्रेजों ने महेश शाही को पटना भेज दिया। **अब गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स ने अवध के नवाब आसफुद्दौला की सहायता से फतेह शाही को बांग जोगिनी के जंगलों में घेरने अथवा वहाँ से बाहर निकालने की कोशिश शुरू की।** अंग्रेज सेनापति ले. हार्डिंग्ज (पाँचवी बटालियन) ने गोरखपुर सरकार के फौजदार सैय्यद मुहम्मद खाँ की सहायता से यह कार्य प्रारम्भ किया परन्तु प्रयास असफल रहा। इसका एक बड़ा कारण अवध के नवाब से फतेह शाही के करीबी रिश्ते थे।[26] अंग्रेज सेनापति बड़ा गाँव लौट आया तथा 1777 ई. में उसने कम्पनी से अतिरिक्त सेनाओं की माँग की जिससे भारतीयों के मन-मस्तिष्क में राष्ट्रभक्ति की भावना जगाने वाले फतेह शाही को पकड़ा जा सके।[27]

1777 ई. में महाराज ने बांग जोगिनी से निकल कर अंग्रेजों के बड़ा गाँव, लाइन बाजार स्थित सैन्य छावनी पर हमला किया तथा उसे पूरी तरह तहस-नहस कर लूट लिया। तत्पश्चात हुसेपुर के अपने किले की मरम्मत करायी तथा रियासत के मालगुजारों से कर वसूल कर उनकी सेवा के लिए उन्हें भुगतान कर[28] हुसेपुर पर अपने स्वतंत्र अधिकार के दावे का प्रदर्शन किया। यह फतेह शाही के प्रतिरोध का चरमोत्कर्ष था, जो उनके निम्मित मातृभूमि के लिए स्वतंत्रता संग्राम का हिस्सा था। इससे उनकी लोकप्रियता में और भी अधिक वृद्धि हुई।

उत्तर प्रदेश एवं बिहार में अब तक फतेह शाही अंग्रेजों के लिए काल, राष्ट्रभक्ति के प्रतीक, मातृभूमि के रक्षक के साथ ही लोगों के लिए जीते जी किंवदन्ती बन चुके थे। वारेन हेस्टिंग्स ने दिनांक 13 जनवरी, 1778 ई. के अपने पत्र के द्वारा अब उनकी सूचना देने एवं उन्हें पकड़वाने के लिए उस जमाने में रू. 10000 (दस हजार) के ईनाम की घोषणा की। स्थानीय लोग अपने प्रजावत्सल, स्वातन्त्रय प्रिय शासक से इतना स्नेह एवं प्यार करते थे कि उनके बल पर महाराज अंग्रेजों के प्रति आक्रामक बने रहे।[29] अंग्रेज उनको छू पाने में भी असफल रहे।

फतेह शाही से प्रेरित होकर अनेक अन्य जमींदारों ने भी अंग्रेजों के विरूद्ध संघर्ष का बिगुल बजा दिया था। इन्हीं में से एक थे, मझौली के जमींदार अजीत मल्ल उन्होंने भी बिहार में पड़ने वाले अपने इलाकों के लिए अंग्रेजों को लगान देने से मना कर दिया था। परन्तु फतेह शाही से परेशान अंग्रेज पूर्वांचल में न तो नया फ्रन्ट खोलना चाहते थे ना ही यह दिखाना चाहते थे कि फतेह शाही का अन्य जमींदारों पर साकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है। अत: चतुर अंग्रेजों ने जहाँ अजीत मल्ल को उसके विद्रोह के लिए माफ कर दिया वहीं फतेह शाही को सुनियोजित हत्याएं, षड़यन्त्र तथा

आन्दोलन का अपराधी ठहराया।[30] अन्य विद्रोही जमींदारों में भी अंग्रेजों की रूचि इस समय नहीं थी। वो किसी भी तरह फतेह शाही के प्रतिरोध को समाप्त करना चाहते थे जो तत्कालीन समय में उनके लिए सबसे बड़ी चुनौती था। इसके लिए उन्होंने एक बार पुन: अवध से समझौता कर महाराज के विरूद्ध अभियान की कोशिश की परन्तु अपनी रियासत में प्राप्त जनसमर्थन के कारण उनके विरूद्ध कोई प्रभावी कार्यवाही सम्भव नहीं हो पायी।[31]

इसी समय के आस-पास गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स का बनारस की रियासत के साथ तनाव प्रारम्भ हुआ। बनारस की रियासत से फतेह बहादुर शाही के पारिवारिक रिश्ते थे। जो दोनों ही रियासतों के लिए लाभकारी थे। परन्तु अंग्रेज बनारस की महत्वपूर्ण सामरिक अवस्थिति के कारण उसे हड़पना चाहते थे। बनारस, बंगाल एवं अवध राज्य के मध्य में स्थित था। इस रियासत को हड़प कर अंग्रेज जहाँ एक तरफ बिहार और अवध के विद्रोही जमींदारों एवं संन्यासी विद्रोहियों पर कड़ी कार्यवाही कर सकते थे, वहीं फैजाबाद की बेगमों, अवध के नवाब के साथ ही मराठों के संभावित आक्रमण पर नजर रखने के साथ ही; बनारस से अधिक राजस्व प्राप्त करने की अपनी अभिलाषा को पूर्ण कर सकते थे। बनारस के राजा चेत सिंह को अंग्रेजों की इस मन: स्थिति अथवा योजना का पूरा भान था। इसीलिए एक तरफ तो उन्होंने अंग्रेजों को सन्तुष्ट रखने की कोशिश की, जिससे उन्हें कोई अवसर न मिल सके, वहीं दूसरी तरफ अंग्रेज विरोधी माध्यमों से भी अपने सम्बन्ध बनाये रखे, जिससे किसी आपातकालीन परिस्थिति में मदद प्राप्त की जा सके। इसीलिए वारेन हेस्टिंग्स के स्पष्ट आदेश के बावजूद भी चेत सिंह ने कम्पनी शासन के विरोधी नागा संन्यासियों के विरूद्ध कोई कार्यवाही नहीं की, साथ ही महाराज फतेह बहादुर शाही से अपनी घनिष्ठता को बनाये रखा, क्योंकि इनके माध्यम से चम्पारण एवं सारण के अन्य जमींदारों की सहायता प्राप्त हो सकती थी। इसीलिए चेत सिंह ने अनेक अवसरों पर बनारस के पूर्ववर्ती महाराज बलवंत सिंह की नीति को जारी रखते हुए महाराज फतेह बहादुर शाही की हर तरह से सहायता की। समय के साथ महाराज चेत सिंह का नजरिया सही साबित हुआ। जब 1781 ई. में गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स ने चेत सिंह से व्यक्तिगत रंजिश के साथ ही अन्य अनेक सामरिक, राजनैतिक एवं आर्थिक कारणों के आधार पर बनारस को हड़पने की कोशिश की तब महाराज फतेह बहादुर शाही के नेतृत्व में बिहार एवं अवध के कई विद्रोही जमींदारों ने चेत सिंह के साथ मिलकर अंग्रेजों के विरूद्ध प्रारम्भ किये गये स्वतंत्रता आन्दोलन को और व्यापक बना दिया।

इस तरह फतेह शाही द्वारा प्रारम्भ किया गया प्रतिरोध अब उत्तर प्रदेश एवं बिहार के अधिकांश इलाकों में अंग्रेजों के विरूद्ध स्वतंत्रता संग्राम का प्रतीक बन गया। *रिचर्ड बी. बारनेट* ने लिखा है कि– "सारण के जिलाधिकारी को स्थानीय निवासियों में अंग्रेजी सत्ता को उखाड़ फेंकने का दृढ़ निश्चय दिखाई पड़ने लगा।"[32] हुस्सेपुर, तमकुही, पैरोना, नरोने इत्यादि रियासतों के राजाओं

ने आपस में व्यापक समझौता कर आठ हजार सैनिकों तथा छः तोपों की एक बड़ी सेना तैयार की। सिवान के शेख मुहम्मद अली, वेगौर एवं चैनपुर के भूमिहार जमींदार तथा अन्य कई दूसरे जमींदारों ने गुप्त रूप से फतेह शाही का सहयोग किया।[33] जिन जमींदारों, एवं उनकी जनता ने सहयोग नहीं भी किया उनमें से अधिकांश की सहानुभूति फतेह शाही के साथ थी।

इस समय गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स सहित कम्पनी सरकार चेत सिंह के विद्रोह में इस कदर उलझ गयी थी कि फतेह शाही एवं अन्य जमींदारों के स्वतंत्रता आन्दोलन पर ध्यान नहीं दे पा रही थी।[34] इसका फायदा उठाते हुए इन जमींदारों ने जहाँ अपने आप को और भी मजबूत किया वहीं अंग्रेजों को निरन्तर परेशान किया। इन जमींदारों ने उत्तर प्रदेश एवं बिहार की सीमा पर बांग जोगिनी के जंगलों का लाभ लेते हुए अपने सैनिकों को न सिर्फ एकत्र किया बल्कि स्थानीय लोगों को भी प्रशिक्षित कर शस्त्रों से सज्ज कर दिया।[35] अक्टूबर 1781 ई. में ही इस अभूतपूर्व संकट से निपटने के लिए कम्पनी सरकार के द्वारा पटना, लखनऊ, गोरखपुर, कानपुर, बगहा, सारण इत्यादि में कार्यरत अंग्रेज अधिकारियों को सतर्क रहने के निर्देश दिये गये। बक्सर के अंग्रेज सेनापति कैप्टन नोक्स का भी सहयोग लिया गया। इससे फतेह शाही के आन्दोलन की क्षेत्रगत व्यापकता का पता चलता है। परन्तु इसके बावजूद भी शाही को पकड़ा नहीं जा सका।[36] वो दुर्दमनीय बने रहे।

हुसेपुर एवं आस-पास के क्षेत्रों में अंग्रेजों की समस्याएं तब और बढ़ गयी जब बड़ा गाँव स्थित अंग्रेजी सेना की टुकड़ी को वारेन हेस्टिंग्स ने चेत सिंह के विरूद्ध अभियान के लिए बक्सर बुला लिया। इसका लाभ उठाते हुए फतेह शाही, मझौली के अजीत मल्ल ने अन्य विद्रोहियों को साथ लेकर 2000 सैनिकों के साथ 1781 ई. में गोरखपुर परिक्षेत्र स्थित अपने ठिकाने से बड़ा गाँव के अंग्रेजी ठिकाने पर अचानक हमला कर तहस-नहस कर दिया।[37] परिणाम स्वरूप कम्पनी सरकार के द्वारा अवयस्क हथुआ शासक महेश दत्त शाही के संरक्षक तथा हुसेपुर के राजपूत सामन्त धज्जू सिंह के सहयोग से अंग्रेज सेनापति क्रोम के नेतृत्व में एक हजार सैनिकों को महाराज के विरूद्ध अभियान के लिए भेजा गया। बड़ा गाँव से लगभग 9 किमी. दूर मंजूरा में दोनों पक्षों में भयंकर युद्ध हुआ जिसमें धज्जू सिंह एवं उसके पुत्र घायल हुए, परन्तु अन्ततः फतेह शाही की पराजय हुई।[38] अंग्रेजों ने धज्जू सिंह की स्वामीभक्ति के लिए उन्हें सम्मानित करने के साथ ही 200 रू. प्रतिमाह पेंशन दिया। युद्ध में आहत एवं मारे गये सैनिकों के परिवारी जनों को भी कम्पनी सरकार ने पेंशन से नवाजा।[39] *युद्ध के पश्चात् महाराज बांगजोगनी जंगल के अपने सुरक्षित पनाहगार में वापस आ गये* परन्तु कम्पनी सरकार आजिज होने के बावजूद भी हुसेपुर में उनके समर्थकों के विरूद्ध कोई कार्यवाही करने का साहस नहीं जुटा पा रही थी क्योंकि उसे डर था कि इससे राजा के समर्थन में और भी अधिक व्यापक जन आन्दोलन छिड़ जायेगा। यह राजा की लोकप्रियता तथा क्षेत्र में उनके प्रभाव का स्पष्ट प्रमाण है। *आनन्द ए. यांग* ने लिखा है कि– "हुसेपुर राजा के रूप में कम्पनी का

ऐसे विरोधी से पाला पड़ा था जिसकी क्षेत्रीय प्रभावशाली व्यक्ति के रूप में स्थानीय समाज में गहरी जड़े थीं और वहाँ की भूमि तथा आबादी पर नियन्त्रण था।[40]

कम्पनी फतेह शाही के प्रतिरोध के दमन के क्रम में अत्यन्त ही कठिन और क्षतिपूर्ण आर्थिक एवं राजनैतिक परिस्थिति में फंस गयी थी। एक तरफ दमन के जितने भी उपाय किये जा रहे थे उससे महाराज की लोकप्रियता और भी बढ़ रही थी, प्रतिरोध के क्षेत्र का प्रसार हो रहा था दूसरी तरफ राजस्व संग्रह ठप हो गया था, उससे कोई फायदा नहीं था। अब कम्पनी के लिए 'करो या मरो' की स्थिति आ गयी थी। अत: कम्पनी सरकार ने फतेह शाही की सूचना देने व गिरफ्तार कराने का ईनाम बढ़ा कर रू. 20000 (रू. बीस हजार) कर दिया।[41] चेत सिंह का विद्रोह तो कम्पनी ने दबा दिया परन्तु हुसेपुर का स्वतंत्रता संघर्ष व्यापक होता जा रहा था।

पटना की राजस्व परिषद् ने 17 अप्रैल 1778 ई. को ही विद्रोही फतेह शाही की जमींदारी जब्त कर महेश दत्त शाही को सौंपने तथा धज्जू सिंह को उसका दीवान घोषित करने की अनुशंसा की थी। परन्तु कलकत्ता की सर्वोच्च परिषद् सुरक्षा, इत्यादि कारणों से अभी भी महेश दत्त शाही को राजा घोषित करने के पक्ष में नहीं थी।[42] किन्तु अन्तत: बार-बार के अनुरोध के पश्चात् वह इस शर्त के साथ तैयार हो गयी कि महेश दत्त शाही, फतेह शाही के विद्रोह का दमन करें और इसमें असफल रहने पर अपनी जमींदारी का दावा छोड़ देगें।[43]

इन सूचनाओं के कारण महाराज फतेह बहादुर शाही को अत्यन्त दु:ख हुआ और वो क्षोभ के कारण विचलित होने लगे। क्योंकि उन्हें एक तरफ यह लगा कि शाही परिवार की परम्पराओं के अनुरूप उन्होंने राज्य एवं परिवार की प्रतिष्ठा के लिए अपना सर्वस्व त्याग कर स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ी, 'स्व' के बोध को बनाये रखा, परन्तु उनके ही वंशज सब कुछ गँवाने के लिए तैयार हैं। साथ ही इस अत्यधिक लम्बे संघर्ष ने अनेक ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न की जिससे 1787–1788 ई. से उनका मनोबल कमजोर पड़ने लगा। इसके बावजूद उन्होंने हुसेपुर खोने के पश्चात् 1790 ई. में तमकुही रियासत की गद्दी अपने छोटे पुत्र रणबहादुर शाही को सौंप कर 1795 ई. तक अंग्रेजों के साथ सक्रिय संघर्ष को बनाये रखा। 1795 ई. में फतेह बहादुर शाही के चम्पारण अभियान का विवरण प्राप्त होता है।[44] जिसमें उन्होंने कम्पनी समर्थकों के सोलह सौ मवेशियों पर कब्जा कर लिया था।[45]

परन्तु 1787–88 ई. से महाराज का करिश्मा कम होने लगा था। उनकी अपनी जिजीविषा के बावजूद भाई-बन्धुओं एवं समर्थकों का समर्थन कम होने लगा था। चेत सिंह को बनारस से बेदखल करने के कारण उनकी तरफ से मिलने वाली सहायता का अन्त हो गया। साथ ही नागा संन्यासियों के बढ़ते दमन के कारण उनकी भी सक्रिय मदद खत्म हो गयी। अधिकांश विद्रोही सामन्त अंग्रेजों द्वारा पराजित किये जा चुके थे। अत: उनके गठबन्धन एवं सहायता की उम्मीद भी जाती रही।

भारत में अंग्रेज बहुत तेजी से आगे बढ़ रहे थे। ऐसी परिस्थितियों में महाराज फतेह बहादुर शाही के लिए अपना सक्रिय प्रतिरोध जारी रखना अत्यन्त दुष्कर हो गया। अत: महाराज ने परिस्थितिजन्य निर्णय लेते हुए अंग्रेजों के हाथ में पड़ने की अपेक्षा अज्ञातवास ग्रहण कर संन्यासी जीवन अपना लिया।

महाराज फतेह बहादुर शाही के अन्तिम दिनों के बारे में बहुत कम जानकारी मिलती है। उनकी मृत्यु की वास्तविक तिथि एवं तरीका तो ज्ञात नहीं है, परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि अन्तिम समय में मातृभूमि की रक्षा न कर पाने का मलाल उनके दिल में अवश्य था। फिर भी हुसेपुर एवं तमकुही के परिदृश्य से अदृश्य होने के बावजूद अनेक दशकों तक वो हथुआ के शासकों एवं अंग्रेजों के लिए आतंक का कारण बने रहे और तब तक अंग्रेजों ने हथुआ राज्य को वैधानिक मान्यता नहीं दी जब तक उन्हें यकीन नहीं हो गया कि महाराज दुनिया में नहीं होगें। महाराज के प्रतिरोध की गौरव गाथा को उनके कार्यों के आधार पर दो भागों में बांटा जा सकता है। प्रथम बक्सर के युद्ध से 1795 ई. तक काल जिसे सक्रिय प्रतिरोध का काल कहा जा सकता है और द्वितीय 1795 ई. के पश्चात् का काल जो निष्क्रिय प्रतिरोध का काल था। दोनों ही कालों में फतेह शाही अंग्रेजों के लिए समान रूप से आतंक के कारण रहे।

तीन दशक से अधिक समय तक महाराज फतेह बहादुर शाही लगातार न सिर्फ अंग्रेजी सत्ता को कड़ी टक्कर देते रहे वरन् कई बार उन्हें पराजित कर उनके सैन्य अड्डों को तबाह कर, उनके अन्दर खौफ पैदा किया। कई अंग्रेज अधिकारियों के पत्रों से यह स्पष्ट होता है कि वो उनके लिए मराठों से भी अधिक डर एवं परेशानी के कारण बने। विभिन्न प्रकार के षड़यन्त्रों एवं कुचक्रों के बावजूद अंग्रेज उन्हें पकड़ने अथवा सजा देने में असफल रहे। इसका एक प्रमुख कारण था बांग जोगिनी की सुरक्षित शरण स्थली। यद्यपि कि उन्होंने हुसेपुर रियासत से महाराज की स्मृतियों को मिटाने के क्रम में उनके महल एवं अन्य सम्पत्तियों को पूरी तरह नष्ट कर दिया फिर भी रियासत की जनता के दिलों से महाराज के प्रति प्यार, अनुराग एवं समर्पण को मिटाने में असफल रहे। इतना ही नहीं महाराज ने अंग्रेजी सत्ता को चुनौती देते हुए उनके सामने ही तमकुही की नयी रियासत स्थापित कर दी, जो अंग्रेजों के लिए अधिक हानिकारक साबित हुई। उन्होंने नाना प्रकार के कष्टों को सहते हुए कई दशक तक बांग जोगिनी जंगल को पनाहगार बना कर उपनिवेश विरोधी शक्तियों को इकट्ठा कर अंग्रेजों के खिलाफ छापामार युद्ध चलाया तथा आम जनता के दिलों में स्वतंत्रता की अलख जगायी। महाराज की साहसिक, क्रान्तिकारी एवं राष्ट्रवादी नीतियों ने उत्तर भारत में स्वतंत्रता संग्राम की नींव रखने का कार्य किया उनके कालखण्ड को हम भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के बीजारोपण अथवा पहले चरण के रूप में चित्रित कर सकते हैं। यदि हम उनकी उपलब्धियों का विश्लेषण करें जो उन्हें भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का आदि पुरुष अथवा जनक कहना अतिश्योक्ति

नहीं होगा। उनके संग्राम के केन्द्रबिन्दु के रूप में बांग जोगिनी के जंगलों की उपयोगिता एवं महत्ता पूर्णत: स्पष्ट है। इसीलिए प्रताप नारायण झा ने **बांग जोगिनी को राष्ट्रवादियों के तीर्थ स्थान की संज्ञा**[16] दी है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. दत्त, देवेन्द्र नाथ, *ए ब्रीफ हिस्ट्री आफ द हथुआ राज*, (पब्लिश्ड अण्डर द अथारिटी आफ हर हाइनेस द महारानी साहिबा आफ हथुआ, कलकत्ता 1909), पृ. 11
2. एटकिन्सन, एडविन टी. (स.), *स्टैटिस्टिकल, डेसक्रिप्टिव्ह एण्ड हिस्टोरिकल एकाउण्ट आफ द नार्थ वेस्टर्न प्रोविन्सेज आफ इण्डिया, वॉल्-VI, पार्ट-II, गोरखपुर*, (गवर्नमेंट प्रेस, इलाहाबाद, 1881), पृ. 450
3. दीक्षित, अक्षयवर (सं.), *भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम का प्रथम वीर नायक* में प्रकाशित भोलानाथ सिंह का लेख, (अभिधा प्रकाशन, मुजफ्फरपुर, 2007), पृ. 97-98
4. *वही*, पृ. 73; जे.एन. सिन्हा, *विनेट्स फ्रॉम द एज आफ वार*, (द हिन्दू, 21 मई, 2011), wwww.thehindu.com>magazin
5. चन्द्रा, असित नाथ, *द सन्यासी रिबेलियन*, (रत्ना प्रकाशन, कलकत्ता, 1977), पृ. 146
6. घोष, जेमिनी मोहन, *सन्यासी एण्ड फकीर रेडर्स इन बंगाल*, (बंगाल सेक्रटरिएट बुक डिपो, कलकत्ता, 1930), पृ. 16
7. *desinCNN.com>news>fatehbahadur*. 03 June, 2018
8. दीक्षित, अक्षयवर, पूर्वोक्त, पृ. 73; राजबली पाण्डेय, *गोरखपुर जनपद और उसकी क्षत्रिय जातियों का इतिहास*, (ठाकुर महातम राव ओमप्रकाश, रेती चौक, गोरखपुर, 2015), पृ. 283
9. मिश्रा, प्रो. रत्नेश्वर, *"हुसेपुर का फतेह शाही : राज्य विरोधी अथवा स्वतंत्रता सेनानी"*, इतिहास दृष्टि, वर्ष-1, अंक-1, (हीरापुरी कालोनी, विश्वविद्यालय परिसर, गोरखपुर, मई, 2010) पृ. 117
10. हण्टर, डब्लू.डब्लू., *स्टैटिस्टिकल अकाउन्ट आफ बंगाल*, वॉल VI, *डिस्ट्रिक्ट आफ पटना एण्ड सारण*, (ट्रबनर एण्ड कम्पनी, लन्दन, 1877), पृ. 369
11. दत्त, बाई.एन., *हिस्ट्री आफ हथुआ राज*, जर्नल आफ द एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल, वॉल-73 (एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल, कलकत्ता, 1904), पृ. 186
12. घोष, जेमिनी मोहन, *पूर्वोक्त*, पृ. 39
13. शुक्ल, रामलखन (सं.), *आधुनिक भारत का इतिहास*, (हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली वि. वि., दिल्ली, 1998), पृ. 207
14. सिंह, अयोध्या, *भारत का मुक्ति संग्राम : अठारहवीं एवं उन्नीसवीं सदी के विद्रोह*, (प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2001), पृ. 30; बाई.एन. दत्त, *पूर्वोक्त*, पृ. 186
15. *कैलेण्डर आफ पर्सियन करेसपाण्डेन्स, वॉल-II, 1767-9*, (सुपरिनटेन्डेन्ट, गवर्नमेन्ट प्रिंटिंग, कलकत्ता, 1914), पृ. 262-63
16. *वही*, पृ. 263
17. चौधरी, पी.सी. राय, *बिहार डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स : सारण*, (सुपरिनटेन्डेन्ट, सेक्रेटरिएट प्रेस, बिहार, पटना, 1960), पृ. 87
18. चन्द्रा, असित नाथ, *पूर्वोक्त*, पृ. 40

19. घोष, जेमिनी मोहन, *पूर्वोक्त*, पृ. 46
20. चौधरी, पी.सी. राय, *पूर्वोक्त*, पृ. 87
21. *वही*
22. गांग, आनन्द ए., *द लिमिटेड राज : अग्रेरियन रिलेशन्स इन कोलोनियल इण्डिया, सारण डिस्ट्रिक्ट, 1793-1920*, (ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 1989), पृ. 64
23. घोष, जेमिनी मोहन, *पूर्वोक्त*
24. *सेक्रेट डिपार्टमेन्ट ओरिजिनल कन्सल्टेशन्स* नं. 04 डेटेड 30 मार्च, 1775
25. चन्द्रा, असित नाथ, *पूर्वोक्त*, पृ. 65; जेमिनी मोहन घोष, *पूर्वोक्त*, पृ. 68
26. दीक्षित, अक्षयवर, *पूर्वोक्त*, में प्रकाशित जगत नारायण सिंह का लेख, पृ. 60
27. दत्त, गिरीन्द्र नाथ, *हिस्ट्री आफ हथुआ राज*, (बाँकीपुर, 1905), पृ. 189
28. *रेवेन्यू काउन्सिल, पटना के प्रधान का गवर्नर जनरल इन काउन्सिल को पत्र*, 6 फरवरी, 1777
29. दीक्षित, अक्षयवर, *पूर्वोक्त*, में प्रकाशित कुलदीप नारायण राय का लेख, पृ. 64
30. हुसेपुर के मालगुजार मुहम्मद मुशर्रफ की अर्जी : प्रोसीडिंग्स ऑफ द काउन्सिल ऑफ रेवेन्यू, पटना, अगस्त 4 से दिसम्बर 31, 1977
31. *बड़ागाँव से लेज. हार्डिंग का राजस्व परिषद के प्रधान साइमन ड्रोज को पत्र*, 8 एवं 15 जनवरी, 1777, पटना रेवेन्यू कन्सल्टेशन्स, 20 जनवरी से 31 जुलाई, 1777
32. बार्नेट, रिचर्ड बी., *नार्थ इण्डिया बिटवीन एम्पायर्स : अवध, द मुगल एण्ड द ब्रिटिश, 1720-1801*, (युनिवर्सिटी आफ कैलिफोर्निया प्रेस, बर्कले एण्ड लॉस एँन्जालिस, 1980), पृ. 184-185
33. चार्ल्स क्रोम का बंगाल राजस्व परिषद को पत्र, 15 सितम्बर, 1781, बंगाल रेवेन्यू कन्सल्टेशन्स, 1 सितम्बर से 23 अक्टूबर, 1781 पृ. 46
34. गांग, आनन्द ए., *पूर्वोक्त*, पृ. 68
35. दत्त, गिरीन्द्र नाथ, *पूर्वोक्त*, पृ. 189
36. *वही*
37. *वही*
38. *वही*, पृ. 191
39. *वही*, पृ. 192
40. गांग, आनन्द ए., *पूर्वोक्त*, पृ. 67
41. दत्त, गिरीन्द्र नाथ, *पूर्वोक्त*, पृ. 192
42. *वही*, पृ. 193
43. प्रोसीडिंग्स आफ द कमेटी ऑफ रेवेन्यू, 02 नवम्बर, 1784
44. शुक्ला, रामलखन, *पूर्वोक्त*, पृ. 203-204; प्रो. रत्नेश्वर मिश्रा, *पूर्वोक्त*, पृ. 125
45. *वही*
46. झा, प्रताप नारायण, 'रिवोल्ट आफ महाराज फतेह शाही आफ हुसेपुर', द जर्नल आफ द बिहार रिसर्च सोसाइटी, वॉल्यूम-LXII-LXIX, 1977-1978, पटना, पृ. 353

गोरखपुर परिक्षेत्र में स्वतन्त्रता आन्दोलन

डॉ. प्रवीण कुमार त्रिपाठी*

शोध-सारांश : गोरखपुर परिक्षेत्र जिसमें वर्तमान गोरखपुर, महराजगंज, देवरिया, कुशीनगर तथा अन्य समीपवर्ती जिले शामिल होते हैं पहले अवध प्रान्त का हिस्सा था और अवध के नवाबों द्वारा शासित होता था। नवाब वजीर सादात अली खान ने एक सन्धि द्वारा ऋण चुकाने के लिए सन् 1801 ई. में अन्य क्षेत्रों के साथ गोरखपुर ईस्ट इण्डिया कम्पनी को दे दिया। इस प्रकार गोरखपुर परिक्षेत्र ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधिकार में आ गया। अंग्रेजों के शोषण एवं अत्याचारों का गोरखपुर की जनता एवं यहाँ के नेताओं ने समय-समय पर प्रतिकार किया। 1857 ई. की क्रान्ति से लेकर 'भारत छोड़ो आन्दोलन' तक गोरखपुर परिक्षेत्र लगातार स्वतन्त्रता आन्दोलन में सक्रिय रहा। प्रस्तुत शोधपत्र गोरखपुर परिक्षेत्र के इन आन्दोलनों के क्रमबद्ध प्रस्तुतीकरण का एक छोटा-सा प्रयास मात्र है।

बीज-शब्द : सन् 1857 ई. की क्रान्ति, गोरखपुर में सविनय अवज्ञा आन्दोलन, गोरखपुर में असहयोग आन्दोलन, गोरखपुर में भारत छोड़ो आन्दोलन।

गोरखपुर में 1857 ई. की क्रान्ति का प्रसार

सन् 1857 ई. में जब ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन के विरुद्ध क्रान्ति हुई उस समय क्षेत्र के शासकों की भूमिका अस्थिर रही। इस बात का प्रमाण मिलता है कि जब क्षेत्र के क्रान्तिकारियों के दबाव में अंग्रेज तत्कालीन गोरखपुर से पलायन करने को मजबूर हो गए तो गोरखपुर छोड़ने से पहले जिला कलेक्टर विनयार्ड ने गोरखपुर का शासन कुछ अंग्रेजों के हाथ में सौंपने का निश्चय किया। उन्होंने मझौली, सतासी, बांसी, गोपालपुर तथा तमकुही के राजाओं की समिति बनायी तथा मिस्टर वर्ड को इसका संरक्षक नियुक्त किया किन्तु शीघ्र ही इस क्षेत्र पर क्रान्तिकारियों का प्रभुत्व स्थापित हो गया। क्रान्तिकारियों ने मोहम्मद हसन को गोरखपुर का शासक घोषित किया। गोरखपुर पर शासन करने के लिए विनयार्ड ने जो समिति बनायी थी उसमें न तो राजभक्ति थी और ना ही वह शक्ति थी जो क्रान्तिकारियों का सामना कर सके। सतासी के राजा ने खुले रूप में बगावत कर दी। गोपालपुर के राजा को मोहम्मद हसन के सामने सफलता नहीं

*असिस्टेण्ट प्रोफेसर, इतिहास, श्री गणेश राय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, डोभी, जौनपुर

मिली और वे भागकर आजमगढ़ चले गये। बांसी के राजा ने आरम्भ में तो अपनी राजभक्ति दिखायी किन्तु वह गोरखपुर से इतनी दूर थे कि अंग्रेजों की किसी प्रकार की सहायता नहीं कर सकते थे। मझौली और तमकुही की भी यही स्थिति रही परिणामस्वरूप गोरखपुर और उसके आसपास क्रान्तिकारियों का अधिकार हो गया। प्रशासनिक सुविधा व कुशलता की दृष्टि से गोरखपुर जिले को विभाजित कर 6 मई 1857 ई. को बस्ती नामक नया जिला बनाया गया। गोरखपुर जिले में देवरिया व कसया नामक सब-डिवीजनों का निर्माण किया गयां

गोरखपुर में असहयोग आन्दोलन का प्रसार

17 अप्रैल 1921 ई. को पण्डित जवाहरलाल नेहरू देवरिया आए। उनके आते ही यहाँ धारा 144 लगा दी गयी। रामपुर, हाटा और शिकारपुर, गोरखपुर में भी यही स्थिति रही। गोरखपुर की एक सभा में नेहरू जी ने 1 घण्टे तक सभी विषयों पर प्रकाश डाला। 15 जनवरी सन् 1922 ई. को हाटा व बड़हलगंज में शान्ति देवी ने जनसभाओं को सम्बोधित करते हुए पुलिस की दमन नीति की आलोचना की तथा सरकारी कर्मचारियों से सेना की सेवा से त्यागपत्र देने की अपील की। 16 और 17 मार्च 1924 ई. को जवाहरलाल नेहरू ने गोरखपुर जिले का दौरा किया। 16 मार्च को महराजगंज तहसील का पहला राजनीतिक सम्मेलन जवाहरलाल नेहरू की उपस्थिति में बाबा राघवदास की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। 11 मई सन् 1924 ई. को उनकी अध्यक्षता में आयोजित हाटा तहसील के राजनीतिक सम्मेलन के मुख्य अतिथि पुरुषोत्तमदास टण्डन थे। 13 मई को पडरौना की कांग्रेस सभा में पुरुषोत्तमदास टण्डन के साथ बाबा राघवदास ने भी भाषण किया। अक्टूबर 1926 ई. में घनश्यामदास बिरला के समर्थन में चुनाव प्रचार हेतु लाला लाजपत राय ने बाबा राघवदास के साथ गोरखपुर और आजमगढ़ का दौरा किया। 24 और 25 अक्टूबर को बाबा राघवदास ने घनश्यामदास बिरला के साथ सलेमपुर, बरहज, देवरिया, कसया और पडरौना का दौरा किया। 25 अक्टूबर को पडरौना में लगभग 6000 लोगों की विशाल सभा में उन्होंने बिरला के समर्थन में जोरदार भाषण दिया। इस चुनाव में घनश्यामदास बिरला ने श्रीप्रकाश को पराजित कर दिया।

गोरखपुर में सविनय अवज्ञा आन्दोलन

सन् 1928 ई. में गोरखपुर में मजदूर आन्दोलनों की नींव पड़ चुकी थी। 23 जनवरी 1928 ई. को भूपेन्द्रदत्त की अध्यक्षता में गोरखपुर कमिश्नरी में मजदूर किसान कान्फ्रेंस हुई। इसके पहले 19 दिसम्बर को कसया में विशाल किसान सम्मेलन हो चुका था। बाबा राघवदास की प्रेरणा और प्रयत्न के फलस्वरूप अकेले पडरौना से कानपुर कांग्रेस के लिए 1000 मन सब्जी, 1000 किलो राशन और 44 स्वयंसेवकों की उल्लेखनीय सहायता प्राप्त हुई। 26 मई 1929 ई. को बाबा राघवदास ने कसया और सलेमपुर की सभाओं में विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार की अपील की।[1] 13-14 अप्रैल

को बाबा राघवदास जी ने बड़ौदा में नमक सत्याग्रह आन्दोलन हेतु सभा की जिसकी अध्यक्षता गणेश शंकर विद्यार्थी ने की। 20 अप्रैल को उन्होंने रामकोला और विशुनपुर में जनसभाओं को सम्बोधित किया। पगरा बाजार में 200 किलोग्राम नमक बनाये जाने की सूचना मिली। रामकोला देवरिया खामपार तथा पीपीगंज में बाबा राघवदास ने किसानों से कर बन्दी की अपील की। पूर्वी उत्तर प्रदेश के प्राय: हर जिले में 10 मार्च सन् 1929 ई. को जुलूस निकाले गये, सभाओं का आयोजन किया गया और जनता से कांग्रेस के कार्यक्रम को सफल बनाने की अपील की गयी। गोरखपुर में रमाकान्त, रामधारी तथा शिवमंगल गाँधी ने पडरौना तथा गोला में जनसभाओं को सम्बोधित करते हुए विदेशी वस्त्रों की होली जलाने की अपील की और शीघ्र ही गाँधी जी के गोरखपुर आगमन की घोषणा की। गोरखपुर में बाबा राघवदास के नेतृत्व में विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार अत्यधिक सफल रहा। बाबा राघवदास तथा अनमोल सिंह ने गोरखपुर के पिपराइच, सलेमपुर, अहिरौली, बरहज, कसया और सलेमपुर की जनसभाओं में कांग्रेस के कार्यक्रम को सफल बनाने तथा विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार की अपील की। 4 अक्टूबर सन् 1929 ई. को गाँधी जी ने बड़हलगंज, कौड़ीराम, घुघली तथा पडरौना की जनसभाओं में भाषण दिया। कुशीनगर परिक्षेत्र ने नमक सत्याग्रह के दौरान महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। 2 अप्रैल 1930 ई. को बाबा राघवदास की अपील से प्रभावित होकर कई व्यक्तियों ने स्वयं को सत्याग्रह के लिए प्रस्तुत किया। 12 अप्रैल 1930 ई. को बरहज से बाबा राघवदास के नेतृत्व में स्वयंसेवकों के एक दल ने नमक सत्याग्रह के लिए प्रस्थान किया। उनका लक्ष्य वहाँ पहुँचकर नमक कानून को तोड़ना था। गोरखपुर में कसया, पडरौना, विशुनपुरा, रामकोला तथा बरहज में बाबा राघवदास ने विशाल जनसभाओं को सम्बोधित किया और जनता से अधिक से अधिक संख्या में नमक कानून का उल्लंघन करने की अपील की। सविनय अवज्ञा आन्दोलन के समय गोरखपुर के पडरौना में विदेशी कपड़ों की दुकानों पर धरना दिया गया। देवरिया में भी विदेशी कपड़ों व शराब की दुकानों पर धरना दिया गया। दुकानदारों ने विदेशी कपड़ा बेचने से इंकार कर दिया, शराब विक्रेताओं ने शराब बेचने से इंकार कर दिया।[2]

गोरखपुर में भारत छोड़ो आन्दोलन

गोरखपुर में 24 तथा 25 अप्रैल 1937 ई. को आयोजित जिला किसान और मजदूर सभा के प्रथम सम्मेलन में बाबा राघवदास सम्मिलित हुए। इसकी अध्यक्षता डॉ. सम्पूर्णानन्द ने की। बाबा राघवदास ने इस अवसर पर किसानों को मिल मालिकों के शोषण से बचाने के लिए पुन: कोल्हू की शरण लेने की राय दी। तमकुही रोड में विश्वनाथ प्रसाद मुखर्जी के सभापतित्व में 4 मई 1937 ई. को एक सभा हुई जिसे बाबा जी ने सम्बोधित किया। पडरौना तहसील किसान सम्मेलन में 27 मई 1937 ई. को भाषण करते हुए उन्होंने अंग्रेजी राज्य को भारतीयों के सभी कठिनाइयों और कष्टों का मूल कारण बताया। 18 अप्रैल 1938 ई. को पडरौना में ही जमींदारों और किसानों में संघर्ष हो गया जिसमें 23 लोग घायल हो गये।[3] 28 फरवरी 1940 ई. को कठकुईयाँ में चीनी

मिल मजदूर संघ का द्वितीय वार्षिकोत्सव बाबा राघवदास की अध्यक्षता में हुआ। रामधारी शास्त्री, काशीनाथ पाण्डे, गौरीशंकर द्विवेदी तथा मेवाजी सिंह उपस्थित रहे। अपने अध्यक्षीय भाषण में बाबा जी ने मजदूरों की माँगों को उचित ठहराते हुए मिल मालिकों द्वारा उक्त माँगें पूरी न किये जाने की स्थिति में हड़ताल करने की चेतावनी दी, फलस्वरूप 12 मार्च 1940 ई. को मिल मजदूरों ने व्यापक हड़ताल आरम्भ कर दी। उनकी माँगों में वेतन-वृद्धि, भत्ता और अन्य कई सुविधाएँ शामिल थीं। हड़ताल के कारण 16 मार्च को धारा 144 के अन्तर्गत प्रोफेसर सिब्बनलाल सक्सेना सहित 16 व्यक्तियों को गिरफ्तार कर लिया गया। इसके समाधान के लिए बाबा राघवदास जी ने पण्डित जवाहरलाल नेहरू एवं अन्य महत्त्वपूर्ण नेताओं से परामर्श करने का निश्चय किया। पण्डित जवाहरलाल नेहरू और रामकृष्ण पालीवाल ने सरकार और मजदूरों को सम्मानजनक समझौते के लिए वार्ता प्रारम्भ करने का सुझाव दिया। इस सुझाव के अनुसार 21 मार्च 1940 ई. को मजदूरों ने अपनी हड़ताल वापस ले ली और हसन की अध्यक्षता में मिल मजदूरों तथा मालिकों के बीच समझौता वार्ता प्रारम्भ हुई।[4]

भारत छोड़ो आन्दोलन के दौरान दुदही, पथरदेवा, पडरौना, रामकोला, खड्डा में स्वयंसेवकों की भर्ती का कार्य बड़ी तत्परता से होता था। केवल दुदही मण्डल में ही 27 अप्रैल 1942 ई. तक एक हजार स्वयंसेवक बन चुके थे। स्वयंसेवक बनने के लिए एक प्रतिज्ञा-पत्र था इसे स्वीकार करने पर ही जिला कांग्रेस कमेटी गोरखपुर का स्वयंसेवक बनने का सौभाग्य प्राप्त होता था। इसी तरह का एक प्रतिज्ञा-पत्र श्री उमेश प्रताप प्रसाद की फाईल से प्राप्त हुआ। गोरखपुर में भारत छोड़ो आन्दोलन का प्रारम्भ छात्रों द्वारा विभिन्न स्थानों पर की गयी हड़ताल, कक्षाओं के बहिष्कार तथा पोस्टर इत्यादि चिपकाने जैसे कार्यों से हुआ। 10 अगस्त 1942 ई. को पडरौना तथा गोरखपुर में एवं 11 तथा 12 अगस्त सन् 1942 ई. को कटकुईयाँ में छात्रों द्वारा वातावरण को अशान्त बनाया गया। जिले की सभी कांग्रेसी कार्यालयों की तलाशी ली जा रही थी और पुलिस सभी कागजातों को अपने अधिकार में लेकर कार्यालयों पर कब्जा कर रही थी।[5] 21 अगस्त सन् 1942 ई. को बड़ी संख्या में आन्दोलनकारी अलग-अलग समूहों में भाटपाररानी, बरहज बाजार, सलेमपुर, हाटा, देवरिया, नूनखार, तुर्तीपार, सेवरही, पडरौना, हेतिमपुर, गौरीबाजार, खड्डा, छितौनी आदि अनेक स्थानों पर सड़क पर निकल पड़े और तोड़फोड़ करने लगे।[6] पडरौना समेत दुदही और सेवरही क्षेत्र भारत छोड़ो आन्दोलन में अग्रणी रूप से प्रभावित करता रहा। पडरौना तहसील की भूमिका अविस्मरणीय मानी जाती है। इस आन्दोलन के दौरान पडरौना क्षेत्र की जनता ने स्वयं को ब्रिटिश दासता से मुक्त कर लिया।[7] 22 अगस्त सन् 1942 ई. को बसंतपुर के आसपास के क्षेत्र में 48 घण्टे के लिए ब्रिटिश सरकार समाप्त हो गयी थी। छोटी गण्डक तथा खजुआ के बीच के भू-भाग ने 23 अगस्त सन् 1942 ई. की रात में अत्यन्त ही सन्तोषजनक कार्य किया जिसका समस्त श्रेय श्री अयोध्या प्रसाद राम प्रसाद को दिया जाना चाहिए। 25 अगस्त 1942 ई. को लगभग हजारों की संख्या में कांग्रेसी कार्यकर्ताओं ने पडरौना में जुलूस निकाला जिसका नेतृत्व रंपत राय और बच्चन कर रह थे। इस भीड़ ने पडरौना के आसपास के सभी तार और टेलीफोन के खम्भों को काट दिया।

इससे संचार व्यवस्था ध्वस्त हो गयी।[8] भीड़ ने डाकघर के फर्नीचर और कागजातों को जलाकर राख कर दिया। इसके बाद भीड़ ने थाने का घेराव किया। जनता का उद्देश्य था थाने के भवन अंग्रेजी झण्डे के स्थान पर तिरंगा झण्डा फहराना। थानेदार ने ऐसा करने से मना किया। उत्तेजित भीड़ पर थानेदार को नियन्त्रण बनाये रखना कठिन प्रतीत हो रहा था। भीड़ के इस आक्रोश को देखकर थानेदार ने सिपाहियों को गोली चलाने का आदेश दिया। पुलिस की गोली चलते ही अनेक लोग धराशायी हो गये। एक व्यक्ति की मृत्यु घटनास्थल पर ही हो गयी तथा कई अन्य घायल हो गये। इस घटना में पुलिस द्वारा कुल 7 राउण्ड गोली चलायी गयी। घायलों में रघुपति राय भी थे। इनकी कुछ दिन बाद अस्पताल में मृत्यु हो गयी। 24 अगस्त 1942 ई. को कप्तानगंज रेलवे स्टेशन जला दिया गया। देवरिया में भी तमकुही रोड की रेलवे लाइन उखाड़ने का प्रयास भी किया गया, फलस्वरूप पुलिस ने गोली चलायी जिसमें 4 व्यक्तियों की मृत्यु हो गयी। जगन्नाथ मल्ल जी प्रथम बार सन् 1941 ई. में महात्मा गाँधी के आह्वान पर हुए व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन में जेल गये।[9] 26 अप्रैल सन् 1941 ई. को यहाँ के तीन प्रसिद्ध स्वतन्त्रता सेनानियों रामधारी पाण्डे, बाबू राजवंशी राय तथा मंगल उपाध्याय के साथ इन्हें 1 वर्ष कैद की सजा मिली। सजा के साथ-साथ अन्य सभी लोगों पर एक सौ का अर्थदण्ड भी लगाया गया किन्तु जब मजिस्ट्रेट कोमल जी के राज परिवार से सम्बन्ध की बात ज्ञात हुई तो इनके ऊपर 200 का अर्थदण्ड लगा दिया। मल्ल जी सजा काटकर जेल से बाहर आये और तब और भी सक्रिय हो गये। भारत छोड़ो आन्दोलन के समय 8 अगस्त सन् 1942 ई. की रात में पडरौना के कांग्रेस कार्यालय में सोते समय ही जगन्नाथ मल्ल तथा काशीनाथ पाण्डे आदि को गिरफ्तार कर लिया गया। इस गिरफ्तारी के पश्चात् इनकी रिहाई सन् 1945 ई. में हुई। जेल से छूटने के बाद उन्होंने चीनी मिल मजदूरों को संगठित करना प्रारम्भ कर दिया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गोरखपुर परिक्षेत्र लगातार स्वतन्त्रता आन्दोलन में सक्रिय रहा और यहाँ के स्थानीय क्रान्तिकारियों ने राष्ट्रीय नेताओं के साथ मिलकर देश को स्वतन्त्र कराने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी।

सन्दर्भ:

1. पाण्डेय, राम आधार, हिस्ट्री ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ गोरखपुर, कमला प्रकाशन, लखनऊ, 2001, पृ. 19
2. पाण्डेय, राजबली, गोरखपुर जनपद और उसका इतिहास, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1957, पृ. 139
3. सिंह, ओंकारनाथ, स्वतन्त्रता संग्राम के सैनिक : संक्षिप्त परिचय, सरस्वती प्रकाशन, गोरखपुर, 1982, पृ. 113
4. सहाय, गोविन्द, 1942 का गदर, गुरुवाणी प्रकाशन, लुधियाना, 1979, पृ. 77
5. सरल, श्री कृष्ण, क्रान्ति कथाएँ, अनमोल पब्लिकेशन, गोरखपुर, 1983, पृ. 53
6. दैनिक जागरण पत्र, दैनिक जागरण, गोरखपुर से प्रकाशित, 21 अगस्त, 1942 ई., पृ. 5
7. दैनिक समाचार पत्र, जनवार्ता, वाराणसी से प्रकाशित, 22 अगस्त, 1942, पृ. 3
8. दैनिक समाचार पत्र, आज, गोरखपुर संस्करण, 29 अगस्त, 1942 ई., पृ. 1
9. दैनिक समाचार पत्र, पायनिअर, लखनऊ से प्रकाशित, 7 मार्च, 1941, पृ. 3

'स्व' का जागरण और चौरीचौरा जनक्रान्ति

डॉ. अजय कुमार सिंह*

सार-संक्षेप : चौरीचौरा की घटना भारतीय इतिहास का वह उपेक्षित अध्याय जो पर्याप्त महत्त्व रखते हुए भी अपने ठोस विश्लेषण से वंचित है। चौरीचौरा के बारे में यदि किसी भी आम आदमी से पूछा जाए तो वह भारतीयों की अनुशासनहीनता और क्रूरता के विषय में ही कहेगा, जिसके परिणामस्वरूप 23 ब्रिटिश पुलिसकर्मियों को जीवित जला दिया गया। इस दुर्घटना के आधार पर गाँधी जी ने असहयोग आन्दोलन को वापस ले लिया। भारत के स्वतन्त्रता संग्राम में चौरीचौरा के महत्त्व को समझने के लिए इसके परिप्रेक्ष्य और पृष्ठभूमि को समझना आवश्यक है। आजादी के बाद सरकार के द्वारा अमर शहीदों को सम्मानित करने के बजाय उन्हें उपेक्षित किया गया। इतिहास की कमजोरियों और चालाकियों के कारण बलिदानियों के शौर्य को कम आँका गया। राष्ट्रीय आन्दोलन की यह पहली घटना है जो अंग्रेजों के खिलाफ जबर्दस्त प्रतिरोध थी। चौरीचौरा क्रान्ति एक अभूतपूर्व घटना थी। यह भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मोड़ था, क्योंकि इसने वैकल्पिक क्रान्तिकारी आन्दोलन को जन्म दिया। भगत सिंह और चन्द्रशेखर आजाद दोनों को चौरीचौरी घटना के बहाने बड़े पैमाने पर सत्याग्रह वापस लेने या असहयोग आन्दोलन के कारण महात्मा गाँधी से मोहभंग हो गया था। आज नवीन ऐतिहासिक अनुसन्धानों से चौरीचौरा घटना के प्रति एक नवीन परिप्रेक्ष्य उद्घाटित होता है। चौरीचौरा घटना से पूर्व अतीत की अनेक घटनाओं और तत्कालीन भारतीय परिस्थितियों को ठीक से अवलोकन करने पर इस घटना के प्रति न केवल इतिहासकारों द्वारा किये गये अन्याय बल्कि उन आन्दोलनकारियों के ऊपर हुए अन्याय और ब्रिटिश बर्बरतापूर्ण दमन से भी पर्दा उठता है। इस शोध-पत्र में घटना की पृष्ठभूमि एवं इसमें आन्दोलनकारी युवाओं एवं स्वयंसेवकों की भूमिका पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

बीज शब्द : स्वतंत्रता आंदोलन, चौरी चौरा, जनक्रान्ति, क्रान्तिकारी, सत्याग्रह, गेरूआधारी संत, महन्त दिग्विजयनाथ, पूर्वी उत्तर प्रदेश।

*असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, स्वामी श्रद्धानंद कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

शोध विस्तार

चौरी-चौरा को यदि फलक पर समझा है तो जलियांवाला बाग नरसंहार की घटना को समझना होगा जहाँ एक तथाकथित सुसंस्कृत राष्ट्र नें निहत्थे भारतीयों का कत्लेआम किया। जनाक्रोश राष्ट्रीय हुआ और असहयोग आन्दोलन को इसके कारण आधार मिला। चौरीचौरा का आक्रोश जलियांवाला बाग की घटना का प्रत्युत्तर था, परन्तु दुर्भाग्यवश घटना ने असहयोग आन्दोलन को ही समाप्त कर दिया। विवेचना का प्रश्न है कि यह दुर्भाग्यवश था या एक सिद्धान्त की अवसरवादिता। समकालीन प्रतिक्रिया जो हुई, शायद, उसने चौरीचौरा की घटना के इतिहास लेखन को प्रभावित किया। बारदोली प्रस्ताव के पूर्व ही गोरखपुर खिलाफत कांग्रेस समिति ने चौरीचौरा पर निन्दा प्रस्ताव पारित करते हुए घटना से स्वयं को असम्बद्ध किया।[1] परन्तु वास्तविकता यह थी कि घटना में अधिकांशतः असहयोग से जुड़े हुए स्वयंसेवक थे जो ग्रामीण अंचल पर मदिरा और मांस के बहिष्कार को आगे बढ़ा रहे थे। 1 फरवरी 1922 ई. को ऐसे ही एक स्वयंसेवक भगवान अहीर की चौरीचौरा के दारोगा गुप्तेश्वर सिंह के द्वारा पिटाई कर दी गयी थी, क्योंकि वह बाजार में मांस की बिक्री का विरोध कर रहा था। अर्थात् मूल रूप से गाँधी जी के आह्वान पर चौरीचौरा में यह असहयोग का एक रूप था।

चौरीचौरा जनक्रान्ति की पृष्ठभूमि

चौरीचौरा जनक्रान्ति की पृष्ठभूमि में, असहयोग आन्दोलन के क्रम में चौरीचौरा में 1 दिसम्बर 1921 ई. से बड़े पैमाने पर सैकड़ों लोगों के जत्थे द्वारा विदेशी वस्त्रों, ताड़ी, शराब और मांस-मछली की दुकानों पर धरना शुरू हो गया। शनिवार का दिन सत्याग्रह का दिन था। ब्रिटिश दमन की नीति यह थी कि जिले के अधिकारी, स्थानीय जमींदारों के सहयोग से इन सत्याग्रहियों के ऊपर लाठीचार्ज करवाते तथा उन्हें घोड़ों की टॉप से कुचलवाते थे। यह कार्यक्रम एक नियमित अनुष्ठान सा बन गया था।[2]

असहयोग आन्दोलन के दौरान स्वयंसेवकों द्वारा प्रत्येक घर से अन्न एकत्र किया जाता था। महिलाएँ रसोईघर में एक हंडिया या पतुकी रखती थीं। खाना बनाते समय प्रयुक्त अन्न को चुटकी या मुट्ठी से उठाकर वे उस हंडिया या पतुकी में रख देतीं, जिसे एक निश्चित अन्तराल पर स्वयंसेवकों द्वारा एकत्र कर लिया जाता था। इसी प्रकार, वर्ष में दो बार फसलों की कटाई के बाद अन्न का एक निश्चित भाग 'खलिहानी' के रूप में प्राप्त किया जाता था। यही स्वयंसेवकों के भोजन का आधार था।[3]

31 जनवरी 1922 ई. को डिप्टी कलेक्टर, देवरिया-कसया के द्वारा हाटा में सरकार के समर्थक जमींदारों, व्यापरियों और पुलिस के सहयोगी लोगों की एक बैठक बुलायी गयी। इस बैठक

का मुख्य एजेण्डा था– सत्याग्रह स्थगित करवाना। इस बैठक में सरकार के प्रति स्वामिभक्ति की बात की गयी। इस सरकारी बैठक के विरोध में चौरीचौरा और हाटा में युवाओं ने सभा का आयोजन किया। इसमें यह निर्णय लिया गया कि गाँधी जी का निर्देश प्राप्त होते ही कर देना बन्द कर दिया जायेगा तथा अगले शनिवार को ब्रिटिश सत्ता के दमन, शोषण, तानाशाही और अमानवीय व्यवहार के विरुद्ध मुंडेरा बाजार बन्द कराने की घोषणा की गयी।[4]

सभा में आये स्वयंसेवकों का नेतृत्व नजर अली और लालमोहम्मद कर रहे थे। भगवान अहीर उन्हें पंक्तिबद्ध करने में लगे हुये थे। कुछ सीमा तक श्यामसुन्दर, अब्दुल्ला और शिकारी भी नेतृत्वकारी भूमिका में थे। इसके अतिरिक्त इन्द्रजीत और एक चिमटाधारी संन्यासी (सम्भवतः महन्त दिग्विजयनाथ) भी अग्रणी भूमिका निभा रहे थे। ये क्रान्तिवीर लगातार 'जय' का उद्घोष करते हुए और सीटी बजाते हुए आगे बढ़ रहे थे। डुमरी खुर्द में भाग लेने वाले मुख्य स्वयंसेवक गेरुआ वस्त्र धारण किये हुए थे।[5]

इन सब गतिविधियों ने न सिर्फ चौरीचौरा परिक्षेत्र के लोगों को प्रभावित किया वरन् उन्हें राष्ट्रवादी भावनाओं में सराबोर कर दिया। चौरीचौरा पूर्वांचल में राष्ट्रीय आन्दोलन के एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण गढ़ के रूप में स्थापित हो गया[6] और इसीलिए 13 जनवरी 1922 ई. को यहाँ के डुमरी खुर्द में कांग्रेस का नया मण्डल कार्यालय स्थापित किया गया। सरदार हरचरन सिंह को डुमरी खुर्द के स्वयंसेवकों की गतिविधियों की पूरी जानकारी थी।[7]

इस पृष्ठभूमि में यदि 4 फरवरी 1922 ई. के चौरीचौरा का विश्लेषण करें तो हम पाएँगे कि यहाँ के राष्ट्रीय स्वयंसेवक औपनिवेशिक सत्ता के अत्याचारों को आँख मूँदकर स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे। इन स्वयंसेवकों ने गाँधी जी के सत्याग्रह एवं अहिंसात्मक आन्दोलन की रणनीति में एक नये अहिंसक एवं सत्याग्रही तथ्य को जोड़ा और वो यह था कि– 'हम हिंसा नहीं करेंगे, सत्य पर अडिग रहेंगे परन्तु दुराग्रही प्रतिपक्षी की हिंसा का अहिंसात्मक स्पष्टीकरण अवश्य जानने की कोशिश करेंगे।' यह गाँधी जी के सत्याग्रह आन्दोलनों की कमी थी जिसे चौरीचौरा के आन्दोलनकारियों ने अपने सशक्त प्रतिरोध के द्वारा ठीक करने की कोशिश की। 1 फरवरी 1922 ई. को स्वयंसेवक भगवान अहीर एवं उसके साथी स्वयंसेवकों को चौरीचौरा थाने के पुलिस उपनिरीक्षक गुप्तेश्वर सिंह द्वारा मुण्डेरा बाजार में पीटा गया[8] तो क्षेत्र के स्वयंसेवकों ने दारोगा से इसका कारण जानने एवं अहिंसात्मक प्रतिरोध आन्दोलन को तेज करने के लिए डुमरी खुर्द में शिकारी के घर सभा बुलायी।[9] यद्यपि कि 2 फरवरी 1922 ई. को सुबह ही थाने पर जाकर भगवान अहीर ने थानेदार को अपने कार्यकलाप से सम्बन्धित स्पष्टीकरण दे दिया था जो एक सत्याग्रही के आचरण के अनुरूप था। परन्तु दारोगा के व्यवहार से आहत होकर पुनः उसी दिन शिकारी के घर स्वयंसेवकों की सभा हुई और 4 फरवरी 1922 ई. के प्रतिरोध आन्दोलन की रणनीति तय की गयी। 11 वर्षीय बालक नकछेद ने

विभिन्न इलाकों के स्वयंसेवकों के बुलावे के लिए पत्र तैयार किया। साथ ही जनपद के बड़े कांग्रेसी पदाधिकारियों से भी दिशा-निर्देश प्राप्त करने की कोशिश की गयी। स्पष्ट दिशा-निर्देश के अभाव में स्थानीय पदाधिकारियों ने स्वयं निर्णय लेकर कार्यकर्ताओं के उत्साह को बनाये रखने के लिए, थानेदार से स्पष्टीकरण माँगने एवं असहयोग आन्दोलन के कार्यक्रमों को और तेज करने के लिए 4 फरवरी 1922 ई. को डुमरी खुर्द में सभा के आयोजन एवं सत्याग्रह का संकल्प लिया। परन्तु शिकारी जो एक प्रमुख स्वयंसेवक सत्याग्रही था तथा बाद में सरकारी गवाह बन गया, ने अपनी गवाही में सत्याग्रह की बात को नकार दिया, उसने बताया कि सभा में यह भी तय हुआ कि 'दारोगा से पूछताछ के दौरान यदि वह अभद्रता करेगा तो उसकी पिटाई भी की जायेगी।' परन्तु उच्च न्यायालय की अपनी गवाही में सत्याग्रहियों को पत्र लिखने वाले नकछेद ने बताया कि पत्रों में दारोगा से स्वयंसेवकों की पिटाई का कारण पूछने और विशेष परिस्थिति में एक साथ सभी स्वयंसेवकों की प्रतिरोध स्वरूप गिरफ्तारी देने की बात लिखी गयी थी।[10]

चौरीचौरा के राष्ट्रीय स्वयंसेवकों की एक अलग वर्दी थी। 4 फरवरी को डुमरी खुर्द की सभा के अधिकांश मुख्य स्वयंसेवक तथा जुलूस को नियन्त्रित करने वाले सभी प्रमुख स्वयंसेवक गेरुआधारी थे।[11] सिर्फ भगवान अहीर को छोड़कर क्योंकि वो हमेशा खाकी पहनते थे। अन्य बहुत से स्वयंसेवक अन्य कपड़ों में भी थे। चौरीचौरा पोस्टऑफिस के सहायक पोस्टमास्टर बी. चुन्नी लाल एवं व्यापारी लाला हलवाई के बेटे हरिहर प्रसाद ने भी अपनी गवाही में बताया था कि बहुत से स्वयंसेवक गेरुआ वस्त्र पहने हुए थे।

कई अन्य स्रोत भी गेरुआधारियों की मुख्य भूमिका का उल्लेख करते हैं।[12] दैनिक अखबार 'द लीडर' ने भी 4000 से 5000 सत्याग्रहियों में 400 से 500 गेरुआधारी सत्याग्रहियों की बात की है।[13] चौरीचौरा मामले की जाँच करने वाली कांग्रेस की समिति ने भी 500 से 600 गेरुआधारी स्वयंसेवकों की बात स्वीकार की है।[14] इससे यह स्पष्ट होता है कि यह परिक्षेत्र पूरी तरह से औपनिवेशिक प्रतिरोध का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण केन्द्र बन चुका था, जिसका आधार प्रखर राष्ट्रवाद था।

चौरीचौरा की क्रान्ति का स्वरूप

चौरीचौरा आन्दोलन अथवा क्रान्ति का स्वरूप मूलतः युवा जनक्रान्ति थी। इस आन्दोलन के लिए अभियुक्त बनाये गये 225 लोगों की उम्र का विश्लेषण करें तो हम पाते हैं कि प्रौढ़ों की उपस्थिति लगभग नगण्य थी। इसमें 16 से 20 वर्ष के 33 युवक, 21 से 25 वर्ष के 51 युवक, 26 से 30 वर्ष के 48 युवक, 31 से 35 वर्ष के 31 युवक, 36 से 40 वर्ष के 28 युवक, 41 से 45 वर्ष के 10, 46 से 50 वर्ष के 12, 51 से 55 वर्ष के 6, और 56 से 60 वर्ष के 3, 61 से 65 वर्ष के 2 और 66 से ज्यादा उम्र के 1 व्यक्ति थे। अर्थात् चौरीचौरा की घटना में शामिल 84

प्रतिशत स्वयंसेवक 40 वर्ष या उससे कम उम्र के युवा थे।[15] साथ ही जिन 19 नायकों को फाँसी हुई उनमें से सिर्फ दो चालीस वर्ष की उम्र से अधिक थे। इस आन्दोलन में 70 प्रतिशत से अधिक स्वयंसेवक युवा थे।[16]

उच्च न्यायालय में अपील के लिए सिर्फ सात दिन का समय था। इसी अल्पावधि में बाबा राघवदास इलाहाबाद आये, मोतीलाल नेहरू इत्यादि से वार्ता के पश्चात् अन्ततः उन्होंने मदनमोहन मालवीय, जो बहुत पहले वकालत छोड़ चुके थे, को क्रान्तिकारी अभियुक्तों की पैरवी के लिए तैयार कर लिया जिसका परिणाम यह हुआ कि 172 मृत्युदण्ड पाये क्रान्तिकारियों में से 38 निर्दोष करार दिये गये। सिर्फ 19 को मृत्युदण्ड मिला तथा बाकी को अलग-अलग सजाएँ।[17]

यही नहीं सेशन कोर्ट के फैसले के तुरन्त पश्चात् बाबा राघवदास ने 11 फरवरी 1923 ई. को चौरीचौरा थाने के निकट एक विशाल जनसभा को सम्बोधित करते हुए आश्वासन भी दिया कि सरकार को अपना फैसला बदलना ही पड़ेगा।[18] इस भाषण के लिए बाबा राघवदास को एक वर्ष के कारावास का दण्ड दिया गया। उनके केस हिस्ट्री टिकट पर लिखा गया, "चौरीचौरा के बाबा राघवदास।"[19]

पुलिस के असीमित अत्याचारों का वर्णन करते हुए देवदास गाँधी ने इस घटना को 'दूसरी ननकाना'[20] की संज्ञा दी। उनके अनुसार 'पुलिस बेगुनाह लोगों को लगातार प्रताड़ित कर रही थी।'[21]

24 मार्च 1922 ई. तक आते-आते पुलिस और गुप्तचर विभाग ने मिलकर इस घटना में 273 व्यक्तियों का चालान दाखिल किया। चालान विभिन्न आरोपों और धाराओं के अन्तर्गत प्रस्तुत किये गये थे।[22]

इस घटना के तुरन्त बाद अंग्रेजों ने मार्शल लॉ लागू कर दिया, जिसन चौरीचौरा और आसपास के इलाकों में सीधे सेना को सत्ता हस्तान्तरित कर दी। जैसा कि अपेक्षित था, कई छापे मारे गये, जिसके कारण सैकड़ों लोगों की गिरफ्तारी हुई।[23] जबकि कई को कथित तौर पर बन्द कर दिया गया और अत्याचार किया गया, 228 को परीक्षण के लिए लाया गया। उन्हें दंगे और आगजनी के आरोप में गिरफ्तार किया गया था, और मुकदमा आठ महीने तक चला।

लन्दन की साधारण सभा ने चौरीचौरा की घटना पर अपनी राय प्रकट करते हुए यह ध्यान आकर्षित किया था कि भारत में जो इस समय अशान्ति और कानूनों की अवहेलना हो रही है, इसका प्रत्यक्ष दोषी भारत का मंत्री मांटेग्यू है। साधारण सभा ने ब्रिटिश सरकार को शीघ्र ही कार्यवाही करने का प्रस्ताव पास किया।[24] मांटेग्यू ने यह स्वीकार किया कि भारत में स्थिति भयंकर तथा आशाजनक है।[25] यही कारण था कि ब्रिटिश सरकार ने चौरीचौरा क्षेत्र में सेना को हस्तान्तरित कर दिया।

'अब्दुल्ला और अन्य बनाम सम्राट' (सेशन कोर्ट, गोरखपुर)

यह मुकदमा अब्दुल्लाह व अन्य बनाम ब्रिटिश हुकूमत के नाम से चला। अदालती कार्यवाही के बाद 19 लोगों को सजा-ए-मौत के बाद विभिन्न जेलों में फाँसी दे दी गयी। चौरीचौरा प्रकरण में 273 विद्रोहियों को गिरफ्तार किया गया था। जबकि 54 फरार हो गये थे। इनमें से एक की मौत हो गयी थी। 272 में से 228 पर मुकदमा चला, मुकदमे के दौरान तीन लोगों की मौत हो गयी जिससे 225 लोगों के खिलाफ ही फैसला आया था।[26] गोरखपुर सत्र न्यायालय का नाटकीय फैसला 9 जनवरी, 1923 ई. को 'अब्दुल्ला और अन्य बनाम सम्राट' के नाम से आया।[27] सेशन कोर्ट आधारहीन तरीके से 172 आन्दोलनकारियों को फाँसी पर लटका देना चाहती थी।[28]

सेशन जज एच.ई. होम्स ने तमाम न्यायिक प्रक्रियाओं को पूरा करने के बाद 9 जनवरी, 1923 ई. को अपना निर्णय दिया। निर्णय 418 पृष्ठों में अंकित था। निर्णय में कहा गया था कि - "यह लोमहर्षक दुर्घटना सविनय अवज्ञा आन्दोलन का ही नतीजा था। यदि यह आन्दोलन न चला होता तो सम्भवत: यह घटना न हुई होती।"[29]

सेशन जज के निर्णय के अनुसार सजाएँ निम्नलिखित थीं-

1. 172 अभियुक्तों को फाँसी की सजा (मृत्युदण्ड)।
2. 2 अभियुक्तों को घटना के पूर्व घायल होने के कारण दो-दो वर्ष की सजा।
3. 47 अभियुक्तों को सन्देह का लाभ देकर छोड़ दिया गया था।
4. 3 अभियुक्त मुकदमे के दौरान ही, जेल में मर चुके थे और एक को गम्भीर बीमारी के कारण छोड़ दिया गया था।
5. अभियुक्तों को सात दिन का समय, हाईकोर्ट में अपील के वास्ते दिया गया था।[30]

सेशन जज के एकतरफा निर्णय के कारण सम्पूर्ण देश आक्रोश की स्थिति में आ गया। स्थान-स्थान पर हड़ताल एवं सभाएँ हुईं। जुलूसों का ताँता लग गया। सत्याग्रह और धरनों का सहारा लिया गया। फैसले की सामयिक आलोचना करते हुए ऐंग्लो-इण्डियन अखबार 'इंग्लिशमैन' ने 172 मनुष्यों को फाँसी देने पर आक्रोश व्यक्त किया और "सरकार द्वारा किया गया भीषण कुकृत्य" बताया- "इतनी बड़ी भीड़ में सबको एक साथ अपराधी मान लेना ठीक नहीं था।"[31]

गोरखपुर जनपद में पुलिस का अत्याचार एवं आतंक पहले की तरह जारी रहा, पर चौरीचौरा के निर्णय ने जनता की सुप्त चेतना को एक बार पुन: जोर से झकझोर दिया। सर्वप्रथम सुप्त चेतना को गति देने वाले थे- बाबा राघवदास। उन्होंने सरकारी आज्ञा का उल्लंघन कर, 11 फरवरी, 1923 ई. को चौरीचौरा थाने के निकट एक विशाल सभा को सम्बोधित किया। अपने ओजपूर्ण वक्तव्य में,

उन्होंने शान्ति, अनुशासन बनाये रखने की अपील की और आश्वासन दिया कि सरकार को अपना वह फैसला बदलना पड़ेगा, जिसमें एक साथ इतने लोगों को मृत्युदण्ड दिया गया है। बाबा राघवदास को पुलिस ने उत्तेजनात्मक भाषण देने के आरोप में गिरफ्तार कर लिया और कुछ माह तक नजरबन्दी के बाद छोड़ दिया।[32]

'अब्दुल्ला और अन्य बनाम सम्राट' (हाई कोर्ट, प्रयाग)

(Chauri-Chaura Appeal, No. 51 of 1923, King Emperor vs Abdullah and other)

बाबा राघवदास की कोशिशों से सेशन जज के फैसले के खिलाफ उच्च न्यायालय, इलाहाबाद में अपील की गयी। इस केस में पं. मदनमोहन मालवीय, मोतीलाल नेहरू सहित उच्च न्यायालय के सभी बड़े वकीलों ने निःशुल्क पैरवी की। इस फैसले को बदलने के लिए 1 मार्च, 1923 ई. को इलाहाबाद उच्च न्यायालय में अपील हुई और उच्च न्यायालय में 6 मार्च, 1923 ई. को इस मुकदमे की सुनवाई शुरू हुई, जिसका फैसला 30 अप्रैल, 1923 ई. को सुनाया गया लेकिन उच्च न्यायालय में प्रमाणित कर पाना मुश्किल था। 19 नेतृत्वकर्ताओं को चुन-चुन कर फाँसी की सजा दे दी गयी। चौरीचौरा की यह घटना विश्व इतिहास की महत्त्वपूर्ण घटना बन गयी।

मुलजिमों की ओर से पण्डित मदनमोहन मालवीय ने अपने सहयोगी देवीप्रसाद के साथ अपील की प्रक्रियाओं को पूरा करने में असीम दक्षता एवं प्रतिभा का परिचय दिया था। सत्ता पक्ष की ओर से मिस्टर एल.एम. बनर्जी, डिप्टी पुलिस महानिरीक्षक की सहायता से मुकदमे की पैरवी कर रहे थे। हाईकोर्ट में 6 मार्च 1923 ई. से मुख्य न्यायाधीश सर ग्रिम वुड पीयर्स और न्यायाधीश पीगट के समक्ष इस ऐतिहासिक मुकदमे की सुनवाई प्रारम्भ हुई थी।[33]

मालवीय जी ने दस बजे न्यायाधीशद्वय के समक्ष अपनी बहस शुरू की। मालवीय जी का कथन था कि- यदि चौरीचौरा हत्याकाण्ड एक पूर्वनियोजित षड्यन्त्र था, तो उसको न्यायालय में लाने के पूर्व प्रान्तीय सरकार की अनुमति लेना आवश्यक था। इसके अलावा उन्होंने गवाहों के परस्पर विरोधी बयानों पर भी न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया।[34] 8 मार्च 1923 ई. को बहस में मालवीय जी ने तर्कपूर्ण बात कही - सरकारी गवाह ठाकुर को छोड़कर किसी ने भी यह नहीं कहा कि दारोगा को पीटने का कोई पूर्वनियोजित षड्यन्त्र था। उनका कहना था कि मजमे का थाने की ओर जाने का उद्देश्य मात्र इतना था कि वे दारोगा से स्पष्ट जानना चाहते थे कि उन्होंने कांग्रेस स्वयंसेवकों को क्यों पीटा? तत्पश्चात् पिकेटिंग हेतु मुण्डेरा बाजार जाने का उद्देश्य था। मालवीय जी के इस कथन पर मुख्य न्यायाधीश पीयर्स ने टिप्पणी की कि दारोगा को यह अधिकार था कि मुण्डेरा बाजार में पिकेटिंग तथा लूटमार रोके। कानून का रक्षक होने के नाते उसे यह विश्वास नहीं था कि इतनी बड़ी भीड़ का सामान्य उद्देश्य शान्तिपूर्ण पिकेटिंग है।[35] 9 मार्च 1923 ई. को मालवीय जी ने भीड़ का सामान्य उद्देश्य अहिंसात्मक बताते हुए अपनी तर्कपूर्ण एवं सारगर्भित बहस समाप्त की।[36] मुख्य

न्यायाधीश पीयर्स मालवीय जी की विद्वता एवं प्रतिभा से बहुत प्रभावित हुआ। उसने कहा– जिस प्रकार आपने इस मामले की विद्वतापूर्ण पैरवी की है, इसके लिए अभियुक्त तथा उनके परिवार के सदस्यगण आपके चिर ऋणी रहेंगे। मैं अपने तथा अपने साथी न्यायाधीश पीगट की ओर से सुन्दर एवं तर्कपूर्ण बहस पर हार्दिक वधाई देता हूँ।[37]

मालवीय जी के बाद काशीनाथ मालवीय ने भी अभियुक्तों की ओर से बहस की थी। उन्होंने भी अपने विशिष्ट तर्कों द्वारा अभियुक्तों को निर्दोष साबित करने की कोशिश की थी।[38] न्यायाधीश पीयर्स तथा पीगट ने 30 अप्रैल 1923 ई. को चौरीचौरा घटना का फैसला सुनाया। हाईकोर्ट के निर्णय के अनुसार अभियुक्तों को निम्नलिखित प्रकार की सजाएँ दी गयी थीं–

1. 19 अभियुक्तों को मृत्युदण्ड।
2. 16 अभियुक्तों को आजीवन कारावास।
3. 19 मुलजिमों को आठ-आठ वर्ष की सजा।
4. 57 को पाँच-पाँच वर्ष की सजा।
5. 3 अभियुक्तों को दो-दो वर्ष की सजा।
6. 20 अभियुक्तों को उम्र अधिक होने के कारण दो-दो वर्ष की सजा।
7. 38 अभियुक्त निरपराध घोषित हुए और उन्हें रिहा कर दिया गया।

हाईकोर्ट के फैसले की सम्पूर्ण भारतवर्ष में तीखी आलोचना हुई। गोरखपुर से निकलने वाले पत्र 'स्वदेश' ने अपनी सम्पादकीय में लिखा कि– "चौरीचौरा का फैसला सुनकर हमारे दबे दर्द उभर जाते हैं। पुराने दाग फिर नये हो जाते हैं। रुके आँसू फिर उमड़ आते हैं।"[39] 'अभ्युदय' ने इस निर्णय की आलोचना करते हुए 'भारत के वक्षस्थल पर एक जबर्दस्त प्रहार' बताया था।[40]

राष्ट्रीय आन्दोलन में चौरीचौरा जनक्रान्ति ने सर्वाधिक हस्तक्षेप किया। यह जनक्रान्ति देश की आजादी के लिए निर्णायक रहा। चौरीचौरा के महानायकों को इतिहास में विशेष जगह नहीं मिली। जब इतिहास सच्चे नायकों के साथ न्याय नहीं करता है तो लोक अपने नायकों को खुद सम्मानित करता है। डुमरी खुर्द में आज भी मोहर्रम के गीतों में महिलाएँ नजर अली और विक्रम की कुर्बानी की याद करती हैं।

चौरीचौरा, वह स्थान है जहाँ असहयोग आन्दोलन आयाजित हुआ और समाप्त हो हुआ, जिससे जनमानस और गाँधीवादी आदर्शों के बीच सामंजस्य बनाये रखने में कठिनाई हुई, आज के भारत में अपनी प्रमुखता खो दी है। चौरीचौरा रेलवे स्टेशन के बगल में चौरीचौरा स्मारक उन ब्रिटिश पुलिस वालों का स्मारक 1923 ई. में ही बनकर तैयार हो गया और आजादी के बाद भी वहाँ पुलिस

विभाग परम्परा द्वारा सम्मानित करना चाहता है। आजादी के बाद इस स्मारक का राष्ट्रीयकरण किया गया है और वहाँ 'जयहिन्द' शब्द खुदा हुआ है, जो राष्ट्रीय भावना को व्यक्त करता है। मृतकों के नाम पुलिसकर्मी खुदा है लेकिन वह जगह नहीं है जहाँ कहानी खत्म होती है। ये शिलालेख रेखांकित करते हैं कि भारत के हिन्दू और मुस्लिम नागरिकों के बीच अन्तर जो इस तथ्य से परिलक्षित होता है कि द मुस्लिम नाम उर्दू (अंकित) और हिन्दू नाम हिन्दी में लिखे गये (केवल चित्रित)।

महात्मा गाँधी और चौरीचौरा

चौरीचौरा के बहस में एक महत्त्वपूर्ण कारक जिसके सम्बन्ध को आगे बढ़ाने की आवश्यकता है, वह है 'चौरीचौरा जनता और गाँधी के बीच सम्बन्ध'। महात्मा की छवि का निर्माण गोरखपुर की जनता ने किया था– 'गाँधी बाबा की जय', 'गाँधी जी की जय', 'गोलियाँ गाँधी जी की कृपा से पानी हो गयीं' और उससे अलग था, लोकजन के मन में। गोरखपुर में गाँधी की यात्रा उनके इलाके में अधिक थी, न कि उनकी भौतिकता के सन्दर्भ रूप में, महात्मा के विचार के रूप में जो एक लोकप्रिय कल्पना पर काम करने के लिए बनाया गया था। इन तथाकथित 'सामान्य लोगों' द्वारा आवंटित की जाने वाली एकमात्र भूमिका का पालन किया जाना अपेक्षित है। इस प्रकार के बीच एक राजनीतिक मध्यस्थता का पता लगाया जा सकता है। किसानों और उनके महात्मा के बीच सम्बन्ध। गाँधी जी का भाषण 'सामाजिक बहिष्कार' के विचार पर नहीं बल्कि आत्मसंयम पर केन्द्रित था जो स्वराज को सीधे प्राप्त करने में मदद करेगा।

16 फरवरी 1922 ई. को गाँधी जी ने 'यंग इण्डिया' में 'चौरीचौरा का अपराध' (The Crime of ChauriChaura) शीर्षक से एक लेख लिखा, जिसमें उन्होंने असहयोग असहयोग आन्दोलन स्थगित किये जाने को ईश्वर की तीसरी चेतावनी कहा।[41] गाँधी जी ने चौरीचौरा घटना के प्रायश्चित में 12 फरवरी 1922 ई. की शाम से 5 दिन का उपवास आरम्भ किया।[42]

इस लेख में गाँधी जी ने चौरीचौरा के क्रान्तिवीरों को अपना 'गुनाह'[43] स्वीकार करने और स्वयं को कानून के हवाले कर देने का आदेश दिया। इसके साथ ही उन्होंने गोरखपुर के कार्यकर्त्ताओं का आह्वान करते हुए कहा कि 'वे, यह बुरा काम करने वालों, यानी चौरीचौरा की क्रान्ति में शामिल स्वयंसेवकों को खोज निकालें और उन्हें पकड़कर कानून के हवाले कर दें। गाँधी जी के अनुसार 'चौरीचौरा के स्वयंसेवकों को यह पता होना चाहिए कि उन्होंने स्वराज के रास्ते में कितनी बड़ी बाधा पहुँचाई है।'[44]

11 फरवरी 1922 ई. को गाँधी जी ने बारदोली में कांग्रेस कार्यकारिणी की बैठक बुलाकर अपने संकट की बात कही।[45] अनेक सदस्य उनके साथ सहमत नहीं हुए लेकिन गाँधी जी ने कहा, "उन्हें ईश्वर का आशीर्वाद मिला है, नहीं तो उनके सहकर्मी उनके प्रति इतनी सहानुभूति का भाव

कैसे दिखलाते? उनकी दुविधा क्या है, यह उनके सहकर्मियों ने समझा है और उन्हीं के अनुरोध पर उन्होंने कानून भंग आन्दोलन को स्थगित करना स्वीकार किया है और सारे संगठन को अहिंसा के उपयुक्त वातावरण तैयार करने के लिए आमन्त्रित किया है।" "कुछ लोग मेरे विरोध में कहते हैं कि, बारदोली में जो कुछ हुआ उसके साथ चौरीचौरा की क्रूरता का कोई सम्बन्ध नहीं है- इसके बारे में मुझे भी कोई सन्देह नहीं। देश के लोगों की तुलना में बारदोली के लोग बड़े शान्तिप्रिय हैं लेकिन इस विशाल देश के मुकाबले में बारदोली है ही कितनी सी? दूसरे इलाकों के पूरे सहयोग के बिना तो उसका उद्योग सफल नहीं हो सकता। दूध भरे बर्तन में एक बूँद जहर पड़ जाये तो वह सारे दुध को पीने के अयोग्य बना देता है, चौरीचौरा वही प्राणघातक विष है और चौरीचौरा में जो कुछ हुआ, वह अकेला नहीं है- चौरीचौरा के द्वारा सारे देश में रोग का महत्त्वपूर्ण लक्षण दिख पड़ा है।"[46] कानून भंग आन्दोलन का मतलब ही है चुपचाप अत्याचार सह लेने की तैयारी - इसी से उस आन्दोलन को सब तरह की उत्तेजना से रहित होना ही पड़ता है। उसका परिणाम शान्त और दृष्टि से अगोचर होने पर भी अद्‌भुत होता है। चौरीचौरा की क्रूरता में उंगली के इशारे से राह दिखा रही है। हमें फिर भी शान्ति का वातावरण तैयार करना होगा। सरकार के तमाम उकसाहट के बावजूद जनता के कानून भंग आन्दोलन को हम शान्तिपूर्ण बनाये रख सकेंगे, जब तक हम में यह विश्वास दृढ़तापूर्वक नहीं आता, तब तक हम आन्दोलन आरम्भ करने की बात सोच भी नहीं सकेंगे। इसके लिए यदि विरोधी मुझे डरपोक कहेंगे तो भी मैं ईश्वर को धोखा न दूँगा। हमारा आन्दोलन हिंसा के मार्ग पर न जाय अथवा हिंसा का अग्रदूत बन जाय, इसके लिए मैं सब तरह का दण्ड सहने को तैयार हूँ मैं सब तरह के अत्याचार, सम्पूर्ण निर्वासन, यहाँ तक कि मृत्यु को भी स्वीकार करने को राजी हूँ।"[47]

गाँधी जी ने स्वयं स्वीकार किया कि लोग इस काम को राजनीतिक दृष्टि से असम्भव और असंगत मान सकते हैं। देश की सारी शक्ति को एकत्रित करके आन्दोलन के ठीक समय पर उसे इस तरह से रोक देना और स्पष्ट संकेत न देना सचमुच संकट को आमन्त्रित करना है खासतौर से तब जब वह देश तीन-तीन बार पूरी तैयारी के साथ आगे बढ़ा है और तीनों ही बार हाथ उठाकर उसे रोक दिया गया है तथा जब वह हाँफता हुआ प्रतीक्षा कर रहा है इससे आग्रह के दमित होने की आशंका है और आशंका है देश को बाँधने की क्षमता के अचानक टूट जाने की। गाँधी जी ने 12 फरवरी 1922 ई. को बारदोली में कांग्रेस कार्य समिति की एक बैठक बुलायी जिसमें चौरीचौरा घटना के कारण सामूहिक सत्याग्रह व सविनय अवज्ञा आन्दोलन स्थगित करने का प्रस्ताव पारित कराया गया।[48] प्रस्ताव में रचनात्मक कार्यों पर जोर दिया गया, जिसमें कांग्रेस के लिए 1 करोड़ सदस्य भर्ती करना, चरखे का प्रचार, राष्ट्रीय विद्यालयों की स्थापना, मादक द्रव्य निषेध और पंचायत संगठित करना आदि सम्मिलित था।[49] 24 फरवरी 1922 ई. को जब कांग्रेस समिति की बैठक दिल्ली में हुई स्वभावत: गाँधी जी को बहुत विरोध का सामना करना पड़ा।[50] 13 तारीख को बारदोली में

जो निर्णय किये गये थे, बहुत बहस के बाद उसका समर्थन सम्भव हो सका था। असहयोगी दो हिस्सों में बँट गये। बहुत से लोगों ने असन्तोष व्यक्त किया और मत प्रकट किया कि गाँधी के तौर-तरीके देश के उत्साह का गला घोंट रहे हैं।[51] चौरीचौरा की घटना के आधार पर असहयोग आन्दोलन को स्थगित करना मानो आक्रमण के लिए सरपट चाल से आगे बढ़ते हुए घुड़सवारों को एकदम रुककर पीछे हटने की आज्ञा दे दी गयी।[52] जबकि देवदास गाँधी द्वार लिखे तार में यह स्पष्ट उल्लेख किया गया था कि चौरीचौरा में उपद्रव संयोग से ही हो गया, इस उपद्रव की पहले से कोई तैयारी नहीं थी।[53]

गाँधी जी की इस प्रतिक्रिया के बाद राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय समाचार-पत्रों ने चौरीचौरा क्रान्ति को एकपक्षीय दृष्टि से देखते हुए पन्ने-दर-पन्ने निर्लज्ज लीपापोती की। उदाहरण के लिए 'द लीडर- 8 फरवरी 1922 ई. ने लिखा– "After Bombay Gorakhpur Orgy of Blood and Arson, Policemen Butchered and Burnt - organised attack on Police Station."[54] इस खबर में घटना को सुनियोजित जामा पहना दिया गया। दिनांक 09 फरवरी के 'द लीडर' अखबार में एक और खबर छपी– "The Gorakhpur Tragedy - Graphic Account of Frightful Scene"[55] 'आज' अखबार बुधवार 26 सौर माघ, संवत् 1978 चै. ने शीर्षक 'गोरखपुर में भीषण उपद्रव'[56] जनता पर गोली, थाने पर हमला, पुलिस कर्मचारियों की निर्मम हत्या'। 'अभ्युदय' साप्ताहिक पत्र 11 फरवरी 1922 ई., ने शीर्षक दिया– 'खेदजनक और भीषण हत्याकाण्ड- दो दरोगा और 15 कांस्टेबिलों की हत्या'।[57] 'अभ्युदय', 18 फरवरी, 1922 ई., गोरखपुर का गुनाह'[58] के रूप में स्थापित कर दिया गया।

स्वाधीनता संग्राम में ब्रिटिश सत्ता के सबसे बड़े प्रतीक का विधवंस करने वाले इस इकलौते कृत्य को गौरवान्वित करने की बजाय, अत्यधिक उपेक्षित किया गया। यह कितना आश्चर्यजनक है कि बिना किसी बड़े या राष्ट्रीय नेतृत्व के सम्पादित, जिस घटना को असाधारण समझा जाना चाहिए था, उसे 'गुण्डों का कृत्य' कहा गया। लम्बे समय तक इन क्रान्तिवीरों को गँवार, अनपढ़, जाहिल और चोर-उचक्का कहकर अपमानित किया जाता रहा।

चौरीचौरा की जनक्रान्ति को किसी स्थानीय घटना के रूप में नहीं देखना चाहिए। इस घटना का देशव्यापी फलक और राष्ट्रीय महत्त्व है। हमारे राष्ट्रीय इतिहास का एक लावारिस पन्ना जिसकी विरासत पर किसी का कोई दावा नहीं। महात्मा गाँधी ने न सिर्फ इसे चौरीचौरा का अपराध बताकर किनारा कर लिया बल्कि ये कलंक भी चौरीचौरा के ही माथे है कि बापू को असहयोग आन्दोलन इसी काण्ड के चलते स्थगित करना पड़ा। ये कथित कलंक ही है कि जिसके चलते चौरीचौरा काण्ड का कभी कोई ठोस विश्लेषण नहीं हुआ। हमारी स्मृतियों में बस ये एक ऐसी वारदात की तरह दर्ज है जिसमें एक थाना फूँक दिया गया, थाने में मौजूद 23 पुलिस वाले जल मरे और तारीख थी 4

फरवरी, 1922 ई.। बहस और सुनवाई के दौरान लगातार ये बात सामने आती रही कि ये घटना कांग्रेसी वालण्टियर्स के असहयोग आन्दोलन का नतीजा थी, मगर कांग्रेसी लगातार इसे 'गुण्डों का कृत्य' बताकर पल्ला झाड़ते रहे।

वास्तव में चौरीचौरा की जनक्रान्ति 'स्व' का जागरण था जो अब भारतीयों में सक्रिय हो गया था, क्योंकि अंग्रेजों की समस्त नीतियों व कुछ अंग्रेजों के चाटुकार भारतीय नेताओं को जनता समझ चुकी थी और अब वह बदलाव चाहती थी जिसका परिणाम था 'स्व' का जागरण व जिसकी प्रतिक्रिया थी चौरीचौरा की घटना।

सन्दर्भ-सूची:

1. 'आज', 19 फरवरी 1922 ई., चौरीचौरा हत्याकाण्ड जिला कांग्रेस कमेटी की घोषणा, पृ. 7, नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय, नई दिल्ली
2. श्रीवास्तव, अनिल कुमार, चौरीचौरा का स्वातन्त्र्य समर : एक ऐतिहासिक दस्तावेज, लीला प्रकाशन संस्थान, गोरखपुर, 1986 ई., पृ. 25
3. वही, डॉ. अनिल कुमार श्रीवास्तव, पूर्वोद्धृत, पृ. 25
4. वही, डॉ. अनिल कुमार श्रीवास्तव, पूर्वोद्धृत, पृ. 26
5. 'द लीडर', 10 फरवरी 1922 ई., पृ. 6, नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय, नई दिल्ली
6. श्रीवास्तव, डॉ. अनिल कुमार, पूर्वोद्धृत, पृ. 22-23
7. कुशवाहा, सुभाष चन्द्र, चौरीचौरा, पेंगुइन बुक्स इण्डिया, दिल्ली 2014 ई., पृ. 97-98
8. 'आज', 2 फरवरी 1922 ई.; 'अभ्युदय', 11 फरवरी 1922, नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय, नई दिल्ली
9. जजमेण्ट ऑफ हाईकोर्ट, पैरा-12
10. वही, पैरा-13
11. 'द लीडर', 10 फरवरी 1922 ई., पृ. 6, नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय, नई दिल्ली
12. 'अभ्युदय', 18 फरवरी 1922 ई., चौरीचौरा का हत्याकाण्ड, हमले का विस्तृत विवरण, जीवित कांस्टेबिल का बयान, पृ. 4, नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय, नई दिल्ली
13. 'द लीडर', 12 फरवरी 1922 ई., नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय, नई दिल्ली
14. 'द लीडर', 23 फरवरी 1922 ई., नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय, नई दिल्ली
15. जजमेण्ट ऑफ सेशन कोर्ट, 'आज' 3 मई 1923 ई., 'चौरीचौरा की दुर्घटना, हाईकोर्ट के न्याय का नमूना', पृ. 4, नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय, नई दिल्ली
16. 'अभ्युदय', 31 मार्च 1923 ई., पृ. 3, नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय, नई दिल्ली
17. 'आज', 3 मई, 1923 ई., पृ. 4, नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय, नई दिल्ली
18. गुप्तचर विभाग (संयुक्त प्रान्त) के अभिलेख (1923 ई.), पैरा-257

19. 'आज', 18 अप्रैल 1955 ई. (बाबा राघवदास, ले. रामविनायक सिंह)
20. 'आज', 10 फरवरी 1922 ई., गोरखपुर का उपद्रव, देवदास गाँधी का सन्देश, पृ.-4, नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय, नई दिल्ली
21. 'लीडर', 10 फरवरी 1922 ई.; 'आज', 9 फरवरी 1922 ई., गोरखपुर का उपद्रव, पृ.-4, नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय, नई दिल्ली
22. ट्रॉयल प्रोसीडिंग, किंग एण्ड एम्परर वर्सेज अब्दुल्ला एण्ड 225 अदर्स।
23. 'आज', 13 फरवरी 1922 ई., भारत की अशान्ति, पृ. 5, नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय, नई दिल्ली
24. 'आज', 15 फरवरी 1922 ई., मांटेग्यू का वक्तव्य, पृ. 3, नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय, नई दिल्ली
25. 'आज', 9 फरवरी 1922 ई., भीषण उपद्रव, पृ. 3, 4, नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय, नई दिल्ली
26. 'आज', 3 मई 1923 ई., पृ. 3, 4, नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय, नई दिल्ली
27. 'आज', 12 जनवरी 1923 ई., चौरीचौरा उपद्रव, होम्स ने फैसला सुना दिया, पृ. 4; 'आज', 13 जनवरी, 1923 ई., पृ. 4, नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय, नई दिल्ली
28. फाइल नं. होम पोलिटिकल 146/23/1923 (ChauriChaura Appeal No. 51 of 1923, King Emperor vs Abdullah and Other) (PR_000003030688) राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली, पृ. 3
29. ट्रॉयल प्रोसीडिंग 44/45, 1922 फा.नं. 622/44 राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली
30. ट्रॉयल प्रोसीडिंग 44/45, 1922, 'आज' 11 फरवरी 1923 ई.
31. इंग्लिशमैन से स्वदेश में उद्धृत 21 जनवरी 1923 ई., नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय, नई दिल्ली
32. बाबा राघवदास स्मृति ग्रन्थ, पृ. 223-224
33. फाइल नं. होम पोलिटिकल 146/23/1923 (ChauriChaura Appeal No. 51 of 1923, King Emperor vs Abdullah and other) राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली
34. 'स्वदेश', 1 अप्रैल 1923 ई., नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय, नई दिल्ली
35. 'द पायोनियर', 11 मार्च 1923 ई., नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय, नई दिल्ली
36. 'द पायोनियर', 11 मार्च 1923 ई., नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय, नई दिल्ली
37. 'आज', 16 मार्च 1923 ई., चौरीचौरा मामला, मालवीय जी की प्रशंसा, पृ. 4, 5; 'स्वदेश' 19 अप्रैल 1923 ई., नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय, नई दिल्ली
38. 'स्वदेश', 6 मई 1923 ई., नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय, नई दिल्ली
39. 'स्वदेश', 13 मई 1923 ई., नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय, नई दिल्ली
40. 'अभ्युदय', 5 मई 1923 ई., नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय, नई दिल्ली
41. 'आज', 15 फरवरी 1922 ई., चौरीचौरा ईश्वर की तीसरी चेतावनी, पृ. 5, नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय, नई दिल्ली
42. 'आज', 15 फरवरी 1922 ई., महात्मा गाँधी 5 दिन तक अनशन करेंगे, पृ. 5; द पायोनियर 14 फरवरी 1922 ई.; 'आज' 18 फरवरी 1922 ई., महात्मा गाँधी की घोषणा, मैं 5 दिन तक केवल जल पियूँगा, पृ.

6, नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय, नई दिल्ली

43. 'अभ्युदय', 18 फरवरी 1922 ई., गोरखपुर का गुनाह, पृ. 4, नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय, नई दिल्ली

44. 'आज', 18 फरवरी 1922 ई., महात्मा गाँधी की घोषणा, पृ. 2, 6, नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय, नई दिल्ली

45. नवजीवन, 19 फरवरी, 1922 ई., रविवार, वर्ष-1, अंक-27, महात्मा गाँधी, 'घर का चार', अहमदाबाद, पृ. 215-216

46. रोमांरोला, महात्मा गाँधी जीवन और दर्शन, लोकभारती पेपरबैक, इलाहाबाद, 2011 ई., पृ.सं. 65-66

47. Passed at its meeting at Bardoli on Feb. 11,1922

48. फाइल नं. होम पोलिटिकल 580/11/1922 (Reports Received the Postponement of Civil Disobediance at Bardoli) पृ- 2, (PR 000003030459) राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली

49. Resolution at AICC meeting, Delhi, February 25, 1922, The Collected Works of Mahatma Gandhi, Vol. 26 (24 January 1922 - 12 November 1923) p. 228-229

50. The Collected Works of Mahatma Gandhi, Vol. 26 (24 January 1922 - 12 November 1923) p. 138-139

51. प्रताप, 27 फरवरी 1922 ई., बारदोली के निर्णयों पर असन्तोष, पृ. -7, नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय, नई दिल्ली

52. इन्द्र विद्यावाचस्पति : भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम का इतिहास, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006 ई., पृ. सं. 271

53. 'आज', 13 फरवरी 1922 ई., 'गोरखपुर में उपद्रव, श्री देवदास गाँधी का तार', पृ. 5, टेलीग्राम सं. 1335, जवाहरलाल नेहरू पेपर्स, भाग-एक, नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय, नई दिल्ली

54. 'द लीडर', 8 फरवरी 1922 ई. ने लिखा, 'After Bombay Gorakhpur Orgy of Blood and Arson. Policemen Butchered and Burnt - organised attack on Police Station.' page- 4. नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय, नई दिल्ली

55. 'द लीडर', 9 फरवरी 1922 ई., The Gorakhpur Tragedy- Graphic Account of Frightful Scene' page-3, नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय, नई दिल्ली

56. 'आज', 8 फरवरी 1922 ई., 'गोरखपुर में भीषण उपद्रव' जनता पर गोली, थाने पर हमला, 17 पुलिस कर्मचारियों की निर्मम हत्या', पृ. 4, नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय, नई दिल्ली

57. 'अभ्युदय', 11 फरवरी 1922 ई., 'खेदजनक और भीषण हत्याकाण्ड- दो दरोगा और 15 कांस्टेबिलों की हत्या', नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय, नई दिल्ली

58. 'अभ्युदय', 18 फरवरी 1922 ई., 'कानूनों की सामूहिक अवहेलना', 'गोरखपुर का गुनाह' नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय, नई दिल्ली

भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में गोरखपुर का योगदान

अनिल कुमार त्रिपाठी*

अठारहवीं शताब्दी तक गोरखपुर अवध सूबे का अंग था। सितम्बर 1722 में सआदत खाँ को अवध का नवाब एवं गोरखपुर का फौजदार बनाया गया। 1739 में सआदत खाँ की मृत्यु के बाद सफदरजंग अवध का नवाब बना। अक्टूबर 1754 में सफदरजंग की मृत्यु के बाद उसके पुत्र सुजाउद्दौला को अवध का नवाब बनाया गया। उसके शासन काल में सुख-समृद्धि का वातावरण उत्पन्न हुआ। सन् 1775 में सुजाउद्दौला की मृत्यु के बाद आसफुद्दौला अवध का शासक बना। अंग्रेजों ने रुहेलों के विरुद्ध लड़ाई में अवध के नवाब सुजाउद्दौला को सैनिक सहायता दी थी, जिसका व्यय-भार अवध के नवाब के ऊपर था। अतः लार्ड वेलेजली ने क्षतिपूर्ति स्वरूप आसफुद्दौला से गोरखपुर और बहराइच जिलों को ले लिया। तत्कालीन गोरखपुर में गोरखपुर, देवरिया और बस्ती आदि क्षेत्र सम्मिलित थे। इस प्रकार सन् 180। में गोरखपुर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधीन आ गया और इस क्षेत्र का प्रशासन स्टलेज नामक अंग्रेज अधिकारी को सौंपा गया।[1]

उस समय अवध शासन के अधीन इस क्षेत्र में कई रजवाड़े शासन करते थे, जिनमें बांसी, उनवल, रुद्रपुर, मझौली, तमकुही, सलेमपुर, पडरौना, जगन्नाथपुर, निचलौल आदि प्रमुख थे। सन् 1857 के स्वतन्त्रता संग्राम ने इस क्षेत्र में भी शक्ति का संचार किया। सन् सत्तावन की आग जैसे ही इस क्षेत्र में पहुँची वैसे ही फैजाबाद के मुहम्मद हसन ने अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध का बिगुल बजा दिया और बस्ती तथा गोरखपुर के सामन्तों को एक झण्डे के नीचे लाने का काम किया। इस लड़ाई में डुमरी नरेश बाबू बन्धु सिंह ने मुहम्मद हसन का साथ दिया। इन दोनों क्रान्तिकारियों ने रुद्रपुर और नरहरपुर के राजा को भी अपने साथ मिला लिया। आन्दोलन जोर पकड़ने लगा। आन्दोलनकारियों की बढ़ती हुई ताकत को देखकर तत्कालीन जिला जज विनयार्ड सपरिवार गोरखपुर से भाग गया। उस समय यहाँ का कलेक्टर आजमगढ़ में बैठता था। वह आन्दोलनकारियों के जाल में फँस गया। मुहम्मद हसन और बन्धु सिंह के नेतृत्व में आन्दोलनकारियों ने गोरखपुर के शस्त्रागार और खजाने पर कब्जा कर लिया तथा ए.डी.एम. वर्ड की कोठी में आग लगा दिया। वर्ड सपरिवार जान बचाकर भाग निकला। उसे मियां साहब ने इमामबाड़े में शरण दी। गोरखपुर के उत्तरी तराई क्षेत्र में आन्दोलनकारियों

*सरस्वतीपुरम लेन-1, जेल बाईपास मार्ग, पी.ए.सी. कैम्प (बिछिया), गोरखपुर (उ.प्र.) 273014, मो. 9839007282

का नेतृत्व वहाँ के राजा रण्डुल सेन ने किया। देखते ही देखते घाघरा का पूरा उत्तरांचल आन्दोलनकारियों के कब्जे में आ गया। मुहम्मद हसन को इस अंचल का नाजिम बनाया गया। उन्होंने अपनी पहली ही घोषणा में अंग्रेजों के सारे कानूनों को खारिज कर दिया और सभी कैदियों को जेल से रिहा कर दिया गया। इस प्रकार सन् 1857 में छह माह तक यह पूरा जनपद अंग्रेजों के कब्जे से मुक्त रहा। गोरखपुर के दक्षिण में जगदीशपुर के राजा कुँवर सिंह एवं उनके भाई अमर सिंह ने भी अंग्रेजों के खिलाफ जनविद्रोह का नेतृत्व किया। अमर सिंह को 1859 में गोरखा सैनिकों ने पकड़कर जेल में बन्द कर दिया जहाँ उनकी मृत्यु हो गयी।

समय ने करवट ली, आन्दोलनकारियों के नक्षत्रों की आभा धीमी पड़ने लगी। देश के कुछ गद्दारों जैसे हरसहाय नाजिर, सरदार सूरत सिंह, गोपालपुर के राजा कृष्णकिशोर चन्द्र और ऐसे ही अनेक सामन्त अंग्रेजों से मिल गये। इन लोगों की मदद से अंग्रेजी सेना ने गोरखा पलटन के साथ तरकुलहा के जंगल में सोते समय बन्धु सिंह और मुहम्मद हसन को गिरफ्तार कर लिया। बाद में बन्धु सिंह को गोरखपुर शहर में तथा मुहम्मद हसन को फैजाबाद में आम जनता के बीच फाँसी दी गयी। राजा रण्डुल सेन को पदच्युत कर दिया गया तथा उनको मिलने वाली पेंशन भी बन्द कर दी गयी। इस जिले में अंग्रेजी राज पुनः स्थापित हो गया। इसके बाद अंग्रेज अधिकारियों ने अपने मददगारों को पूरा राज्य पुरस्कार स्वरूप बाँट दिया। मियाँ साहब भी पुरस्कृत हुए।

अंग्रेजों ने इस क्षेत्र की प्राकृतिक और सामाजिक स्थिति का गहराई से अध्ययन किया तथा यहाँ एक लेबर डिपो की स्थापना की। इसी लेबर डिपो से यहाँ के श्रमिकों को अंग्रेजों ने गिरमिटिया मजदूरों के रूप में भर्ती कर दूसरे उपनिवेशों में भेजने का काम किया।

सन् 1857 के विद्रोह के बाद गोरखपुर भारतीय मानचित्र पर आ गया था। राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हो चुकी थी। बालगंगाधर तिलक ने अपने नेतृत्व तथा प्रभाव से कांग्रेस को एक क्रान्तिकारी छवि प्रदान की थी। पूरे देश में अंग्रेजी शासन के विरुद्ध एक माहौल तैयार हो रहा था। सन् 1915 में श्रमिक नेता विश्वनाथ मुखर्जी, सुभानल्लाह और दशरथ द्विवेदी ने मिलकर राष्ट्रीय कांग्रेस की गोरखपुर शाखा की स्थापना की। कांग्रेस के विचारों से प्रभावित होकर रघुपति सहाय फिराक गोरखपुरी ने 1917 में डिप्टी कलेक्टर के पद से त्याग-पत्र दे दिया तथा गोरखपुर आकर कांग्रेस पार्टी के लिए काम करने लगे। फिराक को बाद में बस्ती का प्रभारी बनाया गया। कांग्रेस पार्टी का इस क्षेत्र में तेजी से प्रसार होने लगा और अनेक कर्मवीर इसमें शामिल होकर स्वतन्त्रता की लड़ाई में कूद पड़े जिनमें रामजी सहाय, बाबा राघवदास, काशीनाथ पाण्डेय, चन्द्रशेखर शास्त्री, सत्याचरण शास्त्री, रामजी वर्मा, सिंहासन सिंह और श्यामाचरण प्रमुख थे। इस प्रकार गोरखपुर आजादी की लड़ाई का एक प्रमुख केन्द्र बन गया।

16 मार्च 1919 को इस क्षेत्र में खिलाफत आन्दोलन ने जोर पकड़ा। फिराक साहब, अनवर

अली और विन्ध्यवासिनी सिंह आदि ने खिलाफत आन्दोलन द्वारा जनजागरण किया। सन् 1920 में गाँधी जी द्वारा असहयोग आन्दोलन शुरू किया गया जिसका प्रभाव इस क्षेत्र पर भी पड़ा। सन् 1921 में असहयोग आन्दोलन के सिलसिले में गाँधी जी ने गोरखपुर नगर की पहली यात्रा की। बाले मियाँ के मैदान में एक विशाल सभा हुई। उनकी यात्रा के बाद गोरखपुर में कांग्रेस पार्टी का प्रभाव तेजी से बढ़ा।

भारतीय स्वाधीनता संग्राम की ऐतिहासिक चौरीचौरा जनक्रांति की घटना इसी जनपद में हुई। 14 फरवरी 1922 को चौरीचौरा तथा आसपास के गाँवों के करीब 3000 लोग असहयोग आन्दोलन से प्रेरित होकर विदेशी वस्त्रों की होली जलाने के लिए जुटे थे।[2] थानेदार गुप्तेश्वर सिंह अपने सिपाहियों के साथ पहुँचे और लाठीचार्ज का आदेश दे दिया। फिर क्या था, तड़ातड़ लोग गिरने लगे जिससे भीड़ ने अचानक एक कठोर निर्णय लिया और फायरिंग कर रही पुलिस को दौड़ा लिया। पुलिस वाले भागकर थाने में घुस गये। भीड़ गुस्से में थी। पूरे थाने को घेर लिया गया और थाने में आग लगा दी गयी। इस घटना में थानेदार सहित 22 लोग मारे गये। सैकड़ों लोगों को गिरफ्तार किया गया तथा उन पर मुकदमा चला। 119 लोगों को फाँसी की सजा सुनायी गयी और 14 लोगों को कालापानी की सजा हुई। सजा की यह खबर सुनते ही चौरीचौरा और आसपास के गाँवों में सन्नाटा फैल गया। सैकड़ों घरों में चूल्हे नहीं जले। पण्डित मदनमोहन मालवीय के नेतृत्व में इस मुकदमे की पुनः सुनवाई हुई जिससे 100 लोगों को फाँसी से बचा लिया गया और केवल 19 लोगों को फाँसी की सजा हुई और शेष 100 लोगों को आजीवन कारावास।[3] चौरीचौरा में हुए इस हिंसक घटना की सूचना पण्डित दशरथ प्रसाद द्विवेदी और सुभानल्लाह ने गाँधी जी को दी जिसे सुनकर उन्होंने असहयोग आन्दोलन स्थगित कर दिया। इस लोमहर्षक काण्ड के बाद गोरखपुर शहर कांग्रेसी नेताओं के लिए एक तीर्थ स्थान बन गया।

इस समय देश में क्रान्तिकारी आन्दोलन भी अपनी चरम सीमा पर था। काकोरी की घटना में पण्डित रामप्रसाद बिस्मिल गिरफ्तार हुए तथा उन पर मुकदमा चला और फाँसी की सजा सुनायी गयी। इस महान क्रान्तिकारी को गोरखपुर जेल में ही रखा गया था। यहीं पर बिस्मिल ने अपनी ऐतिहासिक आत्मकथा लिखी थी। बाद में 18 दिसम्बर 1927 को इस क्रान्तिकारी को गोरखपुर के ही जिला जेल में फाँसी दे दी गयी। इस दिन पूरा गोरखपुर क्रोध और शोक से काँप उठा था।

गोरखपुर जिले के स्वतन्त्रता संग्राम सेनानियों ने 1930 में सविनय अवज्ञा आन्दोलन में बाँसगाँव के सनहा गाँव में अपनी क्षमता के अनुरूप अहिंसा का पालन कर चौरीचौरा घटना पर प्रायश्चित किया। सनहा आन्दोलन का नारा था – 'मर जायेंगे पर मारेंगे नहीं।' घोर दमन के बीच भी वे लोग 45 दिनों तक सनहा में अत्याचार के विरुद्ध सत्याग्रह करते रहे। गाँधी जी ने इस क्षेत्र का दौरा किया। 4 अक्टूबर 1929 को घुघली रेलवे स्टेशन पर दस हजार देशभक्तों ने गाँधी जी का

अभूतपूर्व स्वागत किया। अगले दिन गाँधी जी ने महराजगंज में एक जनसभा को सम्बोधित किया।

1930 के नमक सत्याग्रह के समय इस क्षेत्र में नमक कानून के विरुद्ध सत्याग्रह हड़ताल सभा एवं जुलूस का आयोजन किया गया। इसी वर्ष शिब्बनलाल सक्सेना गाँधी जी के आह्वान पर सेण्ट एण्ड्रयूज कॉलेज के प्रवक्ता के पद को त्याग कर देश सेवा में जुट गये। गोरखपुर के तराई क्षेत्र की जनता ने जमींदारों के अत्याचार के खिलाफ प्रोफेसर शिब्बनलाल सक्सेना के नेतृत्व में आन्दोलन किया।[4] प्रो. सक्सेना ने अंग्रेजों और जमींदारों के खिलाफ लड़ने के लिए ईख संघ की स्थापना की जिसके कारण अंग्रेज अफसर और स्थानीय जमींदार दोनों इनके प्रबल विरोधी हो गये। सन् 1931 में प्रो. सक्सेना के गढ़ कहे जाने वाले गाँव खेसरारी को जमींदारों ने इसलिए लुटवा लिया क्योंकि वे लोग बढ़े हुए दर से लगान देने में आनाकानी कर रहे थे। यह मामला महात्मा गाँधी ने इंग्लैण्ड में होने वाले गोलमेज सम्मेलन में उठाया। बाद में बाबा राघवदास के हस्तक्षेप से यह मामला शान्त हो गया। फरवरी 1940 में नेहरू जी महराजगंज पहुँचे, वहाँ एक जनसभा को सम्बोधित किया तथा गणेशशंकर विद्यार्थी स्मारक विद्यालय की आधारशिला रखी। द्वितीय विश्वयुद्ध के अवसर पर व्यक्तिगत सत्याग्रह के दौरान पण्डित नेहरू ने गोरखपुर की यात्रा की और लालडिग्गी पार्क में एक जनसभा को सम्बोधित किया (1941)। सभा समाप्त होते ही तत्कालीन कलेक्टर मास ने उन्हें गिरफ्तार करा लिया। तीन दिन तक उन्हें गोरखपुर जिला जेल में रखा गया। बाद में उनको देहरादून जेल भेज दिया गया।

8 अगस्त 1942 को भारत छोड़ो आन्दोलन की शुरुआत बम्बई से हुई। 23 अगस्त 1942 को मुनादी करा दी गयी कि लोग डोहरिया कलां की सभा में भाग लेने तथा रेलवे स्टेशन, डाकखाना, पुलिस थाना आदि को नुकसान पहुँचाने के लिए एकत्र हों। इसकी खबर ब्रिटिश प्रशासन और पुलिस को भी थी। परगना मजिस्ट्रेट, मजिस्ट्रेट सदर तथा इन्स्पेक्टर फोर्स के साथ डोहरिया कलां पहुँच गये। धीरे-धीरे 9-10 हजार लोगों की भीड़ इकट्ठी हो गयी। प्रशासन ने इस भीड़ को गैरकानूनी करार देते हुए लाठीचार्ज का आदेश दिया। परन्तु भीड़ नहीं हटी फिर गोली चलाने का आदेश दिया गया। दस लोग मारे गये, सैकड़ों घायल हुए। इस आन्दोलन में ग्राम पाली, उसरी, मकरहट, माहर, मुजौली, रमडिहवा, चहगाव, गोहटा, टिकरिया, नरौली, बरईपार तथा बरौली के लोग शरीक थे। कुल 16 लोग मुल्जिम बनाये गये। मुकदमे के दौरान ही तीन लोगों- जगत तेली, रामदास और सुक्खू की जेल में ही मौत हो गयी।[5] 14 जनवरी 1943 को हुए फैसले के अनुसार दस लोगों को दो-दो वर्ष की सजा हुई। घटनास्थल पर मरने वाले शहीदों में– मुनेसर सिंह, जेठू हज्जाम, सुखु बरई, श्रीपत सिंह, भगेसे बेलदार, जगतबली सोनार, चिराउ बरई, रामदास तेली का नाम अमर है।

इसी प्रकार गोरखपुर के उत्तरी भाग महराजगंज में 26 अगस्त 1942 को प्रो. सक्सेना अपने क्रान्तिकारी संगठन को सक्रिय करने के लिए विशुनपुर गबडुआ गाँव में बैठक करने वाले थे जिसकी

सूचना वहाँ के जमींदार ने पुलिस को दे दी। इसलिए गबड़ुआ में बैठक न करके रात में ही परासखांड चले गये, जिससे बौखलाकर जमींदार महेन्द्रानन्द गिरि ने पूरे गाँव को पुलिस से घिरवाकर लूटपाट कराया तथा गोलियाँ चलवायीं जिससे सुखराज एवं झिनकू की घटनास्थल पर ही मृत्यु हो गयी। ग्यारह लोगों को पुलिस पकड़कर ले गयी जिन पर राजद्रोह का मुकदमा चला। मुकदमे के दौरान ही जेल में बन्द काशी की भी मृत्यु हो गयी। शेष आन्दोलनकारियों को एक साल तथा 12-12 बेतों की सजा मिली। प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना पर सरकार ने ढाई हजार का इनाम घोषित कर दिया। जिसके लालच में एक देशद्रोही शिवसागर दूबे ने सक्सेना को गोली मारकर घायल कर दिया। प्रो. सक्सेना कलेक्टर मास को सौंप दिये गये। उन्हें 26 माह तक कालाकोठरी में बन्द रखा गया। पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने इस प्रकरण को प्रीवी कौंसिल में उठाया तब जाकर प्रो. सक्सेना रिहा हुए। ये सारी यातनाएँ भी प्रो. सक्सेना का मनोबल नहीं तोड़ सकीं।

काफी लम्बे संघर्ष के बाद 15 अगस्त 1947 को भारतीय स्वतन्त्रता का स्वर्णिम प्रभात आया। तिरंगे झण्डे ने यूनियन जैक को पाँच हजार मील दूर फेंक दिया और भारत की जनता ने स्वतन्त्र वातावरण में साँस लेना शुरू किया।

सन्दर्भ-ग्रन्थ:

1. चतुर्वेदी, अवधेश कुमार; भारत का स्वाधीनता संग्राम, न्यूहाईट पब्लिकेशन, 1991, कानपुर, पृ. 13
2. चन्द्र, बिपिन; मुखर्जी, मृदुला; मुखर्जी, आदित्य; भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष, अनामिका प्रकाशन, 1991 ई., नई दिल्ली, पृ. 12
3. आकलन, स्मारिका, गोरखपुर नगर निगम, गोरखपुर, 2005, पृ. 27
4. अथ्, स्मारिका, प्रेस क्लब, गोरखपुर, 2003, पृ. 91
5. विकास पुस्तिका, जनपद सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, गोरखपुर, 2003, पृ. 57

भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में पूर्वांचल की हिन्दी पत्रकारिता का विश्लेषण

(दैनिक समाचार-पत्र 'आज' के विशेष सन्दर्भ में)

अखिलेश कुमार उपाध्याय*

सन् 1942 की क्रान्ति के समय देश के नब्बे समाचार-पत्रों ने अपना प्रकाशन स्थगित कर दिया था। इनका सम्मेलन बम्बई में आयोजित हुआ, इसमें पराड़कर जी को विशेष आमन्त्रित किया गया था। पराड़कर जी सम्मेलन में न जा सके। सम्मेलन में पराड़कर जी ने जो सन्देश भेजा इससे उनकी नीति स्पष्ट होती है-"मेरा मत है कि वह उपयुक्त अवसर अभी नहीं आया है कि राष्ट्रीय पत्रों का प्रकाशन शुरू किया जा सके। वर्तमान स्थिति में इतने प्रतिबन्ध हैं कि समाचार-पत्र केवल सरकारी बुलेटिन मात्र ही रहेंगे। टीका-टिप्पणी नहीं की जा सकती है। हम जनता की राय व्यक्त करने के माध्यम बनकर जीवित नहीं रह सकते। इसलिए अच्छा है कि हमारा प्रकाशन स्थगित ही रहे। मातृभूमि के हित के लिए आवश्यक हो तो हमारा बलिदान ही श्रेयस्कर है।"[1]

राष्ट्रभाषा हिन्दी के इन पत्रों के अतिरिक्त देश के अन्य भाषा के पत्रों का इतिहास देखा जाए तो ज्ञात होगा कि सन् 1857 से स्वाधीनता के लिए जिस क्रान्ति का श्रीगणेश हुआ, उसमें समग्र देश में पत्रों तथा उसके महाप्राण सम्पादकों ने असाधारण रूप से त्याग व बलिदान प्रस्तुत किया जिसका वृहद रूप हमें 1942 के आन्दोलन में भी देखने को मिलता है।

सन् 1942 की क्रान्ति में सबके मानस में गाँधी ही व्याप्त थे। सभी क्रान्तिकारी उन्हीं को अपना आदर्श मानकर किसी योजना की रूपरेखा बनाते थे। यद्यपि सन् 1942 की क्रान्ति सभी के लिए एक नये मार्ग को खोलती है। इस क्रान्ति के पहले गाँधी को इन शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है- "कैसे उनकी एक आवाज पर निराश, पिछड़ी और विच्छिन्न हृदय जनता देशव्यापी संघर्ष में जुट पड़ने के लिए उठ खड़ी होती थी।" इन अर्थों में गाँधी जी इस युग के बड़े क्रान्तिकारी थे। "आन्दोलन की उनकी कार्यनीति ने जनता में अपार नीति स्फूर्ति का संचार किया था।"[2] मध्य वर्ग की बेबसी के बीच गाँधी जी का आगमन हुआ और पूरे मध्य वर्ग का नेतृत्व गाँधी ने किया।

---

*शोध छात्र, डायस्पोरा अध्ययन, केन्द्रीय विश्वविद्यालय, गुजरात

गाँधी हमेशा से बीच के रास्ते की बात करते थे। उनका मानना था कि इस देश की तभी प्रगति होगी, जब सबकी भागीदारी समान होगी। जब गाँधी ने असहयोग आन्दोलन 1920 एवं सविनय अवज्ञा आन्दोलन 1930 की शुरुआत की तब लोगों में धीरे-धीरे जागृति का आभास होने लगा। यद्यपि गाँधी जी इन आन्दोलनों के पीछे बहुत तैयारी किये थे लेकिन वह उतना सफल नहीं हुआ जितना कि होना चाहिए था। जबकि 1942 की क्रान्ति के पीछे उनकी कोई विशेष तैयारी न थी फिर भी यह पूरे देश में फैला उसके कुछ वर्षों बाद भारत को आजादी भी मिल जाती है। यह कैसे सम्भव हो पाता है? यह आन्दोलन क्यों इतना वृहद रूप लेता है? क्योंकि इस आन्दोलन में सबकी भागीदारी थी, जो गाँधी जी चाहते थे। जो आन्दोलन विफल हो गये थे वही 1942 के इस आन्दोलन में इसमें प्रेरणा का काम करते हैं।

मध्य वर्ग के नेतृत्व के बारे में जवाहरलाल नेहरू के शब्दों में – "गाँधी जी ताजी हवा के उस प्रबल झोंके की तरह थे, जिसने हमारे लिए पूरी तरह फैलना और गहरी साँस लेना सम्भव बनाया। वह रोशनी की उस किरण की तरह थे, जो अन्धकार में फैल गयी और जिसने हमारी आँखों के सामने से परदे को हटा दिया। वह उस बवण्डर की तरह से थे, जिसने बहुत-सी चीजों को, विशेषकर मजदूरों के विचारों को उलट-पुलट दिया। गाँधी जी ऊपर से आये हुए नहीं थे, बल्कि हिन्दुस्तान की करोड़ों आदमियों की आबादी में से उपजे थे।" हमारे इतिहास के ही प्रभात में याज्ञवल्क्य व जनक ने कहा था कि "जनता को निर्भय बनाना ही नेताओं का प्रमुख काम है।" लेकिन ब्रिटिश राज्य के अन्दर हिन्दुस्तान में जो सबसे प्रमुख भावना थी, उसमें कुचलने वाला, दम घुटने वाला, मिटा देने वाला डर था, अफसरों के वर्ग का डर था, फौज, पुलिस चारों तरफ गुप्तचर की भाँति फैले हुए थे, उसका डर था। कुचलने वाले कानूनों और जेल का डर था, जमींदारों के कारिन्दों का डर था, साहूकार का डर था, बेकारी व भूखे मरने का डर था, जो सदा पास रहते थे। चारों तरफ फैले हुए डर के विरुद्ध गाँधी की आवाज उठी, 'डरो मत।'[3]

क्रान्ति काल के इस दौर में गाँधी जी भीड़ को किस प्रकार से सम्बोधित करते और उठने को कहते, जवाहरलाल नेहरू की उपर्युक्त पंक्तियों से स्पष्ट है। क्रान्ति काल के दौरान गाँधी जी की विशिष्टता और उनकी महत्ता को स्पष्ट करने के लिए 'मतवाला' साप्ताहिक-पत्र की इस सम्पादकीय टिप्पणी से स्पष्ट होता है "यदि आप स्वतन्त्रता के अभिलाषी हैं, अपने देश में स्वराज्य की प्रतिष्ठा चाहते हैं, तो तन-मन और धन से अपने नेता महात्मा गाँधी के आदेशों का पालन करना आरम्भ कीजिए।"[4]

भारत छोड़ो आन्दोलन का स्वरूप पूरे भारत में था और गाँधी ही सबके प्रेरणास्रोत थे। वस्तुतः यह आन्दोलन पूरे भारत में था। इस आन्दोलन में तमाम पत्र-पत्रिकाओं के बन्द हो जाने के बाद भी कुछ दैनिक समाचार-पत्रों ने अपनी विशेष भूमिका निभायी। जिन पत्रों ने विशेष भूमिका निभायी,

उन पत्रों में हिन्दी दैनिक 'आज' जो पूर्वी उत्तर प्रदेश के बनारस से निकलता था, उसका भारत छोड़ो आन्दोलन में विशेष योगदान रहा है। 'आज' के अलावा सन् 1942 के आन्दोलन के समय भारतीय समाचार-पत्रों के अतिरिक्त विदेशी समाचार-पत्र भी अपनी राय व ब्रिटिश नीति की बात करते थे।

सन् 1942 की क्रान्ति की शुरुआत 8 अगस्त1942 की अर्धरात्रि से होता है किन्तु इसकी पृष्ठभूमि सन् 1942 के जनवरी मास से ही देखने को मिलती है। इस सन्दर्भ में दैनिक 'आज' 26 जनवरी सोमवार को लिखता है- "बनारस शहर के कांग्रेस कमेटी के मन्त्री सूचित करते हैं कि 26 जनवरी सोमवार को प्रात: 8 बजे टाउनहाल में झण्डा अभिवादन होगा तथा उसी रोज सायंकाल 5 बजे टाउनहाल के मैदान पर सभा होगी जिसमें स्वतन्त्रता की प्रतिज्ञा दुहरायी जायेगी। इस वर्ष सारा संसार उथल-पुथल में पड़ा हुआ है और इस दिन का महत्त्व बढ़ गया है। हमारा कर्तव्य है कि अधिक से अधिक संख्या में एकत्र होकर भारतीय स्वतन्त्रता के लिए अपना दृढ़ निश्चय प्रकट करें।"[5]

उपर्युक्त कथन से यह पता चलता है कि भारतीय जनमानस आजादी के लिए किस प्रकार से उत्तेजित था। इसी क्रम में 'आज' आगे के अंक में लिखता है- "टाउनहाल में बनारस जिले तथा शहर के तमाम कांग्रेसी कार्यकर्ताओं की एक आवश्यक बैठक श्री सम्पूर्णानन्द की अध्यक्षता में हुई जिसमें वर्धा स्वीकृत रचनात्मक कार्यक्रम जिले में कार्यान्वित करने के सम्बन्ध में विचार किया गया। निश्चय हुआ कि सर्वश्री सम्पूर्णानन्द, दुर्गादास भट्टाचार्य, जगत नारायण अर्थात् देवमूर्ति शर्मा, कमलापति त्रिपाठी की एक उपसमिति बना दी जाय जो जिले तथा शहर में उक्त कार्यक्रम के अनुसार स्वयंसेवक भर्ती करने तथा आन्तरिक शान्ति बनाये रखने और संकट के समय लोगों की सहायता करने की योजना बनाकर इसे कार्यान्वित करें।"[6]

उपर्युक्त पंक्तियों से यह स्पष्ट है कि सन् 1942 के जनवरी माह से कांग्रेस ने अपनी योजना तैयार करनी शुरू कर दी थी। कहीं पर कांग्रेस का रचनात्मक कार्यक्रम होता था तो कहीं पर कांग्रेस कमेटी खुद से एकत्र होकर कार्य करती थी। इन सभी कार्यक्रमों को विस्तार से 'आज' अखबार प्रकाशित करता था जो इस बात का सूचक है उन दिनों 'आज' अखबार की भूमिका कितनी महत्वपूर्ण थी।

दैनिक अखबार 'आज' पूर्णत: समाचार-पत्र था। जो भी खबर वह प्रकाशित करता था वह प्रेस के नियमों के तहत। फिर भी कभी-कभी उसे सरकार के कोपभाजन व अर्थदण्ड का शिकार होना पड़ता था। 'आज' अखबार के सम्पादक बाबूराव विष्णु पराड़कर जिनका उद्देश्य केवल आजादी था, जिस प्रकार से एक सच्चा योद्धा अपने लक्ष्य की तरफ आशान्वित होता है, ठीक उसी प्रकार बाबूराव विष्णु पराड़कर अपने लक्ष्य (स्वाधीनता) के प्रति आशान्वित थे और उनका प्रथम लक्ष्य स्वाधीनता था।

19-20वीं शताब्दी भारतीय परिप्रेक्ष्य में जन-जागरण का काल रहा है। जातीय चरित्र और चिन्ता को पराधीनता से उबारने की एक महत प्रेरणा उस समय आविर्भूत हुई थी। भारतीय पत्रकारिता के महान् पुरस्कर्ताओं ने अपनी साधना द्वारा उस प्रेरणा को गत्वर किया था, पराधीनता जनित अज्ञान से धूमियत जातीय मानस ने नये आलोक की रचना की थी। दिशाहार गणदेवता को सही मार्ग-संकेत दिया था।[7] साम्राज्यवादी दानव को पराजित करने की कला और शक्ति दी है।

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि स्वतन्त्रता के लिए किस प्रकार से अंग्रेजों के विरुद्ध लिखा जाता था। भारत छोड़ो आन्दोलन के समय समाचार-पत्रों की विशेष भूमिका रही है, इस सन्दर्भ में प्रमुख समाचार-पत्रों का सारांश वर्णित है। अबुल क़लाम आजाद के भाषण के बाद महात्मा गाँधी ने भाषण देते हुए कहा, "प्रस्ताव पर आप लोगों से विचार करने के पूर्व मैं आप लोगों से दो-एक बात कहना चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि आप लोग दो चीज बहुत अच्छी तरह से समझ लें और उसी दृष्टिकोण से उस पर विचार करें, जिस दृष्टिकोण से मैं आपके सामने रख रहा हूँ। मैं अपने दृष्टिकोण से मैं उन पर इसलिए विचार करने के लिए कह रहा हूँ कि आप मेरा दृष्टिकोण मानते हैं। मैं जो कुछ करता हूँ उसे कार्यान्वित करने के लिए आप से कहा जायेगा और यह बहुत बड़ी जिम्मेदारी होगी। ऐसे लोग भी जो पूछते हैं क्या मैं वही हूँ जो 1920 में था या मुझमें कोई परिवर्तन हुआ है। आपका यह प्रश्न करना उचित है। अन्त में वह कहते हैं कि मैं फिर से आपको सचेत करता हूँ कि आप प्रस्ताव को तभी स्वीकार करें जब उसे आप हृदय से मानते हों।"[8]

अगस्त प्रस्ताव जब पारित होता है उसके पहले गाँधी जी का भाषण होता है। उस भाषण में वे साफ-साफ अपनी बात को कहते हैं, सभी को सचेत करते हैं कि आप तभी प्रस्ताव को मानिए जब आप उससे सहमत हों, यदि आप सहमत नहीं हैं, तो आपका अधिकार है कि आप उसे न मानें। इस तरह गाँधी जी सम्बोधित करते हैं। जब पूर्वांचल के पत्रों का हम विश्लेषण करते हैं तो एक बात एकदम साफ हो जाती है कि जो भी आन्दोलन या प्रस्ताव या विचार कुछ भी घटित होता है तो उसका जिक्र 'आज' दैनिक अपने अंक में अवश्य करता है। 'आज' न केवल पूर्वांचल का प्रतिनिधित्व करता है बल्कि यह पूरे भारत का नेतृत्व सन् 1942 में करता है।

'आज' हिन्दी का एकमात्र ऐसा समाचार-पत्र था जो अपनी बात को आम जन तक पहुँचाने में सक्षम था। 'आज' अपने अंक में आन्दोलन से जुड़ी खबरों के साथ-साथ सभी खबरों का प्रकाशन करता था और विदेशी पत्रों की भी नीतियों व समाचारों का उल्लेख करता था। विदेशी समाचार-पत्रों का समाचार जब यह अपने समाचार-पत्र में देता तो उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत के प्रति अन्य देश व ब्रिटिश प्रशासन की क्या नीति है। विदेशी पत्रों का विवरण दैनिक 'आज' में लन्दन का 'स्टार' पत्र लिखता है- "महात्मा गाँधी के कांग्रेस से अलग हो जाने से ब्रिटेन तथा भारत को आपस में सम्बन्ध सुधारने का बड़ा अच्छा मौका मिला है, अब रास्ता खुल गया है इन दोनों देशों

का सम्बन्ध सुधारने की अत्यधिक आवश्यकता है।"[9] लन्दन से इस पत्र से उनकी नीति का पता चलता है कि वह गाँधी जी को कितना बाधक समझते थे। जैसे ही उन्हें पता चलता है कि गाँधी कांग्रेस से अलग हो गये, वे भारतीयों के हित की बात करने लगते।

भारतवासियों के लिए जापानी परराष्ट्र मन्त्री 'तोजो' के भाषण पर 'टाइम्स' की राय - "लन्दन, 28 मई। नयी जापानी डायट के (पार्लियामेण्ट) प्रथम अधिवेशन पर टीका करते हुए 'टाइम्स' ने अपने आज के अग्रलेख में लिखा है, "सैनिकवादी प्रधानमन्त्री 'तोजो' उच्च स्वर में बोले हैं। मन्त्री 'तोजो' ने भारत भारतीयों के लिए आवाज उठायी है और भारतीयों से कहा है कि वे अभ्युदय प्राप्त करने के लिए उठ खड़े हों।"[10]

इस कथन से जापान की राय भारत के प्रति कितनी स्पष्ट है मालूम पड़ता है। ठीक इसी प्रकार से 'स्टेटमैन' का विशेष संवाददाता नयी दिल्ली से लिखता है कि - "सविनय अवज्ञा आन्दोलन के कारण मूल्य नियन्त्रण व्यवस्था का महत्त्व और बढ़ गया, ठीक उसी प्रकार भारत छोड़ो आन्दोलन के कारण अन्न का अभाव और महँगाई बढ़ रही है।"[11]

किसी भी देश की नीतियाँ व उसके कार्य का स्पष्टीकरण उस देश का समाचार-पत्र पत्रिका करती है। जिस प्रकार साहित्य समाज का दर्पण होता है उसी प्रकार पत्रकारिता समाज का विश्लेषण करती है। यद्यपि भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास लम्बा रहा है और आजादी पाने के लिए उसे तकरीबन 90 वर्ष तक संघर्ष करना पड़ा। इस आजादी को पाने में जिसका सबसे बड़ा योगदान माना जा सकता है वह निःसन्देह पत्रकारिता एवं समाचार-पत्र हैं।

सन्दर्भः

1. तिवारी, अर्जुन, पत्रकारिता एवं राष्ट्रीय चेतना का विकास, ओरिएंटल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2004 ई., पृ. 137
2. वही, पृ. 139
3. वही, पृ. 140
4. सम्पादकीय टिप्पणी, 31 मई 1924, मतवाला (साप्ताहिक पत्र), बनारस से प्रकाशित
5. दैनिक समाचार पत्र 'आज' 26 जनवरी 1942, गोरखपुर से प्रकाशित, पृ. 4
6. दैनिक समाचार पत्र 'आज' 26 जनवरी 1942, गोरखपुर से प्रकाशित, पृ. 5
7. मिश्र, कृष्ण बिहारी, पत्रकारिता इतिहास और प्रश्न (1993), वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ. 140
8. दैनिक समाचार पत्र 'आज' 7 अगस्त 1942, गोरखपुर से प्रकाशित, पृ. 3
9. दैनिक समाचार पत्र 'आज' 5 जनवरी 1942, गोरखपुर से प्रकाशित, पृ. 5
10. दैनिक समाचार पत्र 'आज' 28 मई 1942, गोरखपुर से प्रकाशित, पृ. 4
11. दैनिक समाचार पत्र 'आज' 12 अगस्त 1942, गोरखपुर से प्रकाशित, पृ. 2

भारत का स्वतंत्रता संग्राम : पूर्वी उत्तर प्रदेश में जनमानस की मनोदशा

डॉ. अविनाश प्रताप सिंह*

किसी भी क्रांति, आन्दोलन अथवा पुनर्जागरण में आमजन की भूमिका और सहभागिता के महत्व को हमेशा से स्वीकार किया गया है, विशेष रुप से आधुनिक भारत में इसका अपना विशेष महत्व भी है। 1857 की क्रांति हो, 1920 का असहयोग आन्दोलन या फिर 1942 का भारत छोड़ो आन्दोलन सभी में भारतीय जनमानस ने असंगठित ही सही, सक्रिय सहभागिता की। इन्हीं जनआन्दोलनों के बलबूते 1947 में भारत की स्वतंत्रता की नींव पड़ी। हमेशा से पूर्वी उत्तर प्रदेश वीरों की भूमि के रूप में प्रतिष्ठित रहा है। यह बात और भी प्रमाणिक रूप से 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन की स्फुलता के साथ जोड़ कर देखी जा सकती है।

हाल के अध्ययनों से भारत छोड़ो आन्दोलन का जो इतिहास सामने आता है उससे पता चलता है कि यह एक बिना तैयार जनता का जोरदार जवाब ही नहीं था, हालांकि हिंसा के अभूतपूर्व पैमाने के बारे में कांग्रेसी नेतृत्व ने कोई तैयारी नहीं की थी जैसा सरकार का दावा था। पहली बात यह कि पिछले दो दशकों के जन-आन्दोलन ने, जिसे हाल के वर्षों में कांग्रेस से जुड़े विभिन्न संगठनों, जैसे ऑल इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस, कांग्रेस समाजवादी पार्टी, किसान सभा और फारवर्ड ब्लॉक के नेतृत्व के अन्तर्गत कहीं बहुत अधिक जुझारू ढंग से चलाया गया था, ऐसे टकराव के लिए पहले ही जमीन तैयार कर रखी थी।

अहिंसा के मुद्दे पर 1942 के ग्रीष्म में गांधी जी एक विचित्र एवं अनोखी संघर्षशील मनः स्थिति में थे। वे बराबर अंग्रेजों से कह रहे थे कि वे भारत को ईश्वर या अराजकता के भरोसे छोड़ दें– "इस सुव्यवस्थित अनुशासनपूर्ण अराजकता को जाना ही होगा, और यदि इसके परिणामस्वरूप पूर्ण अव्यवस्था की स्थिति उत्पन्न होती है तो मैं यह खतरा उठाने को तैयार हूं।[1]" 8 अगस्त 1942 को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के अधिवेशन में पारित प्रसिद्ध 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव में अहिंसक रूप से जितना संभव हो उतने बड़े स्तर पर जन-संघर्ष का आह्वान किया गया था जो 'अपरिहार्य

*सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु, सिद्धार्थनगर

रूप से' गांधीजी के नेतृत्व में होता, किंतु इसमें यह भी कहा गया था कि यदि कांग्रेस के सभी नेता गिरफ्तार हो जाए तो "स्वार्धीनता की इच्छा एवं प्रयास करने वाला प्रत्येक भारतीय स्वयं अपना मार्गदर्शक बने.....। प्रत्येक भारतीय अपने आपको स्वार्धीन समझे..... केवल जेल जाने से ही काम नहीं चलेगा।[2]" ज्ञानेन्द्र पाण्डे के शब्दों में– "गांधीजी ऐसे आन्दोलन के निर्विवाद नेता थे" जिन पर उनका कम ही नियंत्रण था।[3] 9 अगस्त की सुबह नेताओं के गिरफ्तार हो जाने के पश्चात जो 'स्वत: स्फूर्त जन-आन्दोलन' उमड़ा उसमें आन्दोलन का फैलाव शहरों से गांवों की ओर हुआ, जिससे आंचलिक स्तर पर व्यापक आन्दोलन का प्रसार हुआ।

पूर्वी संयुक्त प्रान्त अंग्रेजों के लिए सदा ही परेशानी पैदा करता रहा था। 1857 में भी यह क्षेत्र सर्वाधिक उपद्रवग्रस्त क्षेत्रों में से एक था और यहां शांति स्थापित करने में काफी समय लगा था। बलिया में राष्ट्रवादी संगठित आन्दोलन-1935 से लगभग जोरशोर से हुआ और इसके पीछे बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों का हाथ होने के कारण यह आन्दोलन प्रकट रूप में क्रान्तिकारी समाजवादी आन्दोलन था। इसी कारण इस क्षेत्र में किसान सभा का आन्दोलन भी उल्लेखनीय रूप से शुरू हुआ यद्यपि बलिया और निकटवर्ती गाजीपुर में किसान सभा का नेतृत्व मजबूती से समृद्ध किसानों अथवा छोटे जमीनदारों के हाथों में था। तथापि किसान सभा एक स्वतंत्र और विशिष्ट संगठन के रूप में उभर नहीं पायी और मुख्यत: कांग्रेस के संगठन का ही अंग बनी रही। अपने मंत्रित्व काल में कांग्रेस ने बलिया जिले में अपने संगठन का काफी विस्तार किया था। इसकी सदस्य संख्या 1937 में 12,610 से बढ़कर 1939 के अंत तक 21,027 हो गयी किन्तु भारत छोड़ो आन्दोलन की दृष्टि से कांग्रेस कौमी सेवा दल का विस्तार अधिक महत्वपूर्ण था। "इस स्वयंसेवी संगठन के मुख्य कार्यकर्ता और संगठनकर्ता समाजवादी थे। अत: इसमें आश्चर्य कि बलिया में दल का नेतृत्व दो नवयुवकों– राजेश्वर तिवारी और विश्वनाथ चौबे के हाथों में था जबकि दल का निरीक्षक बनारस हिन्दु विश्वविद्यालय के रामलच्छन तिवारी को बनाया गया।"[4] दल ने गांवों में प्रशिक्षण शिविर आयोजित किये और नवयुवकों को राष्ट्रीय कार्यक्रम के लिए संगठित किया। 1940 में संयुक्त प्रान्त कौमी सेवा दल का प्रान्तीय कमाण्डर बनने पर आचार्य नरेन्द्र देव ने वाराणसी क्षेत्र के अपने सम्पर्कों के आधार पर दल को क्रियाशील किया। कौमी सेवा दल के सदस्य संयुक्त प्रान्त के अन्य क्षेत्रों की तुलना मे पूर्वी क्षेत्र में अधिक थे। व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन के दौरान युवा नेताओं ने जिनकी स्थिति विशेष महत्वपूर्ण नहीं थी, अपना वर्चस्व स्थापित किया क्योंकि इस अवधि में अधिकांश महत्वपूर्ण कांग्रेसी नेता जेल में बंद थे।

कौमी सेवा दल के कार्यकर्ताओं और विश्वविद्यालय बंद होने पर अपने गांवों मे लौटे वाराणसी हिन्दू विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों ने मिलकर उपद्रवों का नेतृत्व किया। ये लोग अपने समुदाय के मान्य नेता नहीं थे और उनपर किसी प्रकार का विशेष अनुशासन नहीं था। उनमें से

अधिकतर गांधीजी के अहिंसावादी विचारों की अवमानना भले ही न करते हो, किन्तु उनकी उपेक्षा आवश्य करते थे। एक उदाहरण से स्थिति को समझने में सहायता मिलती है।

गाजीपुर में मोहम्मदाबाद के सीताराम राय और बलिया में बेलथरा रोड़ के पारसनाथ मिश्र, वाराणसी नगर में प्रदर्शनों में भाग लेने के बाद और विश्वविद्यालय परिसर में हुई। सभा में यह निश्चय होने के बाद कि विद्यार्थी गांवों में जाकर भारत छोड़ो आन्दोलन का संदेश पहुंचाए, 12 अगस्त को बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से एक साथ रवाना हुए। वे गाजीपुर में सैदपुर तक रेलगाड़ी से आए और उसके बाद अपने घरों की ओर पैदल रवाना हुए। रास्ते में उन्होंने वाराणसी में हुई घटनाओं का वर्णन सुनने के लिए तत्काल इकट्ठे हुए उत्सुक लोगों की सभाओं को संबोधित किया। "उन्होंने श्रोताओं का बताया कि नगर में आग लगी हुई थी, ब्रिटिश राज सब जगह धागशायी हो चुका था, अत: उसके सभी अवशेषों को नष्ट कर देना चाहिए। हमने अपनी सभाओं के अंत में 'थाना जलाओ' 'स्टेशन फूक दो' 'अंग्रेज भाग गया' आदि नारे लगाए।"[5] वाराणसी से लौटने वाले अन्य विद्यार्थी रेलगाड़ियों का अपहरण करके ले गए। उन्हें कांग्रेस के झंडों से सजा दिया गया और उन्हें रास्ते के सभी स्टेशनों पर रूकने को मजबूर किया गया। उन्होंने अपने उत्तेजक भाषणों के द्वारा लोगों को लूट मार और आगजनी के लिए भड़काया और उनके समक्ष घोषणा की कि घृणित अंग्रेजी राज का अन्त हो गया है।

बेलथरा रोड पर 14 अगस्त को चार-पांच हजार लोगों की भीड़ ने स्टेशन पर हमला कर उसमें आग लगा दी और बाद में उससे भी बड़ी भीड़ ने स्टेशन से गुजरने वाली सैनिक रसद की रेलगाड़ी को लूट लिया। इस घटना से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि लोगों को हिंसा के लिए संगठित करने और उनका नेतृत्व करने में विद्यार्थियों की क्या भूमिका थी। भीड़ का नेतृत्व पारसनाथ मिश्र ने किया था। 13 अगस्त को अपने गांव पहुंचने पर पारसनाथ ने पाया कि उनके मित्र कुछ करने को उतावले थे। उनके साथ वह समीप में हो रहे डंबर बाबा के वार्षिक मेले में गए। मेले में वाराणसी और निकटवर्ती आजमगढ़ में हुई घटनाओं की अफवाहें पहले से ही फैली हुई थी। अत: सभा का आयोजन करने मे कोई कठिनाई नहीं हुई। पारसनाथ ने सभा को संबोधित किया और उनसे अगले दिन प्रात: काल बेलथरा रोड स्टेशन पर जमा होने का आग्रह किया।[6]

"संयोगवश 14 अगस्त को प्रात: काल बेलथरा रोड स्टेशन पर इलाहाबाद से एक 'आजाद ट्रेन' आई। विद्यार्थियों ने भीड़ के समक्ष भाषण दिए और बलिया के रास्ते में जो विनाश उन्होंने देखा था उसका वर्णन लोगों के सामने किया और साथ ही उनसे सत्ता के सभी चिन्हों को नष्ट करने का आह्वान किया।"[7] आजाद ट्रेन के आने की खबर आग की तरह फैल गयी और जब पारसनाथ ने भीड़ के जुलूस का नेतृत्व संभाला तब तक भीड़ को और अधिक उकसाने की आवश्यकता नहीं रह गयी थी। कुछ ही घण्टों मे स्टेशन को तोड़-फोड़ कर खंडहर बना दिया गया।

बाद में जब ट्रेन बेलथरा रोड पहुंची तब भीड़ ने लूट-पाट शुरू कर दी। संभवत: लूट-पाट सारा दिन चलता रहा और लोग ट्रेन में रखे चीनी के अधिक से अधिक बोरे बैलगाड़ियों में लाद कर ले जाते रहे। अत: यह स्पष्ट है कि भीड़ का मुख्य उद्देश्य लूट-पाट करना नहीं था। बेलथरा रोड स्टेशन को आग लगाने वाली भीड़ को यह पता भी नहीं था कि उस दिन वहां से एक सैनिक ट्रेन गुजरने वाली है। गाजीपुर में भी, जहां सरकारी गोदामों और बीज के भण्डारों को अनेक स्थानों पर लूटा गया, वहां बाद मे सामान्यत: थाने को भी लूटा गया और पुलिस वालों को अपमानित किया गया। अत: लूट-पाट की घटनायें हिंसक उपद्रवों और सरकारी नियंत्रण के समाप्त होने का आनुशंगिक परिणाम थे।

बलिया मे 14 अगस्त के आस-पास उपद्रव आरम्भ हुए और क्रमश: प्रशासनिक मुख्यालय पर केन्द्रित हो गए। बॉसडीह में भीड़ द्वारा तहसील पर कब्जा करने और स्वराज की घोषणा करने के वाद कांग्रेसी नेता गजधर लोहार को 'स्वराज तहसीलदार' के रूप में प्रतिष्ठापित करने में मिली सफलता से प्रोत्साहित होकर भीड़ ने अगले दिन बलिया की ओर कूच किया।

19 अगस्त को लगभग 10,000 लोगों की भीड़ बलिया में जेल के सामने एकत्रित हुई और जिला कांग्रेस समिति के अध्यक्ष चित्तू पाण्डे सहित जेल में बन्द सभी कांग्रेसी नेताओं की रिहाई की माँग की। यह स्मरणीय है कि बलिया के अधिकांश कांग्रेसी नेता पहले से ही जेल में थे और जब 9 अगस्त को सरकार द्वारा दमन की कार्यवाही शुरू की गयी उस समय स्थानीय विधायक राज मोहन ही ऐसे महत्वपूर्ण नेता थे जिन्हें गिरफ्तार करना बाकी था। 14 अगस्त को शहर में निकाले गये जुलूस में बलिया के कलेक्टर के पुत्र अशोक निगम ने भी भाग लिया। वाराणसी से सभी प्रकार के सम्बन्ध -विच्छेद हो जाने के कारण उसके पिता कठिनाइयों में थे। जिले के दस में से सात थानों का नियंत्रण सरकार के हाथ से निकल जाने की खबर से वह घबड़ा गए और उन्होंने हार मान ली। जेल के सभी नेताओं को रिहा कर दिया गया, शांति व्यवस्था कायम रखने का काम चित्तू पाण्डे को सौंप दिया गया और जिला प्रशासन का प्रभाव पुलिस लाइन तक ही सीमित रह गया। सभी महत्वपूर्ण इमारतों पर कांग्रेस का झंडा फहरा दिया गया और बलिया के आजादी की घोषणा कर दी गयी।

19 अगस्त को चित्तू पाण्डे और अन्य वरिष्ठ नेताओं ने लाउडस्पीकरों के द्वारा यह घोषणा की कि 'स्वराज' मिल चुका है, पुलिस लाइन मे शरण लेने वाले सरकारी अधिकारियों को कोई हानि न पहुचाई जाए। इस घोषणा के बाद वे दयनीय स्थिति में सेना के आने की प्रतिक्षा करने लगे। जब 21 अगस्त को यह सूचना मिली कि सेना की एक टुकड़ी तो गाजीपुर में शांति स्थापित करने के बाद बलिया की ओर अग्रसर हो रही थी, चित्तू पाण्डे और उनके साथी भूमिगत हो गये।[8]

अंतत: हम कह सकते हैं कि जिस क्षेत्र में ब्रिटिश राज को चुनौती दी गयी वह भौगोलिक दृष्टि से भले ही छोटा हो किन्तु उसने भारत में अपना राज कायम रखने के बारे में अंग्रेजों की

मान्यता को निर्णायक रूप से परिवर्तित किया। यदि वाराणसी के पीछे के दूरस्थ जिले बलिया में विद्रोह हो सकता था तो अन्य ऐसे स्थानों पर भी हो सकता था जो अंग्रेजों की आन्तरिक स्थिति को विघटित करने की दृष्टि से कहीं अधिक महत्वपूर्ण था। आन्दोलन को 1942 में निर्दयता से दबा दिया गया किन्तु आन्दोलन को दबाने मे जितनी सेना अंग्रेजों को भेजनी पड़ी उससे उन्हें निश्चय ही भारी चिन्ता हुई होगी। सबसे बड़ी बात तो यह है कि अपने स्वीकृत नेताओं की अनुपस्थिति में भी जनता ने अपना मंतव्य स्पष्ट रूप से व्यक्त कर दिया था। भले ही आन्दोलन को शीघ्रता से दबा दिया गया हो किन्तु समय के क्षितिज पर लिखे गये शब्द "भारत छोड़ो" 1942 के बाद आकार में बड़े होते चले गये, जिनकी परिणति 1947 में विश्व पटल पर स्वतंत्र देश के रूप में भारत के अभ्युदय से हुआ।

सन्दर्भ सूची

1. गाँधीजी के 16 मई के प्रेस साक्षात्कार की रिपोर्ट देते हुए लिनलिथगो का एमरी को पत्र, मेसर्स, खण्ड 2, पृ. 96
2. सरकार, सुमित, आधुनिक भारत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1999 ई., पृ. 408, 409
3. पाण्डे, ज्ञानेन्द्र, कांग्रेस एण्ड द नेशन, यूनिवर्सिटी ऑफ कैलेफोर्निया प्रेस, न्यूयोर्क, 1988 ई., पृ. 129
4. मिश्र, चन्दन, जन विरोध : भारत छोड़ो आन्दोलन, प्रगति प्रकाशन, दिल्ली, 1973 ई., पृ. 863
5. उपाध्याय, देवनाथ, बलिया में क्रांति और दमन, किताब महल प्रकाशन, इलाहाबाद, 1946 ई., पृ. 173
6. शुक्ल, रामलखन, आधुनिक भारत का इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन कार्यालय, दिल्ली, 1999 ई., पृ. 865
7. बंधोपाध्याय, शेखर, पलासी से विभाजन तक, ओरिएन्ट ब्लैक स्वान पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2015 ई., पृ. -412, 413, 415
8. निबलेट, आर.एच., कांग्रेस रेबेलियन इन आजमगढ़, सुपरमैन पब्लिशर, आजमगढ़, 1942 ई., पृ. 13-18

भारत का स्वतंत्र्य समर : जनपद बस्ती के विशेष सन्दर्भ में

डॉ. इक्ष्वाकु प्रताप सिंह*

असहयोग आन्दोलन के दौरान बस्ती जनपद की जनता महात्मा गाँधी के विचारों, उनकी नीतियों से पूर्णतया प्रभावित थी। असहयोग आन्दोलन को सफल बनाने के उद्देश्य से जब 3 फरवरी, 1920 ई. को महात्मा गाँधी का गोरखपुर में आगमन हुआ, तब उस समय उनके भाषण को सुनने के लिए प्रसिद्ध बाले-मियाँ के मैदान में लगभग 1 लाख 25 हजार से अधिक लोगों की भीड़ जुटी थी। जिसमें बस्ती जनपद से बड़ी संख्या में लोग गोरखपुर की उस सभा में पहुंचे थे। महात्मा गाँधी को सुनने के लिए इतनी बड़ी संख्या में लोगों का उपस्थित होना गोरखपुर में गाँधी जी की तत्समय में लोकप्रियता को प्रदर्शित करता है। बाले-मियाँ की सभा में महात्मा गाँधी के द्वारा दिये गये भाषण का जनता पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि इस परिक्षेत्र के अनगिनत वकीलों ने वकालत छोड़ दी, अनगिनत अध्यापकों ने पद से त्यागपत्र दे दिया तथा अनगिनत लोगों ने सरकारी नौकरियों का परित्याग कर दिया था।

गोरखपुर परिक्षेत्र की जनता ने असहयोग आन्दोलन को सफल बनाने के लिए गाँधी जी के द्वारा बताये गये समस्त निर्देशों का पालन किया। विदेशी कपड़ों, मादक पदार्थों आदि के बहिष्कार हेतु कांग्रेसी कार्यकर्ताओं ने अहिंसा का पालन करते हुए जगह-जगह धरना प्रदर्शन किया।[1] सम्पूर्ण गोरखपुर परिक्षेत्र में एकमात्र चौरी-चौरा कस्बे में ही हिंसक घटना हुई जिसमें लगभग 2000 प्रदर्शनकारियों की भीड़ ने चौरी-चौरा के पुलिस थाने को घेरकर आग लगा दिया, जिसमें 22 पुलिसकर्मी जीवित ही भस्मिभूत हो गये और तीन नागरिकों की घटना स्थल पर ही मौत हो गयी थी। वस्तुत: भीड़ द्वारा की गयी इस हिंसा के लिए कांग्रेस तथा जनता जिम्मेदार नहीं थी अपितु पुलिस का ही दोष था।[2] पुलिस ने यदि बल प्रयोग के स्थान पर बातचीत का मार्ग अपनाया होता तो सम्भवत: इस दु:खद घटना से बचा जा सकता था।[3] यद्यपि पुलिस द्वारा ऐसा कोई प्रयास नहीं किया गया। महात्मा गाँधी जो हिंसा के घोर विरोधी थे ने इस दु:खद घटना के पश्चात् चौरी-चौरा की घटना को कारण मानकर असहयोग आन्दोलन को राष्ट्रीय स्तर पर 12 फरवरी, 1922 ई. को वापस ले लिया गया था।[4]

---

*सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग, महाराणा प्रताप महाविद्यालय, जंगल धूसड़, गोरखपुर

तत्कालीन परिस्थितियों में चौरी-चौरा में घटित घटना से उत्पन्न प्रतिक्रियात्मक आक्रोश बस्ती जनपद के स्वयंसेवकों के साथ-साथ आम जन के बीच बड़ी तेजी से फैला। जिसके परिणाम स्वरूप सम्पूर्ण बस्ती शहर तथा जनपद के बहुत से कस्बों में शासन द्वारा धारा 144 लगा दिया गया था। तत्कालीन परिस्थिति में लोगों ने पूरे जनपद में स्थान-स्थान पर धारा 144 को तोड़ा और परिणाम स्वरूप दण्ड भी सहा। बस्ती जनपद के कुछ स्वयंसेवकों ने 5 फरवरी 1922 ई. को अर्थात् चौरी-चौरा घटना के ठीक बाद खलीलाबाद (आधुनिक संतकबीर नगर) में एक सभा करने का ऐलान किया। आयोजित होने वाली सभा की पूर्व सूचना पाकर प्रशासनिक अधिकारियों ने खलीलाबाद में भी धारा 144 लगा दी। परिणामत: प्रदर्शनकारियों ने धारा 144 तोड़कर सभा करने का निश्चय किया। अगले दिन 6 फरवरी, 1922 ई. को कटिया के श्री राजकुमार ने इस कार्य का श्रीगणेश किया और वह अंग्रेजों द्वारा पकड़ लिये गये। 7 फरवरी, 1922 ई. को प्रदर्शनकारी श्री रामदत्त भी पकड़े गये, तदुपरान्त वे खलीलाबाद से बस्ती लाये गये। उनकी गिरफ्तारी की सूचना पाकर स्टेशन पर भारी भीड़ एकत्र हो गयी थी तथा स्टेशन से जेल तक का पूरा रास्ता लोगों से भरा हुआ था।

08 फरवरी, 1922 ई. को प्रशासनिक अधिकारियों के द्वारा गोरखपुर से सैनिकों के बड़े-बड़े दल खलीलाबाद भेजे गये। इससे हताश होने की जगह लोगों ने खलीलाबाद में और भी जबर्दस्त प्रदर्शन किया। जिसमें लगभग 50 प्रमुख कांग्रेसी कार्यकर्ता पकड़े गये। बाद में उन्हें मारपीट कर छोड़ दिया गया।[5] इसी बीच खलीलाबाद के कांग्रेसी कार्यकर्ताओं तथा आन्दोलन से सहानुभूति रखने वाले लोगों के घरों को भी प्रशासन द्वारा लूटा गया। उस समय बस्ती परिक्षेत्र का उसका बाजार भी राजनीतिक गतिविधियों का एक प्रमुख केन्द्र बन चुका था। वहाँ पर भी प्रतिक्रियात्मक प्रदर्शन हुए जिन्हें प्रशासनिक अधिकारियों ने जबर्दस्ती कुचला। प्रदर्शनकारी श्री राजाराम शर्मा को उस समय विशेष चोट आयी। बहुत से कांग्रेसी स्वयंसेवकों को कंकड़ पर दौड़ाते हुए स्टेशन ले जाया गया। जहां उन्हें मालगाड़ी में भर दिया गया। जब गाड़ी गोरखपुर की ओर चली तो स्वयंसेवकों को कुंदो से मारा गया और कई लोगों को चलती गाड़ी से धकेल दिया गया। कुछ लोग जो बहुत निर्भीक थे, गोरखपुर तक अंग्रेजों के अत्याचारों से जूझते हुए जेल गये। उन्हें गोरखपुर ले जाकर छोड़ा गया। कहा जाता है कि इस घटना में कुख्यात हाकिम परगना अब्दुल रज्जाक का विशेष हाथ था।

इन घटनाओं के क्रम में शोहरतगढ़ काण्ड की चर्चा भी समीचीन होगी। शोहरतगढ़ में कांग्रेस दफ्तर को जला दिया गया। पं. परमेश्वर दत्त को कोड़ों से पीटते-पीटते बेहोश कर दिया गया और समाजसेवियों तथा जनता पर घोड़े दौड़ाये गये। अमर शहीद श्री दुधई राम हरिजन का स्वर्गवास इसी अत्याचार के कारण हुआ। इस घटना के विरोध में जेलखाने में हाजी मोहिबुल्ला शाह सेमरियावाँ ने अनशन माध्यम से प्राण दे दिया। गाँधी जी ने अपने पत्र 'नवजीवन' में इस घटना का उल्लेख करते

हुए लिखा था कि "चौरी-चौरा घटना का जवाब शोहरतगंज (गढ़) की जनता ने शान्ति से दिया।"[6] उक्त घटनाओं की जाँच करने महात्मा गाँधी जी के पुत्र देवदास गाँधी आये थे। उनके साथ भी खलीलाबाद में पुलिसवालों में अभद्र व्यवहार किया। खलीलाबाद में कांग्रेसीयों का जो दमन हुआ था उसका कुछ आभास कांग्रेस द्वारा नियुक्त जाँच कमेटी की रिपोर्ट से मिलता है। उसमें जून, 1922 ई. तक की इन कुछ प्रमुख घटनाओं का उल्लेख किया गया गया है-

1. एक मुसलमान वालंटियर को जब वह नमाज पढ़ रहा था तब खींचकर बाहर कर दिया गया।
2. कांग्रेस खद्दर भण्डार पर पुलिस ने धावा कर वहाँ उपस्थित लोगों को गिरफ्तार कर लिया और ले जाते समय उनकी खूब पिटायी की जिसमें एक व्यक्ति वहीं बेहोश हो गया।
3. स्वयंसेवकों के अतिरिक्त अन्य लोगों के साथ भी बहुत ही असम्मान जनक व्यवहार किया गया, उनका केवल अपराध इतना था कि वे खद्दर की कमीजें पहने हुये थे।
4. पकड़े गये 64 स्वयंसेवकों को गोरखपुर जाने वाली गाड़ी के दो डिब्बों में ठूसकर उन्हें जमीन पर बिठाया गया। जब गाड़ी चलने लगी तो उन्हें ढकेलकर डिब्बों से बाहर गिरा दिया गया। केवल 14 स्वयंसेवक ही गोरखपुर पहुँचे।
5. औरतों के शरीर से जबर्दस्ती जेवर उतार लिये गये।

श्री देवदास गाँधी ने शोहरतगढ़ की घटना के बारे में अपने रिपोर्ट में कहा कि शोहरतगढ़ में 25 व 26 अप्रैल, 1922 ई. को अंग्रेज पुलिस ने कांग्रेसी कार्यकर्ताओं पर अमानवीय ढंग से जुल्म किये और कई सप्ताह तक पुलिस का आतंक छाया रहा।[7] 26 अप्रैल को चिल्हिया थाने का सब इन्स्पेक्टर कांग्रेस कार्यालय में 30 कांस्टेबुलों के साथ पहुँचा और वहाँ की सब चीजें उठा ले गया। उस समय कांग्रेस कार्यालय एक झोपड़ी में था जिस उसने गिरवा दिया। झोपड़ी को खींचकर कुछ दूर ले जाकर जला दिया गया। इसके बाद पुलिस कांग्रेसी कार्यकर्ताओं पर टूट पड़ी और उनकी खूब पिटाई हुई। यहाँ के एक प्रमुख कार्यकर्ता श्री परमेश्वर दत्त के यह कहने पर कि कार्यकर्ता पुलिस वालों से माफी मांगकर छुटकारा न लें, पुलिस सब इन्स्पेक्टर ने उन्हें खूब पीटा, पुलिस और चौकीदारों ने भी इसमें भाग लिया। पं. परमेश्वर दत्त चुपचाप पिटते रहे। दत्त ने लोगों को बदला न लेने को कहा। लगातार पिटाई होने के कारणवश थोड़ी देर बाद वे बेहोश हो गये। दो अन्य व्यक्ति भी इसी प्रकार पीटे गये। इनमें से एक बेहोश व्यक्ति को अंग्रेजों द्वारा आग में झोकने का प्रयास किया गया; परन्तु अन्य लोगों के दखल देने के कारण ऐसा हो न सका। पीटे गये लोगों में से एक व्यक्ति की दूसरे दिन मृत्यु हो गयी। पुलिस के कड़े रूख के बावजूद कांग्रेसी कार्यकर्त्ता पूर्णतया अहिंसक बने रहे एवं शांत रहे। सारा टाउन पुलिस के दबदबे से भयक्रान्त था।

12 फरवरी, 1922 ई. को आधुनिक गुजरात राज्य के बारदोली में हुई कांग्रेस की बैठक में

गांधी जी द्वारा असहयोग आन्दोलन के स्थगन का निर्णय लिया गया।[8] जिसकी पुष्टि 24 फरवरी 1922 ई. को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने अपनी बैठक में कर दी। गाँधी जी ने इस हिंसा के लिए अपने आपको दोषी माना। मार्च 1922 ई. में गाँधी जी को न्यायाधीश ब्रूमफील्ड द्वारा असंतोष भड़काने के जुर्म में 6 वर्ष के कारावास का दण्ड दिये जाने के बाद असहयोग आन्दोलन का प्रथम चक्र पूर्णरूपेण समाप्त हो गया। जेल जाने के इस ऐतिहासिक अवसर पर गाँधी जी ने कहा कि "मैं यहाँ इसलिए आया हूँ क्योंकि मुझे यह एहसास हुआ कि कानून के उल्लंघन एवं विचारपूर्वक हिंसा के लिए मैं प्रसन्न होकर यहाँ सजा पा सकता हूँ और मुझे लगा कि इस अवसर पर एक सच्चे नागरिक का यही प्रथम कर्तव्य है।"[9]

कांग्रेस के कार्यकर्ताओं के लिए यह घोषणा अत्यधिक आश्चर्यपूर्ण घटना थी। कांग्रेस के सभी नेताओं ने इस निर्णय की निन्दा की थी। आंदोलन के स्थगन घोषण के विरूद्ध प्रतिक्रिया के क्रम में प्रमुख कांग्रेसी नेता सुभाष चन्द्र बोस ने कहा कि "ठीक इस समय जबकि भारतीयों का उत्साह चरमोत्कर्ष पर था, वापस लौटने का आदेश देना राष्ट्रीय दुर्भाग्य से कम नही है।"[10]

एक आन्दोलन के रूप में असहयोग आन्दोलन ने पहली बार पूरे राष्ट्र की जनता को एक सूत्र में बाँध दिया था। आन्दोलन से सिद्ध हो गया कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस कुछ चुनिंदा लोगों की ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करने वाली संस्था है असहयोग आन्दोलन ने देश के कोने-कोने में अपना प्रभाव डाला तथा ऐसी कोई जगह नहीं बची जो आन्दोलन के प्रभाव से अछूती रही हो। आन्दोलन में समाज के हर वर्ग यथा-शहरी, ग्रामीण, पुरुष, महिला, बच्चे, छात्र, वृद्ध, कृषक, दस्तकार, बुद्धिजीवी, व्यापारी, व्यवसायी, कर्मचारी इत्यादि सभी ने सक्रिय रूप से भाग लिया। इस आन्दोलन ने देश की जनता को आधुनिक राजनीति से परिचित कराया तथा उनमें स्वतन्त्रता की भूख जगायी। आन्दोलन ने यह भी सिद्ध कर दिया कि भारत के लोग राजनीतिक संघर्ष प्रारम्भ कर सकते हैं। इस आन्दोलन ने असहयोग के माध्यम से तत्कालीन सत्ता को सीधी और कड़ी चुनौती दी तथा उनकी जड़ों को हिलाकर रख दिया। असहयोग आन्दोलन के पश्चात् भारतीयों का साम्राज्यवादी शासन से भय शनैः शनैः जाता रहा और वे स्वतन्त्रता प्राप्ति हेतु पूर्णरूप से प्रतिबद्ध होते गए।

इस घटना से दुःखित होकर गाँधी जी ने 6 फरवरी, 1922 ई. को असहयोग आन्दोलन अनिश्चित काल (देश में पूर्ण रूप से अहिंसात्मक वातावरण स्थापित होने तक) के लिए स्थगित करने का निर्णय ले लिया। 11-12 फरवरी, 1922 ई. को बारदोली में आहूत कांग्रेस कार्य-समिति ने आन्दोलन के दौरान विभिन्न जेलों में गिरफ्तार नेताओं ने गांधी जी की कड़ी आलोचना करते हुए लिखा कि "देश आजादी के लक्ष्य को प्राप्त करने जा रहा था और ऐसे में एक चौरी-चौरा की घटना के परिणाम स्वरूप आन्दोलन स्थगित कर दिया जाना कौन सा विवेकपूर्ण कार्य है।"[11]

कांग्रेस के मुख्यनेता जो इस समय जेल में बन्द थे, वे गाँधी जी की इस प्रकार की घोषणा से भौचक्के हो गये थे। गाँधी जी के एक प्रशंसक रोमा-रोला ने इन नेताओं की भावनाओं को इन शब्दों में चित्रित किया है कि "राष्ट्र के सभी जनों को एकत्रित कर, उन्हें निर्धारित आन्दोलन में सम्मिलित कर, उन्हें हाथ उठाने का आदेश देना व पूरे राष्ट्र को हांकने की स्थिति में छोड़ देना खतरनाक था। इसके बाद उनको हाथ नीचा करने का आदेश देकर, तीन बार रूकने को कहना वैसा ही था जैसे कोई मशीन बड़ी मुश्किल से चलने लगी हो और उसे रोक दिया जाए।

इन सभी प्रतिक्रियाओं के बावजूद गाँधी जी मौन रूप से अपने निर्णय पर डटे रहे। गाँधी जी ने कहा कि मैं हर प्रकार का दमन, हर प्रताड़ना, हर उत्पीड़न सह सकता हूँ, यहाँ तक कि अपनी मृत्यु का वरण तक कर सकता हूँ, लेकिन आन्दोलन हिंसक हो जाए यह बर्दाश्त नहीं कर सकता। गाँधी जी ने असहयोग आन्दोलन स्थगित कर दिया। इसके बाद हिंसा का कलंक माथे पर लिए पूर्वी उत्तर प्रदेश के लोग महीनों और वर्षों तक नाना प्रकार के कष्ट और तरह-तरह की सजाए भोगते रहे। बावजूद इसके भारत के स्वातंत्रय-समर के इस यज्ञ में जनपद बस्ती के निवासियों ने अपने-अपने सामर्थ्य के अनुसार असंख्य-अनगिनत आहूतियाँ अर्पित कीं।

सन्दर्भ ग्रन्थ :

1. 'अभ्युदय' (दैनिक समाचार पत्र) 24 दिसम्बर, 1921
2. सीता रमैया, पट्टाभि : "द हिस्ट्री ऑफ दी इण्डियन नेशनल कांग्रेस" भाग-1, स्वदेशी स्टोर प्रकाशन, दिल्ली, 2001 पृ. 176
3. स्वतंत्रता संघर्ष में बस्ती का योगदान, सूचना एवं जनसम्पर्क कार्यालय, उ.प्र., लखनऊ द्वारा प्रकाशित, 1987, पृ. 5-6
4. स्वतंत्रा संघर्ष में बस्ती का योगदान, सूचना एवं जनसम्पर्क कार्यालय, उ.प्र., लखनऊ द्वारा प्रकाशित, 1987, पृ. 7
5. सीता रमैया, पट्टाभि : "द हिस्ट्री ऑफ दी इण्डियन नेशनल कांग्रेस" भाग-1, स्वदेशी स्टोर प्रकाशन, दिल्ली, 2001 ई., पृ. 179
6. दत्त, रजनी पाम : "आज का भारत", द मैकमिलन कम्पनी ऑफ इंडिया, मद्रास 1977, पृ. 351
7. ताराचन्द्र : हिस्ट्री आफ दी फ्रीडम मूवमेन्ट इन इण्डिया, भाग-3, पब्लिकेशन डिविजन, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली 1972, पृ. 456
8. उपाध्याय, विश्वमित्र : शचीन्द्रनाथ सान्याल और उनका युग, कान्ता प्रकाशन, नई दिल्ली 1983, पृ. 115
9. 'स्वदेश' (दैनिक समाचार पत्र), 20 अक्टूबर, 1921
10. 'स्वदेश' (दैनिक समाचार पत्र), 01 दिसम्बर, 1920
11. गुप्त, मन्मथनाथ : भारतीय क्रांतिकारी आन्दोलन का इतिहास, आत्माराम एण्ड सन्स पब्लिकेशन, दिल्ली 2018 ई., पृ. 186-87

1942 की क्रान्ति और कुशीनगर परिक्षेत्र

डॉ. शत्रुजीत सिंह*

सन् 1857 की क्रान्ति के बाद 1942 की क्रान्ति ब्रिटिश सरकार के लिए सबसे बड़ी चुनौती थी। हालाँकि यह क्रान्ति सफल नहीं रही, पर इसके द्वारा ब्रिटिश शासन का अन्त अवश्य आया। क्रान्ति ने विजेता ब्रिटिश सरकार को हतोत्साहित किया और पराजित विद्रोहियों को और अधिक दृढ़निश्चयी बनाया। ब्रिटिश शासक अच्छी तरह समझ गई थी कि भारत में अब गिने-चुने दिनों का साम्राज्यवादी शासन रह गया है।[1] वायसराय ने गाँधी जी पर आरोप लगाया कि उनके 8 अगस्त के 'करो या मरो' के नारे के कारण ही इस क्रान्ति में हिंसा आयी। गाँधी जी ने यह स्पष्ट किया कि यह मन्त्र केवल अहिंसा के सन्दर्भ में था, इसने हिंसा को नहीं भड़काया जैसा कि सरकार समझती है।[2]

सन् 1942 का विद्रोह एक प्रकार से भारत की स्वतन्त्रता का परिचायक है। अब सिर्फ यह प्रश्न तय करना रह गया था कि सत्ता का हस्तान्तरण किस तरीके से हो और स्वतन्त्रता के बाद सरकार का स्वरूप क्या हो? इसमें सन्देह नहीं कि 1942 के विद्रोह तथा 1947 में स्वतन्त्रता मिलने के बीच के समय में सांठगांठ बैठाने और सौदेबाजी करने के अनेक प्रयास और राजनीतिक परिवर्तन हुए। लेकिन इस तथ्य में कोई सन्देह नहीं रह गया था कि स्वतन्त्रता संग्राम अपनी समाप्ति पर था और विजय मिलने ही वाली थी।[3]

गोरखपुर परिक्षेत्र में भारत छोड़ो क्रान्ति का प्रारम्भ छात्रों द्वारा विभिन्न स्थानों पर की गयी हड़ताल, कक्षाओं के बहिष्कार तथा पोस्टर इत्यादि चिपकाने जैसे कार्यों से प्रारम्भ हुआ। 10 अगस्त 1942 को पडरौना तथा गोरखपुर में एवं 11 तथा 13/ अगस्त 1942 को कठकुइयाँ में छात्रों द्वारा वातावरण को अशान्त बनाया गया।[4]

13 अगस्त 1942 को भारत सचिव एमरी ने लन्दन में रेडियो पर भाषण दिया। उनके भाषण से यह संकेत मिला था कि भारतीय जनता प्रशासन को ठप करेगी और पुलिस थाना, कचहरी आदि पर कब्जा करके समानान्तर सरकार की स्थापना का प्रयास करेगी। वास्तव में यही सन्देश पूरे क्रान्ति

*पोस्ट डॉक्टोरल फेलो, प्राचीन इतिहास विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

के कार्यक्रम का हिस्सा बन गया।[5] एमरी की इस घोषणा के बाद 14 अगस्त 1942 को भारत सरकार की ओर से संयुक्त प्रान्त की सरकार को यह आदेश दिया गया कि किसी प्रकार की विध्वंसक कार्रवाइयों को रोकने के लिए सभी सम्भव कठोर कदम उठाये जाने चाहिए। इस प्रकार के कदम उठाने के लिए सरकार की ओर से हरसम्भव सहायता देने की भी बात कही गयी।[6]

स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए हर उम्र के भारतवासी में कुछ भी कर गुजरने की सीमा विद्यमान थी और इसके लिए वह कुछ भी करने को तैयार थे। 15 अगस्त 1942 को पडरौना में लगभग 1000 छात्रों एवं ग्रामीणों की मिली-जुली भीड़ डाकघर व थाने पर अधिकार करने के लिए चल पड़ी। आक्रोश में आकर पुलिस ने भीड़ पर गोली चला दी। फलस्वरूप दो छात्र मारे गये।[7]

अगस्त क्रान्ति का प्रारम्भ पडरौना में 12 अगस्त 1942 को प्रारम्भ हुआ। पडरौना जगदीशपुर स्टेट में स्थित था, जो पूर्वी उत्तर प्रदेश का तराई क्षेत्र है। यहाँ के आन्दोलनकारियों में प्रमुख रूप से रामधारी पाण्डेय, रामशरण मणि त्रिपाठी, चन्द्रदेव तिवारी, खियाली राय, काशीनाथ पाण्डेय, विश्वनाथ मिश्र, कृष्णानन्द भारती, तड़प भगत, हरेराम दूबे, ब्रह्मदेव शर्मा एवं जगन्नाथ मल्ल का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। रामधारी पाण्डेय और चन्द्रदेव पाण्डेय क्रमशः एम.एल.सी. एवं एम.एल.ए. भी चुने गये। जगन्नाथ मल्ल राजदरबार के निकट रिश्तेदार थे। पडरौना में ये आन्दोलनकारी क्षेत्र के गाँवों का दौरा करके जगह-जगह लोगों को भारत छोड़ो क्रान्ति में सहभागी बनाया। इस क्षेत्र का विशेष नारा 'दही-चूड़ा राज का, बोटवा सूराज का' और 'दाल-भात रानी के, वोट दिखाई गाँधी के' इत्यादि मशहूर रहा।[8]

21 अगस्त 1942 को बड़ी संख्या में आन्दोलनकारी अलग-अलग समूहों में भाटपार रानी, बरहज बाजार, सलेमपुर, हाटा, देवरिया, नूनखार, तुर्तीपार, सेवरही, पडरौना, हेतिमपुर, खड्डा, छितौनी, गौरीबाजार आदि अनेक स्थानों पर सड़क पर निकल पड़े और तोड़फोड़ करने लगे।[9] इस कृत्य का अभिप्राय मात्र यह था कि किसी भी तरह से प्रशासन को ठप कर दिया जाए और जिले पर स्वतन्त्र सरकार का अधिकार हो जाए।

पडरौना, दुदही, सेवरही क्षेत्र 1942 की क्रान्ति में अग्रणी रूप से सहभागिता करता रहा। पडरौना तहसील की भूमिका अविस्मरणीय मानी जाती है। इस क्रान्ति के दौरान क्षेत्र की जनता ने स्वयं को दासता से मुक्त कर लिया। 22 अगस्त 1942 को घूसी बसन्तपुर के आसपास के क्षेत्र में 48 घण्टे के लिए ब्रिटिश सरकार समाप्त हो गयी थी।[10] छोटी गण्डक तथा खजुआ के बीच के भूभाग ने 23 अगस्त 1942 की रात में अत्यन्त ही सन्तोषजनक कार्य किया जिसका समस्त श्रेय श्री अयोध्या प्रसाद व रामप्रसाद को दिया जाना चाहिए। 25 अगस्त 1942 को लगभग हजारों की संख्या में जनता पडरौना में जुलूस निकाली जिसका नेतृत्व रघुपति राय और बब्बन राय कर रहे थे। इस भीड़ ने पडरौना के आसपास के सभी तार और टेलीफोन के खम्भों को उखाड़ दिया।[11] संचार व्यवस्था

ध्वस्त हो गयी। भीड़ ने डाकघर के फर्नीचर और कागजातों को जलाकर राख कर दिया। इसके बाद भीड़ ने थाने का घेराव किया। जनता का उद्देश्य था थाने के भवन पर अंग्रेजी झण्डे के स्थान पर तिरंगा फहराना। थानेदार ने ऐसा करने से मना किया। उत्तेजित भीड़ पर थानेदार को नियन्त्रण बनाये रखना कठिन प्रतीत हो रहा था। भीड़ के इस आक्रोश को देखकर थानेदार ने सिपाहियों को गोली चलाने का आदेश दिया।[12]

पुलिस की गोली चलते ही अनेक लोग धराशायी हो गये। एक व्यक्ति की मृत्यु घटनास्थल पर ही हो गयी तथा कई अन्य घायल हो गये।[13] इस घटना में पुलिस कुल सात राउण्ड गोली चलाई।[14] घायलों में रघुपति राय भी थे, जिनकी मृत्यु कुछ दिन बाद अस्पताल में हो गयी।[15]

क्रान्ति के समय कांग्रेस का दफ्तर रामकोला रोड पर वर्तमान चित्रगुप्त मन्दिर के निकट था। इसमें कांग्रेस की बैठक होती थी और कार्यक्रम तय किये जाते थे। स्थानीय नेताओं ने अपने-अपने गाँव क्षेत्र में महात्मा गाँधी और उनके आन्दोलन के बारे में जानकारी पहुँचायी। सरकार की तरफ से कानूनगो, पटवारी आदि सरकारी कर्मचारियों की ड्यूटी लगायी गयी थी। वे कांग्रेस की मीटिंग से सम्बद्ध पूर्ण जानकारी से सरकार को अवगत कराएँ। सदर पडरौना के निकट दुधही में सुपरवाइजर कानूनगो के पद पर तैनात शंकरदयाल श्रीवास्तव की ड्यूटी भी कांग्रेस की मीटिंग की रिपोर्ट तहसील में देने के लिए लगायी गयी थी। अपनी रिपोर्ट में उन्होंने कहा है कि 'कांग्रेसी नेता कहते हैं कि अंग्रेज सरकार अब कुछ ही दिनों की मेहमान है।' उन्होंने ऐसा कहने वाले नेताओं के नाम के विषय में अनभिज्ञता प्रकट की। इस पर ज्वाइण्ट मजिस्ट्रेट कसया पडरौना जिसे स्थानीय जनता जंट साहब कहती थी, ने इन पर पाँच रुपये का जुर्माना लगा दिया।[16]

9 अगस्त सन् 1942 को आन्दोलन की शुरुआत के ठीक पहले कुछ नेता तो गिरफ्तार हो गये, किन्तु शेष फरार हो गये। इस क्षेत्र की जनता पहले से दबी हुई और भयभीत भी थी और सरकार ने दमनचक्र, आतंक तथा नेतृत्व का अभाव भी था। फिर भी इस क्षेत्र के लोगों ने इस आन्दोलन में अपनी उपस्थिति यत्र-तत्र हिंसा, जुलूस, रेल लाइनों को उखाड़कर, टेलीफोन के तार काटकर और अंग्रेजी सरकार के विरोध में प्रदर्शन किया। किंचित् राजदरबार के प्रति भी आक्रोश दिखाया। बड़े काश्तकार जो दरबार से जुड़े थे, उन्होंने आन्दोलन से अपने को अलग रखा। आन्दोलनकारियों ने पडरौना से कठकुइयाँ मार्ग पर ईसाई घर के पास रेल लाइन को उखाड़ डाला। युद्धकाल में पडरौना कसया को जोड़ने वाली स्थायी रेल लाइन बिछायी गयी थी, इसे भी आन्दोलनकारियों ने उखाड़ डाला। इनका नेतृत्व मंगल उपाध्याय और रामशरण मणि कर रहे थे।[17] पडरौना से कुबेर स्थान रोड पर बड़गांव में जनता ने राजा के साखू के कटे पेड़ लूट लिये। अमरुल्ला मास्टर जो पेशे से किसान थे, उन्होंने गाँव वालों को आग लगाने के लिए उकसाया और जुलूस निकालने का प्रयास किया, परन्तु गिरफ्तार कर लिये गये।[18]

फरार कांग्रेसी नेताओं को लक्ष्मीगंज क्षेत्र के जमींदार बच्चा बाबू ने अपने यहाँ शरण दी और उनके भोजन तथा सुरक्षा का पूरा बन्दोबस्त किया। बच्चा बाबू ऊपर से अंग्रेजों से बने रहे, परन्तु अन्दर-अन्दर आन्दोलनकारियों की मदद की।[19] फरार कांग्रेसी नेताओं ने रामशरण मणि त्रिपाठी की अगुवाई में लक्ष्मीगंज रेलवे स्टेशन में आग लगा दी। बाद में जब जाँच के लिए टीम आयी तो स्टेशन मास्टर जो बंगाली बाबू कहे जाते थे, उन्होंने अपने बयान में कहा कि स्टेशन को जलाने का कार्य बाहर से आये उपद्रवियों ने किया। बच्चा बाबू के आदमियों ने तो बचाया अन्यथा पूरा स्टेशन जल गया होता। इस बयान से बच्चा बाबू और कांग्रेसी नेताओं का बचाव हो गया।[20]

इस प्रकार देखा जाय तो क्रान्ति में पडरौना, कुशीनगर[21] में आम जनता बड़े पैमाने पर बिना किसी स्वार्थ के अपना सर्वस्व भारत छोड़ो क्रान्ति में स्वाहा किया। क्योंकि उनको विदेशियों से मुक्ति तथा स्वराज की स्थापना करनी थी, जिससे वह खुद अपने भाग्य का निर्माता बन सकें।

1942 की क्रान्ति, स्वतन्त्रता संघर्ष का एक ऐसा पक्ष है जिसे प्रदर्शनी समझकर पेश किया जाता है। लेकिन यह सिर्फ प्रदर्शनी ही नहीं बल्कि स्वतन्त्रता प्राप्ति में वीरों द्वारा बहाये गये खून की कहानी है। जहाँ तक क्रान्ति के स्वरूप एवं विस्तार की बात है, यह आन्दोलन भारत के अधिकांश भागों में अहिंसक रूप में प्रारम्भ होकर एक जन-विद्रोह का रूप धारण कर लिया, जो गाँधी जी के अहिंसा से एक कदम आगे था। फिर भी इसे स्वतन्त्रता आन्दोलन के मिथक में सहज भाव से सम्मिलित कर लिया गया। ऐसा करना इस कथन की पुष्टि में सहायक है कि स्वतन्त्रता की प्राप्ति खून बहाये बिना नहीं हुई।

सन्दर्भ

1. चन्द्र बिपिन, त्रिपाठी अमलेश, डे बरुण, स्वतन्त्रता संग्राम, नेशनल बुक ट्रस्ट, 1995 ई., दिल्ली, पृ. 165
2. मिश्रा, गोविन्द : कॉन्सटीट्यूशनल डेवलपमेण्ट एण्ड नेशनल मूवमेण्ट इन इण्डिया (1919-1947), पृ. 194
3. चन्द्र बिपिन, त्रिपाठी अमलेश, डे बरुण, स्वतन्त्रता संग्राम, नेशनल बुक ट्रस्ट, 1995 ई., दिल्ली, पृ. 165
4. सहाय गोविन्द : 1942 रिवॉल्यूशन, ओरिएंटल प्रकाशन नई दिल्ली, 1999, पृ. 215
5. स्वतन्त्रता संग्राम के सैनिक (संक्षिप्त परिचय), सूचना विभाग उत्तर प्रदेश, लखनऊ, 2005, पृ. 23
6. टेलीग्राम आर नं. 6432 दिनांक 14 अगस्त 1942 : होम पोलिटिकल (1) फाइल नं. 31/7/1942, राजकीय अभिलेखागार, नई दिल्ली
7. स्वतन्त्रता की लड़ाई और गोरखपुर, जनवार्ता (बनारस), 25 अगस्त 1942, पृ. 4
8. स्वतन्त्रता संग्राम के सैनिक (संक्षिप्त परिचय), सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ, 2005 ई., पृ. 24
9. वही
10. वही, पृ. 25
11. होम पोलिटिकल फाइल पोल (1) नई दिल्ली 18/09 1942
12. लीडर, 29 अगस्त 1942, पृ. 27

13. श्रीकृष्ण 'सरल' : क्रान्ति कथाएँ, पृ. 778
14. होम पोलिटिकल फाइल पोल (1) नई दिल्ली 18/09/1942
15. वही
16. वही
17. वही
18. वही
19. वही
20. वही
21. वर्तमान का कुशीनगर परिक्षेत्र 1942 की क्रान्ति के समय में गोरखपुर परिक्षेत्र के अन्तर्गत आता था। 1946 में प्रशासनिक व राजस्व की दृष्टि से देवरिया जनपद का गठन किया गया और कुशीनगर, देवरिया जनपद का अंग था, जिसे पुनः 1994 में देवरिया को विभाजित कर कुशीनगर जनपद का निर्माण किया गया। यहाँ अध्ययन में स्पष्टता के लिए कहीं-कहीं देवरिया और गोरखपुर के घटनाक्रम का भी वर्णन किया गया है, क्योंकि कुशीनगर परिक्षेत्र इन जनपदों के संक्रमण क्षेत्र को प्रभावित करता था।

भारत का स्वातन्त्र्य समर और जनमानस का ज्वार

('भारत छोड़ो आन्दोलन' के विशेष सन्दर्भ में)

यशवन्त सिंह*

अगस्त 1942 में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने अंग्रेजों को 'भारत छोड़ो' की चुनौती दी और उन्हें भारत छोड़ने पर मजबूर करने के लिए अभूतपूर्व स्तर पर जनान्दोलन छेड़ दिया। भारत छोड़ो आन्दोलन एक सशक्त ज्वार की भाँति सारे देश में फैल गया। उसने समाज के सभी वर्गों के लोगों को अपने में समेट कर उनमें देशभक्ति की उत्कट भावना और देश के लिए मर मिटने की अदम्य लालसा पैदा कर दी। इस आन्दोलन की संकल्पना पारम्परिक सत्याग्रह के रूप में नहीं की गयी थी। यह तो 'निर्णायक लड़ाई' 'एक खुला विद्रोह' 'तेज और छोटी' लड़ाई होने वाली थी, जो देश को 'प्रचण्ड ज्वाला' में झोंक देती। विदेशी प्रभुता को किसी भी कीमत पर समाप्त करना था। गाँधी जी दंगों और गृहयुद्ध की स्थिति का सामना करने के लिए भी तैयार थे। वे बारम्बार अंग्रेजों से कहते कि 'भारत को ईश्वर के या अराजकता के भरोसे छोड़ दें। इस व्यवस्थित, अनुशासित, अराजकता को जाना ही होगा और इसके परिणामस्वरूप यदि पूर्ण अराजकता आए तो मैं उस खतरे को उठाने के लिए तैयार हूँ।" इस संघर्ष मं उस प्रत्येक जन कार्यवाही को शामिल किया जायेगा जिसे 'शस्त्रहीन विद्रोह' की संज्ञा दी जा सकती है यानी आम हड़तालें, रेलों को रोकना, संचार व्यवस्था को भंग करना और सम्भव हो तो अंग्रेजों की सैनिक टुकड़ियों के आवागमन में बाधा डालना। गिरफ्तारियाँ देने जैसे कांग्रेस के पुराने तरीकों को इस संघर्ष के लिए 'बहुत नरम' समझा गया। गाँधी जी ने यहाँ तक मान लिया कि जनता आत्मरक्षा के लिए हथियार भी उठा सकती है। अधिक ताकतवर और हथियारों से लैस आक्रमणकारी के विरुद्ध शस्त्र उठाने को अहिंसक कार्यवाही माना गया।[1] सर्वोपरि प्रत्येक व्यक्ति अपने स्तर पर कार्यवाही करने के लिए स्वतन्त्र था।

क्रिप्स मिशन की असफलता ने देश को विषाद और आक्रोश का शिकार बना दिया। लगभग सभी क्षेत्रों में निराशा थी। अपवाद केवल मुस्लिम लीग और वे व्यक्ति थे, जिन्होंने रोजगार के बढ़े हुए अवसरों का लाभ उठाया और युद्ध में ठेकेदारी करके खूब धन कमाया। लेकिन प्रश्न यह था कि अगला कदम क्या हो? निष्क्रियता असह्य थी। गाँधी ने क्रिप्स के प्रस्ताव में बहुत दिलचस्पी नहीं

*शोध-छात्र, इतिहास विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

ली थी, लेकिन उसकी असफलता से उन्हें भी बड़ी निराशा हुई। दक्षिण-पूर्व एशिया की बदलती हुई स्थिति से भी वह परेशान थे। ब्रिटेन, मलाया, सिंगापुर और बर्मा से पीछे हट गया था। इसी से मिलते-जुलते अभिशाप ने फिलीपीन्स और इण्डोनेशिया को ग्रस लिया था। गाँधी जी और कांग्रेस के नेता बेचैनी के साथ चाहते थे कि जो कुछ मलाया और बर्मा में घटित हुआ, उसकी भारत में पुनरावृत्ति नहीं होनी चाहिए। जब जनता को सैनिक आक्रमण का सामना पड़ा था तो वह भय और आतंक का शिकार हो गयी। उन्होंने संकट का चुनौती के साथ सामना नहीं किया। भारत को ऐसी स्थिति से भी बचना चाहिए था। गाँधी जी इस नतीजे पर पहुँचे कि भारतीय जनता के मन से इस भय को दूर भगाने और आक्रमण का मुकाबला करने के लिए तैयार करने का यही रास्ता हो सकता है कि उसके दिमाग में यह बैठा दिया जाये कि वह अपनी मालिक खुद है और देश की रक्षा करना उसका दायित्व है। वह इस विश्वास पर अपनी जिम्मेदारी से मुक्त नहीं हो सकती कि सुरक्षा की जिम्मेदारी ब्रिटेन की है। अत: उन्होंने ब्रिटानी सरकार से भारत छोड़ देने और सत्ता को भारतीयों के हाथ सौंप देने की माँग के साथ एक आन्दोलन शुरू करने का फैसला किया। उन्होंने इसकी व्याख्या की: "मैं जानता हूँ कि ऐसे नाजुक वक्त पर इस अद्‌भुत विचार से बहुत से लोग अचम्भित हुए हैं। यदि मुझे अपने प्रति ईमानदार रहना था तो पागल करार दिये जाने का खतरा मोल लेकर भी मुझे सच्चाई की बात करनी थी। मैं इसे युद्ध और भारत को विपत्ति से मुक्त करने में अपनी ठोस देन मानता हूँ।"[2]

जुलाई के प्रारम्भ में वर्धा में कांग्रेस की कार्यसमिति की बैठक हुई और राष्ट्रीय माँग का मसविदा तैयार हुआ। समिति ने ब्रिटेन से माँग की कि वह फौरन सत्ता भारतीयों को सौंपकर 'भारत छोड़ दे'। अगर प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया गया तो "कांग्रेस न चाहते हुए भी सन् 1920 से अर्जित अपनी सारी अहिंसक शक्ति का इस्तेमाल करके सीधी कार्यवाही का आन्दोलन शुरू करेगी।" 7 अगस्त को इस नीति सम्बन्धी फैसले का अनुमोदन करने के लिए बम्बई में अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की बैठक बुलायी गयी। इस बीच चीन की तीनों सेनाओं के प्रधान जनरल च्यांग काई शेक और अमरीका के राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने ब्रिटेन को भारत में सम्बन्ध बना लेने और गतिरोध खत्म करने के लिए समझाने-बुझाने की कोशिश की, लेकिन चर्चिल किसी की भी सुनने को तैयार नहीं थे। उन्होंने खुलेआम घोषणा की कि उन्हें सम्राट का प्रधानमन्त्री इसलिए नहीं बनाया गया है कि ब्रितानी साम्राज्य का बंटाधार कर दें। अखिल भारतीय कांग्रेस का अगस्त, 1942 का बम्बई का अधिवेशन ऐतिहासिक बन गया। उसी में मशहूर 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव पास हुआ। प्रस्ताव का अन्तिम अंश था- "देश के साम्राज्यवादी और एकतन्त्रवादी सरकार के विरुद्ध अपनी इच्छा जाहिर कर दी है। अब उसे उस बिन्दु से लौटने का बिल्कुल औचित्य नहीं है। अत: समिति अहिंसक ढंग से, जहाँ तक सम्भव हो सके, व्यापक धरातल पर जनसंघर्ष शुरू करने का प्रस्ताव स्वीकार करती है.... यह संघर्ष अनिवार्यतया गाँधी जी के नेतृत्व में होगा।"[3]

8 अगस्त की रात कांग्रेस की बैठक रात में देर से खत्म हुई थी। उसके कुछ ही घण्टों के भीतर गाँधी जी और कांग्रेस कार्यसमिति के नेताओं को गिरफ्तार करके एक विशेष रेलगाड़ी द्वार बम्बई के बाहर भेज दिया गया। गाँधी जी को पूना में आगा खाँ पैलेस में रोक लिया गया और शेष नेता अहमदनगर किले में नजरबन्द कर दिये गये। 9 अगस्त की सुबह 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव और नेताओं की गिरफ्तारी की खबर जनता तक पहुँच गयी। जनता एकदम अवाक् और स्तम्भित हो गयी। हर शहर और कस्बे में हड़ताल हुई। हर जगह प्रदर्शन हुए। जुलूस निकले। हवा में नेताओं की रिहाई की माँग करने वाले राष्ट्रीय गीत और नारे गूँज उठे। उत्तेजित और क्रुद्ध होने के बावजूद कुल मिलाकर जनता शान्तिपूर्ण थी, लेकिन तनाव था और भीड़ के बड़े आकार को देखकर ही सरकार घबरा गयी। जब भीड़ ने तितर-बितर हो जाने के पुलिस के आदेश की अवहेलना की, पुलिस ने गोली चलायी। सिर्फ दिल्ली में 11 और 12 अगस्त के दो दिनों के विभिन्न मौकों पर पुलिस ने निहत्थी भीड़ पर 47 बार गोलियाँ चलायीं। 76 आदमी मारे गये और 114 घायल हुए। सारे देश में एक ही दृश्य था- जनता का प्रदर्शन, पुलिस की हिंसा, गोली चलान और गिरफ्तारी।"[4]

भारतीय राष्ट्रवाद के उमड़ते हुए ज्वार ने अनुदारों के गढ़ में भी दरारें डालना शुरू कर दिया। एमरी जैसे व्यक्ति को भी स्वीकार करना पड़ा- "यह सोचने का तो सवाल ही नहीं कि भारतीय राष्ट्रवाद के बढ़ते हुए ज्वार के विरुद्ध हम यहाँ अनिश्चित काल तक टिके रह सकेंगे, भले ही इस विचार को यहाँ जनमत का एकजुट समर्थन मिले।" आगे उसने कहा, "हमारा सामना भारतीय राष्ट्रवाद से है, भारत के कथित जनतन्त्र से नहीं।" यदि अनुदार दल के कट्टर तत्त्व ऐसा सोचने लगे थे तो ब्रिटिश जनजीवन के अन्य भागों की सोच की दिशा का सहज ही अनुमान किया जा सकता है। इस प्रवृत्ति के उदय का श्रेय भारत छोड़ो आन्दोलन को भी जाता है। वस्तुत: यह इस आन्दोलन के प्रभाव का एक अधिक महत्त्वपूर्ण पक्ष है।[5]

भारत छोड़ो आन्दोलन भारतीय इतिहास का ऐसा पक्ष है, जिस पर विभिन्न विद्वानों के सैद्धान्तिक दृष्टिकोण विविध प्रकार के थे। बिहार और पूर्वी संयुक्त प्रान्त में हुए भारत छोड़ो आन्दोलन की निम्नता सिद्ध करने की उत्कण्ठा में स्टीफन हैनिंघम ने विद्रोह के समय हुई लूटपाट का अर्थ यही लगाया है कि यह उन लोगों का विद्रोह था जिनके अधिकार छिन चुके थे। इससे भी अधिक आश्चर्यजनक उनका यह सोचना है कि कांग्रेसी लोगों की भीड़ द्वारा 'इन्कलाब जिन्दाबाद' के क्रान्तिकारी नारे लगाने से यह प्रकट होता है कि उनमें निम्नता का बोध था।

सरकार कांग्रेस द्वारा चलाये जाने वाले जनान्दोलन को कुचलने की कई सप्ताह पहले से ही तैयारी कर रही थी। अत: पहले वार करने का लाभ उसे ही मिला। आन्दोलन शुरू होने से लगभग एक मास पूर्व राज्य सचिव एमरी ने कहा था, "जिसका युद्ध न्यायसंगत होता है उसका शस्त्र बल भले ही दुगुना होता हो, किन्तु जो पहले वार करता है उसका शस्त्र बल तिगुना होता है।" ऐसे कवित्वपूर्ण उद्‌बोधन के बिना भी भारत सरकार अपने दो दशकों के अनुभव के आधार पर कांग्रेस

के सामान्य आन्दोलनों से निबटने में पूर्णतः सक्षम थी। वस्तुतः गाँधी और जिला स्तर के नेताओं सहित सभी कांग्रेसी नेताओं की अचानक गिरफ्तारी के फलस्वरूप कांग्रेस संगठन नेतृत्वहीन हो गया और आरम्भ के कुछ दिनों में आन्दोलन ढीला-ढाला ही चलता रहा। सरकार भी अपने में सन्तुष्ट थी कि उसके द्वारा की गयी कार्यवाही से कांग्रेस टूट गयी थी, परन्तु कुछ शुरुआती दिनों की खामोशी के पश्चात् आन्दोलन का स्वरूप क्रान्तिकारी हो गया। गाँधी के कार्यक्रम में रेलमार्गों को अवरुद्ध करने और डाक व्यवस्था को अस्त-व्यस्त करने का कोई प्रस्ताव नहीं था। यह बात उल्लेखनीय है, क्योंकि हार्डीमेन के अनुसार आन्दोलन शुरू होने के कुछ सप्ताह पूर्व वल्लभभाई पटेल ने गुजरात के कांग्रेसजनों से कहा था, "यदि इस संघर्ष में कोई रेल-लाइन उखाड़ी जाती है या किसी अंग्रेज की हत्या होती है, तो संघर्ष रोका नहीं जायेगा – चौरीचौरा जैसी हिंसक घटनाओं के कारण भी यह आन्दोलन नहीं रुकेगा।"[6]

गाँधी के कार्यक्रम के अनुसार इस आन्दोलन में विद्यार्थी शिक्षा संस्थाओं का त्याग इस निश्चय के साथ करते कि स्वतन्त्रता प्राप्त होने तक वे वापस उन संस्थाओं में नहीं जायेंगे, ग्रामवासी नमक कानून का उल्लंघन करते और आवश्यक होने पर स्वयं को गिरफ्तारी के लिए प्रस्तुत करते और किसान सरकार की मालगुजारी देना बन्द कर देते। जमींदार के क्षेत्रों में गाँधी की योजना के अनुसार, यदि आन्दोलन के प्रति जमींदार का रुख सहानुभूतिपूर्ण होता तो मालगुजारी की राशि का परस्पर मान्य अंश जमींदार को अदा करते अन्यथा किसान मालगुजारी देना बन्द कर देते।

आन्दोलन की दूसरी और निर्णायक अवस्था 15 अगस्त के आस-पास आरम्भ हुई। इससे देश के अधिकांश क्षेत्र प्रभावित नहीं हुए और यह केवल भोजपुर क्षेत्र, महाराष्ट्र के सतारा जिला और बंगाल में मिदनापुर तक ही सीमित रहा। इन क्षेत्रों में आन्दोलन तब शुरू हुआ जब उसे अन्य क्षेत्रों में समाप्त कर दिया गया था। पूर्वी संयुक्त प्रान्त एक ऐसे जनान्दोलन के रूप में प्रकट हुआ जिसका विस्तार अभूतपूर्व था और जिसकी कुछ घटनाओं ने 1857 के विद्रोह की उग्रता की याद ताजा कर दी। वस्तुतः संयुक्त प्रान्त के अधिकारियों को इतने विस्तृत आन्दोलन के फैलने का सन्देह पहले ही होने लगा था। जनवरी 1942 में ही एक रिपोर्ट में गदर में हुई घटनाओं के पुनः घटित होने की बात कही गयी थी। नियांतवाद का सहारा लिये बिना यह कहा जा सकता है कि भारत छोड़ो आन्दोलन से पूर्व की आर्थिक स्थिति के कारण ग्रामीण क्षेत्र में काफी अशान्ति थी। युद्ध के वर्षों में मूल्यों में तेजी से वृद्धि हुई और सभी जिंसों (जिलों) के थोक मूल्यों का सूचकांक (आधार 1914-100) 1939 में 108 से उछलकर 1943 में 307 पर पहुँच गया। खाद्यान्न में यह वृद्धि और भी अधिक नाटकीय रूप से हुई, सूचकांक 1939 में 86 से 1943 में 396 पर पहुँच गया।[7] इससे स्पष्ट है कि 1941-42 के दौरान युद्धकाल की मुद्रास्फीति अपनी चरम अवस्था में थी, परन्तु तेजी से हुई मूल्य वृद्धि का प्रभाव स्वाभाविक रूप से ग्रामीण समाज के सीमान्त आय वर्ग पर, अर्थात् गरीब किसानों और खेतिहर पर, गम्भीर रूप से पड़ा। मैक्स हारकोर्ट ने मूल्य वृद्धि के विस्तार और उपद्रवों के सन्दर्भ

में उसके महत्त्व की विस्तृत समीक्षा की है, किन्तु यह उल्लेखनीय है कि मुद्रास्फीति अपने चरम विन्दु पर 1943 के आरम्भ में पहुँची या नहीं।

स्टीफन हेनिंघम ने भी यह तथ्य प्रकाशित किया कि 1942 के आरम्भ में बाजार लूटने की घटनाओं में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। जबकि ऐसी घटनाएँ अभाव की स्थिति से ही सम्बन्धित होती हैं। बिहार से प्राप्त पाक्षिक रिपोर्ट में कहा गया कि पराजय और अफवाहों ने निराशा को बहुत अधिक बढ़ा दिया। वस्तुत: इसमें कोई सन्देह नहीं कि अफवाहों ने ऐसी परिस्थिति पैदा करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी जिससे 1942 के आन्दोलन में जनसाधारण का सम्मिलित होना सम्भव हो सका। 1942 के आन्दोलन में जनसाधारण के सम्मिलित होने के बहुत सारे साक्ष्य उपलब्ध हैं। यदि हम केवल पूर्वी प्रान्त और बिहार के ग्रामीण क्षेत्रों में हुए भारत छोड़ो आन्दोलन पर ही नजर डालें तो हमें सहज ही यह मालूम हो जाता है कि इस समस्त क्षेत्र में उपद्रवों का एक सामान्य स्वरूप था। सरकारी कार्यालयों, पुलिस थानों, रेलमार्गों और रेलवे स्टेशनों तथा टेलीफोन और तारसंचार-व्यवस्था पर अर्थात् ब्रिटिश शासन के समस्त दृश्यमान प्रतीकों पर बड़े पैमाने पर आक्रमण किये गये। इसका विशद् विवरण आजमगढ़ के जिला मजिस्ट्रेट आर.एच. निबलेट की डायरी में दिया गया है, जिसमें यह भी उल्लेख किया गया है कि लूटने के इरादे से अथवा इसके बिना भी, सरकारी सम्पत्ति का योजनाबद्ध तरीके से विनाश करने के उद्देश्य से भीड़ कितनी जल्दी इकट्ठी हो जाती थी।[8] यह उल्लेखनीय है कि निबलेट का वर्णन आजमगढ़ से 400 मील दूर स्थित बेगूसराय के एस.डी.ओ. की रिपोर्ट से बहुत मिलता है: ....13 ता. को हमें बेगूसराय में स्थिति बिगड़ने की सूचना मिली। 14 अगस्त की दोपहर से ही ई.आई. तथा बी.एन.डब्ल्यू. रेलवे के स्टेशनों, डाकघरों, पुलिस स्टेशनों, आबकारी की दुकानों, खालमहल के दफ्तरों के लूटने और जलाये जाने और संचार साधनों, विशेषकर रेललाइनों की तोड़-फोड़ के समाचार लगातार आने लगे और इसके साथ ही दूसरे स्टेशनों और परगनों से पूर्ण अराजकता की नहीं तो कम से कम गम्भीर स्थिति होने और मुफसिल में कानून का उल्लंघन होने के समाचार भी आने लगे...। किसी पुलिस वाले या अदालत के चपरासी को गाँवों में जाने की हिम्मत न थी, खतरनाक समाचार लाने वाले पुलिस अधिकारी सादी पोशाक में आते थे और बताते थे कि यदि वे वर्दी पहनकर निकलते तो उनकी वर्दी फाड़ दी जाती, उन्हें मारा-पीटा जाता और उनके पत्र छीन लिये जाते।[9] बिहार के उत्तरी जिलों में भीड़ ने किसी पुलिस चौकी को नहीं छोड़ा। उदाहरणार्थ दरभंगा के 25 स्थानों में से 19 पर, मुजफ्फरपुर में 23 में से 19 पर और सारण में 29 में से 27 पुलिस थानों पर हमला किया गया। 1857 के बाद पहली बार बिहार में ऐसा हुआ। भीड़ ने यूरोपीय लोगों को बेइज्जत किया, उनकी हत्या भी की। पटना के निकट फतुहा में शाही वायु सेना के दो अफसरों को रेलगाड़ी के डिब्बे से बाहर निकालकर प्लेटफार्म पर भालों से मार डाला गया। बाद में उनके नंगे शवों को टमटम में रखकर नगर में घुमाया गया और पुनपुन नदी में फेंक दिया गया। घटना के बाद की गयी जाँच से पता चलता है कि इस संगठित हिंसा को अंजाम देने

वाले स्थानीय दुसाध थे।

इसी प्रकार जिस निर्दयता से 18 अगस्त और 30 अगस्त को (मुंगेर जिले में) क्रमशः पसराहा और रूइहार में दुर्घटनाग्रस्त होकर गिरने वाले शाही वायुसेना के कर्मचारियों की हत्या की गयी, उससे केवल यही संकेत नहीं मिलता है कि लोगों में अंग्रेजों के विरुद्ध कितना तीव्र रोष था वरन् यह भी संकेत मिलता है कि अधिकांश लोगों को यह विश्वास हो गया था कि ब्रिटिश राज का अस्तित्व समाप्त हो गया है। इस घटना में स्थानीय लोगों के शामिल होने के संकेत मिलते हैं, भीड़ में अधिकांश गोप, मंडल, कोइरी या ऐसी ही निम्न अथवा मध्यमवर्गीय जातियों के लोग शामिल थे। उपर्युक्त घटनाएँ जनसाधारण द्वारा की गयी हिंसा के उदाहरण के रूप में इतनी महत्त्वपूर्ण नहीं हैं वरन् उनका महत्त्व यही है कि उनसे यह संकेत मिलता है कि राष्ट्रीयता की भावना जनमानस में कितनी गहराई तक समा चुकी थी।[10] इसी प्रकार जनसाधारण के लोगों ने बलिया, आजमगढ़, इलाहाबाद, प्रतापगढ़ आदि स्थानों जो आज के पूर्वी उत्तर प्रदेश के क्षेत्र में आते हैं, सामान्य लोगों के 1942 के आन्दोलन में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। बिहार के आज के जिलों में प्रमुखतः पटना, भागलपुर, मुजफ्फरपुर जैसे अनेक शहरों में ऐसे नाम शामिल हैं जिनका आज तक नाम गुमनामी के अंधेरे में कैद है- जैसे बलिया से बलदेव भर, श्रीप्रताप, अवतार भर, बल्ली भर, शिवनाथ, निरहू, हरिनन्दन, शिव दहिन राय, जैसे बहुत सारे नाम। गाजीपुर से जंगी भर, बैजनाथ खटिक, इलाहाबाद से रामजस पासी, बैजू पासी, श्रीनाथ, राजाराम तथा महाशय मसुरिया दीन इत्यादि। बिहार से मुसाहक चौधरी (मुंगेर), इन्द्रदेव चौधरी (सारण), तिल्ला पासी (भागलपुर), कमल चौधरी (पटना) जैसे सामान्य लोगों ने भारत छोड़ो आन्दोलन में भाग लिया।

सन्दर्भः

1. हरिजन, 15 मार्च 1942 और 29 मार्च 1942
2. विपिन चन्द्र, अमलेश त्रिपाठी, वरुण दे, अनुवाद रामसेवक श्रीवास्तव - स्वतन्त्रता संग्राम - पृ. 163
3. वही, पृ. 163-164
4. वही, पृ. 164
5. हचिन्स, एच.जी., दि स्पांटेनियस रिवॉल्यूशन, ओरिएन्टल ब्लैक स्वान पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1973, पृ. 877-78
6. शुक्ल, आर.एल., आधुनिक भारत का इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन कार्यालय, नई दिल्ली, 1999, पृ. 850
7. घोष, ए.के., प्राइस एण्ड इकोनामिक फ्लाक्चुएशन इन इण्डिया, 1861-1947, एशिया पब्लिशिंग हाउस, 1979, टेबल 5, पृ. 48
8. निबलेट, आर.एच., द कांग्रेस रिबेलियन इन आजमगढ़, सुपरमैन पब्लिशर, आजमगढ़, 1942, पृ. 71, एस. ए.ए. रिजवी, इलाहाबाद 1957

9. बिहार स्टेट अरकाइवस, पटना फ्रीडम मूवमेंट कलेक्शन फाइल नं. 47 रिपोर्ट आफ द डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट, मनगर टू चीफ सेकेटरी बिहार, सितम्बर 1942

10. शुक्ल, आर.एल., आधुनिक भारत का इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन कार्यालय, नई दिल्ली, 1999, पृ. 857, 858

भारत छोड़ो आन्दोलन में देवरिया जिले के छात्र रामचन्द्र का योगदान

शचीन्द्र मोहन, अस्मित शर्मा*

भारत का स्वाधीनता संग्राम भारतीय इतिहास का एक अत्यधिक महत्त्वशाली व गौरवपूर्ण अंग है। आज की पीढ़ी शायद सहसा यह विश्वास न करे परन्तु यह सत्य है कि जो त्याग, साहस, बलिदान, आदर्श एवं वीरता स्वाधीनता संग्राम में जनमानस ने दिखायी वह अतुलनीय है। भारत में स्वाधीनता का प्रथम प्रयास 1857 में होता है तथा 20वीं सदी आते-आते यह एक आन्दोलन में परिवर्तित हो जाता है।[1]

स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए देशवासियों ने कई आन्दोलन किये जिनकी अन्तिम महत्त्वपूर्ण कड़ी 'भारत छोड़ो आन्दोलन 1942' का है। यह वह चिंगारी थी जिसका प्राकृतिक रूप से विस्फोट हुआ था। 8 अगस्त 1942 के सुप्त रात्रि भारत के लिए एक आन्दोलन का सन्देश लेकर आयी। 'करो या मरो' का मन्त्र देश के सामने रखकर महात्मा गाँधी तथा कांग्रेस कार्यसमिति के सदस्य जेल जा चुके थे[2] और देश की जनता को इस शब्द का स्पष्ट व्याख्या नहीं मिला कि 'क्या करो' एवं 'कैसे मरो'। इस आन्दोलन ने ब्रिटिश भारत के इतिहास में ऐसी भयंकर सामूहिक उथल-पुथल पैदा की कि ब्रिटिश साम्राज्य अन्दर से हिल गया।

भारत छोड़ो आन्दोलन वैसे तो सम्पूर्ण भारत में फैला था परन्तु पूर्वी उत्तर प्रदेश में इसकी चिंगारी कम न थी। पूर्वी उत्तर प्रदेश जहाँ के लोग 1942 के आन्दोलन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। बिहार व उत्तर प्रदेश में तो विद्रोह जैसा माहौल बन गया था। अगस्त के मध्य तक विद्यार्थियों तथा अन्य राजनीतिक कार्यकर्ताओं के जरिए आन्दोलन की खबर गाँवों में पहुँचने लगी। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के छात्रों ने 'भारत छोड़ो' का सन्देश फैलाने के लिए गाँवों में जाने का फैसला किया।[3] उनके नारे थे- 'थाना जलाओ', 'स्टेशन फूँक दो', 'अंग्रेज भाग गया' इत्यादि। उन्होंने रेलगाड़ियों पर राष्ट्रीय ध्वज भी फहराया।

इस आन्दोलन में पूर्वी उत्तर प्रदेश के देवरिया जिले के छात्र, किसान व मजदूरों का योगदान

*शोध छात्र, इतिहास विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

कम न रहा। हालाँकि देवरिया उस समय गोरखपुर का ही अंग था। 16 मार्च 1946 को यह गोरखपुर से अलग हुआ। देवरिया जिला प्राचीन काल में कोसल राज्य का एक भाग था। 'भारत छोड़ो आन्दोलन' में देवरिया के जनमानस ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। देवरिया सदर, खुखुन्दू, गौरीबाजार, बरहज बाजार इत्यादि क्षेत्र 1942 के आन्दोलन से प्रभावित रहे।

देवरिया के गौरीबाजार में गौरा नाला पर बने पुल को ध्वस्त करने का प्रयास किया गया। 23 अगस्त 1942 को टेलीफोन का तार भी काटा गया तथा यह भी खबर मिलती है कि 300 लोगों ने मिलकर पटरियाँ भी उखाड़ी थी।[4] बरहज में भी विश्वनाथ तिवारी एवं जगन्नाथ मल्ल ने जुलूस निकाले। खुखुन्दू में भी आन्दोलन का प्रभाव रहा। श्री बद्री मिश्र ने यहाँ से आन्दोलन का नेतृत्व किया। देवरिया में बहुत घटनाएँ घटित हुईं परन्तु उनमें देवरिया के छात्र रामचन्द्र विद्यार्थी का नाम सर्वोपरि है।

देवरिया के कसया मार्ग पर 25 किमी. की दूरी पर नौतन हथियागढ़ के रहने वाले रामचन्द्र विद्यार्थी का जन्म 1 अप्रैल 1929 को एक कुम्हार बाबूलाल प्रजापति के घर में हुआ था। वह बचपन से ही होनहार थे। भारत छोड़ो आन्दोलन के समय वह बसन्तपुर धुमी स्थित खादी ग्रामोद्योग मिडिल पाठशाला का सातवीं का छात्र था। 9 अगस्त 1942 को शुरू हुए तमाम आन्दोलनों से प्रेरित होकर 14 अगस्त 1942 को अपने विद्यालय को बन्द करवाकर 15 छात्रों के साथ देवरिया कचहरी की तरफ एक जुलूस 'भारत माता की जय', 'महात्मा गाँधी की जय' एवं 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' के बुलन्द नारों के साथ बढ़ रहा था। भारत छोड़ो आन्दोलन के व्यापक रूप में भड़क जाने के कारण हर जगह धारा 144 लागू थी। रेलवे स्टेशनों, कचहरी एवं पुलिस थानों के पास जाने पर सख्त पाबन्दी थी।

इस तनावपूर्ण माहौल में रामचन्द्र अपने सहपाठियों के साथ पुलिस की आँखों से बचकर कचहरी पहुँचा तथा उन्होंने अंग्रेजों के झण्डे जो कचहरी पर लगा था, उतारने लगे परन्तु रामचन्द्र की लम्बाई कम थी अत: सभी छात्रों ने पिरामिड बनाकर बालक रामचन्द्र को उस पर चढ़ाया और बालक रामचन्द्र ने अंग्रेजों के झण्डे को फाड़ दिया तथा अपना झण्डा फहराकर जोर-जोर से 'भारत माता की जय', 'इंकलाब जिन्दाबाद' तथा 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' का नारा देने लगे।[5] अब यह छात्र अंग्रेजों की नजरों से बच नहीं पाये। आश्चर्यचकित अधिकारी पुलिस कप्तान उमराव सिंह ने अपने जवानों को गोली चलाने का आदेश दिया। अंग्रेजी की गोली के शिकार सर्वप्रथम रामचन्द्र हुए, वह घटनास्थल पर शहीद हो गये। गोलियों की आवाज सुनकर देखते ही देखते विशाल भीड़ एकत्रित होने लगी तथा उग्र भीड़ ने पुलिस पर पथराव करना शुरू कर दिया।[6] स्थिति को भयावह देख पुलिस वहाँ से भाग निकली। देवरिया के जिलाधीश आई.यू. अलेक्जेण्डर भागकर गोरखपुर आ गये। कक्षा सात में पढ़ने वाले इस छात्र की शहादत अमर है। उसने यह दिखा दिया कि स्वतन्त्रता प्राप्ति की ललक हर उम्र के भारतीयों के अन्दर किस सीमा तक विद्यमान थी और वह उसके लिए कुछ भी

करने के लिए सदैव तत्पर रहते थे।

इस प्रकार शहीद रामचन्द्र की अमर शहादत ने गोरखपुर जनपद के छात्रों को अत्यधिक उत्साहित किया और वे अधिक से अधिक संख्या में आन्दोलन में भाग लेने को तत्पर हो गये। चारों ओर छात्र बड़े उत्साह से 'भारत छोड़ो आन्दालन' को सफल बनाने में जुट गये। जगह-जगह रेल की पटरियाँ एवं टेलीफोन के तारों को काटा गया। यातायात में व्यवधान का हर सम्भव प्रयास किया गया।

इस नन्हें बालक शहीद की स्मृति को सम्मान देने हेतु घटना के 40 वर्षों के बड़े अन्तराल के बाद 1982 में देवरिया में स्थित शहीद रामचन्द्र इण्टर कॉलेज के प्रांगण में उनकी एक मूर्ति स्थापित की गयी, जिसका अनावरण चौधरी चरणसिंह ने किया। तत्पश्चात् 1986 में देवरिया सदर स्थित घटनास्थल पर शहीद स्मारक का निर्माण किया गया जो आज भी विद्यमान है। इसके साथ ही अमर शहीद रामचन्द्र ने जिस विद्यालय से शिक्षा ली थी वहाँ आज भी प्रतिदिन प्रार्थना के समय उनकी याद में निम्न पंक्तियाँ पढ़ी जाती हैं[7]-

हम शहीद उस रामचन्द्र की याद करें कुर्बानी
भारत माता पर अर्पित जिसने की नई जवानी
श्रद्धा से इम पुष्प चढ़ाते हैं वीर बलिदानी
जुग जुग अमिट रहे तेरी मनमोहक अमर कहानी।

सन्दर्भ-सूची:

1. डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स, देवरिया (1988)
2. डिस्ट्रिट गजेटियर्स (1988)
3. दैनिक समाचार पत्र, आज, बनारस से प्रकाशित, 4 अगस्त, 1942, पृ. 3
4. दैनिक समाचार, संसार, बनारस से प्रकाशित. 9 अगस्त, 1942. पृ. 7
5. दैनिक अंग्रेजी समाचार पत्र, द टाइम्स ऑफ इण्डिया, लखनऊ से प्रकाशित, 13 अगस्त, 1942, पृ. 3
6. साप्ताहिक समाचार पत्र, जनवार्ता, गोरखपुर से प्रकाशित, 13 अगस्त, 1942. पृ. 2
7. रामसुभग नायक स्थानीय व्यक्ति से किए गए साक्षात्कार के आधार पर

सन् 1857 ई. के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में ग्राम पैना (जनपद देवरिया) का योगदान एवं संघर्ष का इतिहास

प्रो. डी.के. सिंह

पुण्य सलिला सरयू और सदानीरा के जल से अभिसिंचित राप्ती द्वारा प्रच्छालित जाग्रत देवरिया जनपद की अनेक विशेषताएँ हैं। यहाँ के कण-कण में साधना, चिंतन और आत्मबलिदान की कहानी छिपी है। इस भूमि के गौरव, उत्तरापथ के पौरुष प्रतीक मल्ल गणतंत्र की गाथा प्रातः-सान्ध्य समीर आज भी गाता है और आज भी इस जनपद का वासी अपने पूर्वजों की उस ध्वलकीर्ति का स्मरण कर नवचेतना का संचार करता है। इस भूमि का इतिहास सदा से एक सा उज्जवल, अनुकरणीय एवं कीर्तिमय रहा है। 16 मार्च, सन् 1946 ई. को देवरिया जिले का स्वतंत्र इकाई के रूप में उदय हुआ। यहाँ के राजवंश और सर्वसाधारण जनता दोनों ने ही अपनी स्वतंत्रता तथा आत्म सम्मान की रक्षा में अपना सर्वस्व होम किया है।

पूर्वी उत्तर प्रदेश के आधुनिक युग का इतिहास अवध के नवाब के आधिपत्य से प्रारम्भ होता है।[1] मुगलों के समय शक्तिशाली स्थानीय राजा के अभाव में यहाँ राजनीतिक अराजकता उत्पन्न हो गई थी। फलस्वरूप सन् 1801 ई. तक यह भूभाग अंग्रेजों के आधिपत्य में चला गया। भारतवर्ष के इतिहास में सन् 1857 ई. वह साल है, जिसके सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है, कि भारतीय जनमानस में देश भक्ति की भावना का उदय होने लगा था।[2] जिस समय अंग्रेज भारत आये थे, इस प्रकार की देशभक्ति का कहीं अता-पता नहीं था। सन् 1857 ई. की क्रान्ति को एक तरह से जनक्रान्ति कहा जा सकता है। सन् 1857 ई. के विद्रोह के 5 मुख्य कारण बताये जाते हैं-

1. अवध के नवाब और अवध की प्रजा के साथ अत्याचार।
2. डलहौजी की अपहरण नीति।
3. दिल्ली सम्राट के साथ अंग्रेजों का अनुचित व्यवहार।
4. अंतिम पेशवा बाजीराव के दत्तक पुत्र नाना साहेब के साथ कम्पनी का अन्याय।

*पूर्व अध्यक्ष-प्राणि विज्ञान विभाग, पूर्व समन्वयक-पर्यावरण विज्ञान, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर-273009

5. भारतवासियों को ईसाई बनाने की आकांक्षा।

यद्यपि 1856 ई. के मार्च तक ब्रिटिश सत्ता भारत में पूर्ण विकास को पहुँच चुकी थी, फिर भी जीते हुये राज्यों में 1856 ई. के पूर्व कोई विद्रोह नहीं हुआ, ऐसा कहना गलत होगा। 1764 ई. में बंगाल की सेना में विद्रोह, 1794 ई. में विजयनगर के राजा द्वारा विद्रोह, 1795 ई. में कलकत्ता में अन्य सिपाही विद्रोह, 1805 ई. में दीवान वेल्लुताम्पी का विद्रोह, 1806 ई. में वेल्लूर में विद्रोह, 1817 ई. से 1819 ई. में भील विद्रोह, 1822 ई. में समोसी विद्रोह, 1824 ई. में बैरकपुर में 17वें रेजीमेंट के सिपाहियों का विद्रोह, 1825 ई. में उत्तर बंगाल में पागलपंथी विद्रोह, 1828 ई. में असम के अहोम लोगों का विद्रोह, 1830 ई. से 1860 ई. वहाबी आंदोलन, 1830 ई. में ब्रह्मपुत्र घाटी के सिल्हट में खासी विद्रोह, 1831 ई. में कच्छ और काठियावाड़ में विद्रोह, 1831 ई. में कोलों का विद्रोह, 1837 ई. में छोटा नागपुर के आदिवासियों का विद्रोह, 1844 ई. में सूरत नमक आंदोलन एवं 1844 ई. में कोल्हापुर सामंतवादी विद्रोह आदि उपर्युक्त कथन के स्पष्ट प्रमाण हैं। इन विद्रोहों की तरंग 1857 ई. तक जनक्रान्ति के रूप में परिलक्षित होने लगीं।

देश के विभिन्न भागों में 1857 ई. से 1858 ई. के मध्य अंग्रेजों के विरुद्ध जगह-जगह सैनिक विद्रोह हुये। कुछ प्रमुख सैनिक विद्रोह– 02 फरवरी, 1857 ई. को ब्रह्मपुर में सेना की 19वीं टुकड़ी का विद्रोह, 10 मई, 1857 ई. को मेरठ में सिपाहियों का विद्रोह, 11 से 30 मई 1857 ई. को दिल्ली, फिरोजपुर, बम्बई, अलीगढ़, इटावा, बुलन्दशहर, नासिराबाद, बरेली, मुरादाबाद, शाहजहाँपुर शहरों में विद्रोह, 31 मई, 1857 ई. को गोरखपुर में विद्रोह, जून 1857 ई. में ग्वालियर, भरतपुर, झाँसी, इलाहाबाद, फैजाबाद, सुल्तानपुर, लखनऊ, बिहार के समतल मैदानों, मध्यभारत व बंगाल के कुछ हिस्सों में सेना द्वारा विद्रोह, जुलाई 1857 ई. में इन्दौर, सागर व पंजाब के झेलम, स्यालकोट में विद्रोह, अगस्त 1857 ई. में नर्मदा व सागर जिलों में विद्रोह, सितम्बर 1857 ई. में मध्य भारत में विद्रोह का दूसरा दौर, अक्टूबर 1857 ई. में कोटा राज्य में विद्रोह, नवम्बर 1857 ई. में कानपुर का विद्रोह आदि थे। जुलाई 1858 ई. से दिसम्बर 1858 ई. तक भारत पर अंग्रेजों का दोबारा वर्चस्व कायम हो गया। इसका मुख्य कारण था– सैनिक विद्रोहों में ताल-मेल का अभाव। जिस कारण अंग्रेजों का पुनः हिन्दुस्तान पर आधिपत्य कायम हो गया।

तत्कालीन पूर्वी उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिला, जिसमें आज के देवरिया, कुशीनगर, बस्ती, सिद्धार्थनगर, संतकबीर नगर, महराजगंज, मऊ, गाजीपुर और आजमगढ़ शामिल जिले थे।[3] बिहार के भोजपुर जिले के जगदीशपुर गांव में 1782 ई. में अपने रणकौशल से अंग्रेजों को परास्त करने वाले वीर बाबू कुंवर सिंह का जन्म हुआ था, जो राजा भोज के वंशज थे। बाबू कुंवर सिंह एक ऐसे स्वतंत्रता सेनानी थे, जिन्होंने बिहार से लेकर उत्तर प्रदेश के बांदा, कानपुर, लखनऊ, आजमगढ़, बनारस, बलिया, गाजीपुर एवं गोरखपुर में क्रान्ति के नगाड़े बजाये।[4] परन्तु किसी भी लड़ाई में वे

परास्त नहीं हुये। अपने सफेद घोड़े पर सवार होकर जब अस्सी वर्षीय कुंवर सिंह लड़ाई के मैदान में कूदते थे तो शत्रुओं से जम कर टक्कर लेते हुये वे युवकों को भी मात देते थे। उन्होंने अपने चचेरे भाई हरिकृष्ण सिंह और उनकी सेना को गोरखपुर जनपद में अंग्रेजों से लोहा लेने के लिए भेजा था।

सन् 1857 ई. के स्वतंत्रता संग्राम की क्रान्ति सर्वप्रथम बरहज तहसील के पैना ग्राम से शुरू हुई। 'भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम बाबू कुंवर सिंह और पूर्वी उत्तर प्रदेश' पुस्तक के लेखक डॉ. कन्हैया सिंह द्वारा ऐतिहासिक दस्तावेजों से जुटाये गये तथ्यों के अनुसार 31 मई, 1857 ई. को गोरखपुर जनपद के पैना के जमींदार ठाकुर सिंह के नेतृत्व में अंग्रेजी शासन के विरोध में नदी यातायात को बंद कर पटना-गोरखपुर-आजमगढ़ मार्ग को अवरूद्ध कर दिया गया। घाटों पर कब्जा कर लिया गया और सरकारी नाव को लूट कर खज़ाना जो आजमगढ़ जाने वाला था, को अपने कब्जे में कर लिया गया। गोरखपुर जनपद की इस क्रान्ति को हिस्सों में बांट कर नहीं देखा जा सकता। इस क्रान्ति में जनपद के विभिन्न स्थानों से विद्रोह की ज्वाला उत्पन्न हुई, जिसमें मुख्यत: अमर शहीद ठाकुर सिंह-जमींदार ग्राम पैना, अमर शहीद राजा हरिप्रसाद सिंह-नरहरपुर बड़हलगंज, अमर शहीद बन्धू सिंह-जमींदार डुमरी रियासत, अमर शहीद उदित प्रताप नारायण सिंह-राजा सतासी, अमर शहीद हरिकृष्ण सिंह-कुंवर सिंह के चचेरे भाई, नायब नाजिम मुसर्रफ खाँ-गोरखपुर, चिल्लूपार एवं पांडेपार के तत्कालीन जमींदारों आदि ने समन्वित एवं समेकित नेतृत्व किया था।

स्वतन्त्रता संग्राम (1857 ई.) से सम्बन्धित ग्राम पैना की महागाथा (तिथिवार)

31 मई, 1857 ई. :

क्रान्ति का आरम्भ 31 मई, 1857 ई. को हुआ। राष्ट्रीय योजना के अनुरूप सम्राट बहादुर शाह के झंडे के नीचे गोरखपुर जनपद में पैना के जमींदारों ने 31 मई, 1857 ई. को ईस्ट इण्डिया कम्पनी के विरुद्ध विद्रोह की घोषणा कर अवध के नवाब के साथ होने का ऐलान कर दिया। पैना के निवासियों ने नदी यातायात को बंद कर पटना-गोरखपुर-आजमगढ़ मार्ग को अवरूद्ध कर घाट पर कब्ज़ा कर लिया।

06 जून, 1857 ई. :

02 जून, 1857 ई. को पैना के ठाकुर सिंह और राजा हरिप्रसाद सिंह के बीच मीटिंग के उपरांत नरहरपुर के राजा भी इस अभियान में अपने पूरे सैन्यबल के साथ सम्मिलित हो गये और 06 जून, 1857 ई. को उन्होंने बड़हलगंज के पास घाघरा घाट पर कब्जा कर यातायात पूर्ण रूप से बंद कर दिया और बड़हलगंज को अपने आधिपत्य में लेकर चौकी स्थापित कर दी।

इसी क्रम में डुमरी रियासत के बाबू बन्धु सिंह ने योजनाबद्ध ढ़ंग से अंग्रेज अफसरों की

देख-रेख में बिहार से लाये जा रहे सरकारी खज़ाने को लूट लिया और अकाल पीड़ितों में वितरित कर दिया। इन्होंने इस क्षेत्र की दो प्रमुख नदियों घाघरा तथा गण्डक पर कब्जा कर अंग्रेजों के आवागमन को अवरूद्ध कर दिया। तत्पश्चात् अंग्रेजों ने डुमरी रियासत पर आक्रमण कर बन्धू सिंह के चार भाईयों को मार दिया और इनकी हवेली में आग लगा दिया। जनश्रुति के अनुसार तरकुलहा देवी के मंदिर में इन्होंने देवी का पिण्ड स्थापित किया, जहाँ पर वे अंग्रेजों के सिर की बलि देते थे। 12 अगस्त, 1858 ई. को धोखे मे मुखबिरी के आधार पर इन्हें पकड़कर गोरखपुर शहर के अलीनगर चौराहे पर फाँसी पर लटका दिया गया था।

20 जून, 1857 ई. :

कम्पनी ने 20 जून, 1857 ई. को कमिश्नरी में मार्शल लॉ घोषित कर दिया।

26 जुलाई, 1857 ई. :

26 जुलाई, 1857 ई. को कम्पनी के सिंगौली रेजिमेंट में विद्रोही सैनिकों ने मेजर होम्स को मार डाला और अफीम की कोठी को लूट लिया।

अवध के नवाब चकलेदार मोहम्मद हुसैन और सतासी राज के पूर्व मैनेजर मुसर्रफ खाँ ने गोरखपुर पर कब्जा कर लिया तथा अपने को गोरखपुर का नाज़िम घोषित कर स्वतंत्रता की घोषणा कर दी।

पैना, नरहरपुर, सतासी, पांडेपार, चिल्लूपार, डुमरी रियासत के विद्रोही सैनिक और गढ़ों के नेताओं की गुप्त बैठकें हुआ करती थीं और अगली योजना पर कार्यवाही निश्चित की जाती थीं। जनपद के दक्षिण पूर्व में तीन सैन्यगढ़ नरहरपुर, पैना, सतासी अविच्छिन्न रूप से जुड़े थे।

ग्राम पैना पर आक्रमण, 31 जुलाई, 1857 ई. :

ग्राम पैना गोरखपुर जनपद का एक प्रमुख सैनिक गढ़ था। ठाकुर सिंह, अजराइल सिंह और धज्जू सिंह तीन सगे भाईयों ने युद्ध में विशेष योगदान दिया। इसके प्रमुख अमर शहीद ठाकुर सिंह थे और उन्हीं के नेतृत्व में युद्ध लड़ा गया था। अजराइल सिंह सेना के रसद और शस्त्र की व्यवस्था करते थे। धज्जू सिंह सेना में सैनिकों की भर्ती को देखते थे। सरकारी आंकड़ों के अनुसार 1857 ई. में यहाँ की आबादी 5,331 थी। जिसमें 600 से अधिक सशस्त्र सैनिक हमेशा रहते थे और ठाकुर सिंह की सेना के नाम से प्रसिद्ध थे। यदि औसत रूप से 5 व्यक्तियों का एक परिवार हो तो गाँव में एक हजार परिवार थे और लगभग हर परिवार से एक व्यक्ति सैनिक था। वर्तमान् में पैना ग्राम की आबादी सरकारी आंकड़ों के अनुसार 10 से 12 हजार है, अर्थात् 31 जुलाई 1857 ई. के युद्ध में सरकारी आंकड़ों के अनुसार वीरगति को प्राप्त हुये लगभग 395 सैनिकों में से अधिकांश की वंश

परम्परा ही समाप्त हो गई।

पैना ग्राम विगत दो माह से ब्रितानिया शासन के खुले विद्रोह में था, फलस्वरूप 31 जुलाई, 1857 ई. को इस ग्राम पर थल और जल दोनों तरफ से अंग्रेजों का आक्रमण हुआ। तुलनात्मक रूप से अंग्रेजी सेना पर्याप्त रूप से अधिक बलशाली एवं संख्या में अधिक थी। उसके बावजूद भी यहाँ से तीव्र प्रतिरोध में भीषण प्रत्याक्रमण के कारण राष्ट्रद्रोही सैनिक अधिक संख्या में हताहत हुये। उसी दिन सिख सेना के प्रमुख ले. पुल्लन, ब्रिगेडियर डगलस एवं कर्नल रूक्राफ्ट की सारन कालम तथा राणा जंगबहादुर की गोरखा पल्टन ने ग्राम पैना पर उत्तर दिशा से आक्रमण किया। सरयू नदी में होरंगोटा स्टीमर के माध्यम से तीन कि.मी. दूर से ही गाँव के विभिन्न भागों पर गोलाबारी की गई। परिणामस्वरूप गाँव को काफी क्षति हुई और कुल 395 नर-नारी या तो शहीद हो गये, या जौहर कर लिया।

13 अगस्त, 1857 ई. :

13 अगस्त, 1857 ई. को सभी यूरोपीय नागरिक, प्रशासनिक एवं फौजी अधिकारी खज़ाने के साथ गोरखा सैनिकों के संरक्षण में गोरखपुर से प्रस्थान कर 22 अगस्त, 1857 ई. को आजमगढ़ पहुँचे। जिला मुख्यालय छोड़ने के पहले कमिश्नर विन्यार्ड ने सभी स्थापन्न शासन पाँच राजाओं बाँसी, गोपालपुर, सतासी, तमकुही और मझौली की पंचायत को सौंप दिया था।

06 सितम्बर, 1857 ई. :

अवध के नवाब ने 06 सितम्बर, 1857 ई. को मोहम्मद हुसैन को गोरखपुर का नाज़िम घोषित कर दिया जो पूरे गोरखपुर की प्रशासनिक व्यवस्था में लग गये।

मझौली का युद्ध, 26 दिसम्बर, 1857 ई. :

विद्रोही और आक्रमणकारी फौजों के साथ सोहनपुर मझौली में कर्नल रूक्राफ्ट, महाराजा जंगबहादुर की गोरखा फौज एवं सैमुअल कमिश्नर की फौज बीच भीषण युद्ध हुआ।

विद्रोही मोर्चे में कुंवर सिंह के चचेरे भाई हरिकृष्ण सिंह और पैना के ठाकुर सिंह तथा पल्टन सिंह के नेतृत्व में राजा सतासी, डुमरी के बन्धू सिंह तथा गहमर के मेघन सिंह और नाज़िम मोहम्मद हुसैन की सेना शामिल थी। अर्थात् पूरे गोरखपुर मंडल के सभी क्रान्तिकारियों ने मिलकर यह युद्ध लड़ा। जिसमें लगभग 6 से 7 हजार सैनिक थे। यह युद्ध 10 बजे से डेढ़ बजे दिन तक चला। जिसमें 120 सैनिक वीरगति को प्राप्त हुये। ठाकुर सिंह, अजराइल सिंह एवं पल्टन सिंह इस युद्ध में शहीद हो गये। धज्जू सिंह युद्ध में हार से दुःखी होकर कहीं चले गये और फिर लौटे नहीं। धज्जू सिंह को अंग्रेज कभी पकड़ नहीं पाये और उनको फांसी की सजा होने के बावजूद उन्हें फांसी भी नहीं दे

पाये। राजा हरिप्रसाद सिंह अन्त में अपने प्रिय हाथी जयमंगल पर सवार होकर कहीं चले गये और कभी वापस नहीं लौटे। राजा सतासी, उदित प्रताप नारायण सिंह को अण्डमान भेज कर उन्हें फाँसी दे दी गई और उनकी रियासत ज़ब्त कर ली गई।

13 मार्च, 1858 ई. :

13 मार्च, 1858 ई. को मुकदमें में कायम पैना के सभी जमींदारों की जायदाद ज़ब्त कर ली गई और 19/23 अगस्त, 1858 ई. को पैना के इलाके को राजा मझौली उदय नारायण मल्ल को गद्दारी के लिये ईनाम में दे दिया गया।

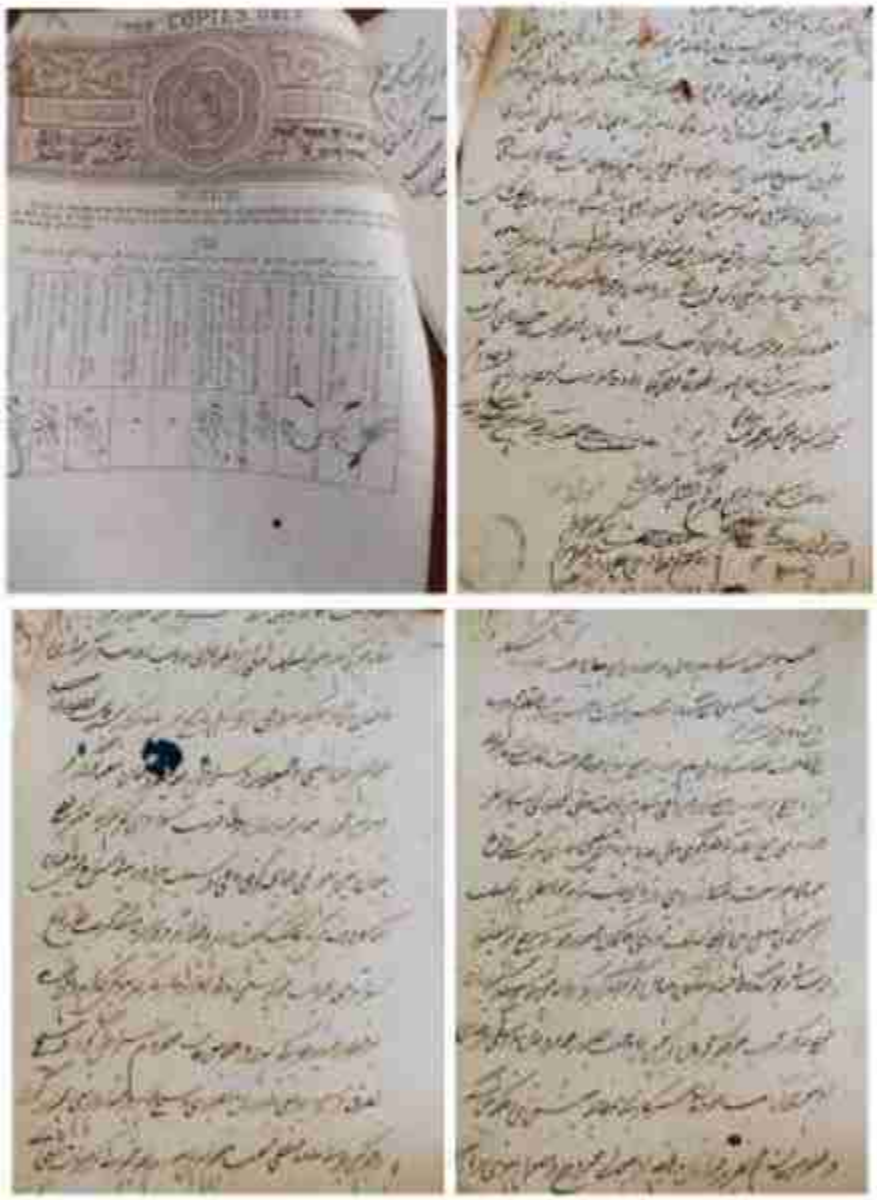

पैना से सम्बन्धित म्यूटिनी ..... से 1857 से 1855 ..... में क्रान्तिकारियों के विरुद्ध चलाए गए मुकदमें की प्रति एवं जमानत जब्दी के आदेश

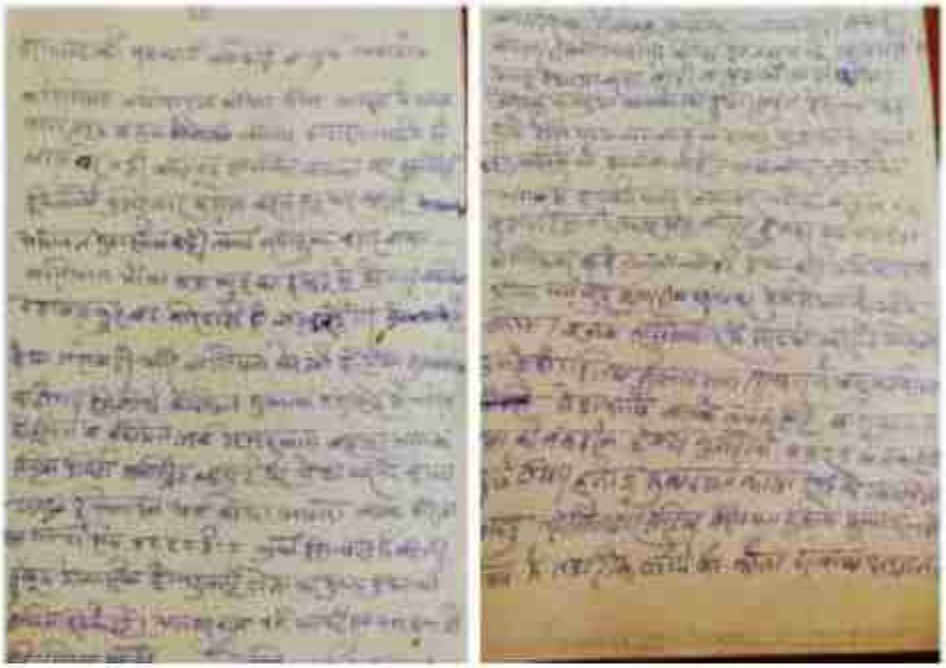

अमर शहीद ठाकुर सिंह, अजराइल सिंह एवं धज्जू सिंह का पैतृक निवास (वर्तमान में)

सन् 1857 ई. में देश की आन पर अपनी आहुति देने वाले तत्कालीन गोरखपुर जनपद में सबसे आगे वर्तमान देवरिया जनपद के पैना के जमींदार लोग थे।[5] यहाँ के स्वतंत्रताप्रिय निवासियों ने प्राणों की बाजी लगाकर मातृभूमि को विदेशियों के चंगुल से छुड़ाने की कोशिश में कोई कसर नहीं रखा। हजारों शहीद हुये, अनेकों घर जले, सम्पत्तियाँ जब्त की गई, फांसियाँ दी गई और महिलाओं ने जौहर तथा जल समाधि ली। राजस्थान में जौहर करने वाली वीरांगनाओं की गाथा के क्रम में पूरे उत्तर प्रदेश में 85 महिलाओं द्वारा जौहर और उफनती नदी के आगोश में जल समाधि – यह केवल पैना की वीरांगनाओं ने ही किया। आज भी इनकी स्मृति में सरयू तट पर बने सती माता के मंदिर इसके साक्षात् प्रमाण हैं। यह स्थान 'सतिहड़ा' के नाम से प्रसिद्ध है।[6] स्थानीय गाँवों के लोग परिवार में किसी भी शुभ कार्य को करने से पहले सर्वप्रथम सती माता की आराधना करते हैं। सतासी राजा उदित प्रताप नारायण सिंह अण्डमान भेजे गये। उनके तीन हजार आठ सौ गावों की रियासत जब्त हुई। नरहरपुर के राजा हरिप्रसाद सिंह के महल को अंग्रेजों ने तोपों से उड़ा दिया और उनकी सारी सम्पत्ति जब्त कर ली। अहिरौली निवासी श्री नारायण दयाल के छः गांव छीन लिये गये और उन्हें फांसी दे दी गई। हाटा निवासी सर्वश्री सद्दू खां, मकदूम बक्श, ताराउ खां, चैन खां और मंसूर खां की सम्पत्ति जब्त कर ली गई। तेजई मल्ल से छः गांव छीन लिये गये। पडरौना क्षेत्र के दुबरी राय, रघुपति राय के छियासी गांव, पैना के दीन दयाल के 19 गांव, रामकोला के सोमनाथ, गोविंद राव के आठ गांव जब्त कर लिये गये।

सामूहिक नरसंहार एवं 164 वर्षों के लम्बे अन्तराल के कारण पूर्वी उत्तर प्रदेश के ग्राम पैना

एवं सतासी रियासत के सभी शहीदों के नाम देना संभव नहीं हो पाया है। जो अब तक ज्ञात हो पाये हैं, अधोलिखित हैं -

1. लच्छन सिंह, 2. पल्टन सिंह, 3. गुरूदयाल सिंह, 4. धज्जू सिंह, 5. करिया सिंह, 6. तिलक सिंह, 7. बिजाधर सिंह, 8. विशेशर सिंहा, 9. फेंकू सिंह-पैना, 10. सिजोर सिंह-पैना 11. दीनदयाल सिंह, 12. बसावन सिंह, 13. शिवलाल सिंह, 14. राम किंकर सिंह, 15. सालिग्राम सिंह, 16. शिवव्रत सिंह, 17. देवी दयाल सिंह, 18. डोमन सिंह, 19. भोंदू राम, 20. सर्फराज अली, 21. उमराव मियां, 22. शीतल सिंह, 23. वेनी माधव सिंह, 24. अनमोल सिंह, 25. राम दरश सिंह, 26. गती सिंह, 27. राम जनक सिंह, 28. रतना-सती, 29. सुदामा कुंवरी-सती, 30. बसन्ता-सती, 31. राधिका-सती, 32. अमीना-सती, 33. बउधा-सती, 34. डोमना-सती, 35. जतन सिंह, 36. राम प्रसाद सिंह, 37. इन्द्रजीत सिंह-सतासी, 38. उदित प्रताप नारायण सिंह, राजा सतासी, 39. नायब नाजिम मुसर्रफ खां, 40. हरि प्रसाद सिंह, राजा नरहरपुर, 41. हरि कृष्ण सिंह (कुंवर सिंह के चचेरे भाई)।

सन् 1857 ई. की महाक्रान्ति के समय यूरोपीय अधिकारीगण जिनके चार्ज में जनपद गोरखपुर था, वे निम्नवत् हैं-

1.	श्री डब्लू पैटर्सन	-	जिला मजिस्ट्रेट
2.	श्री डब्लू विन्यार्ड	-	जज जिन्हें शीघ्र स्थानापन्न कमिश्नर गोरखपुर का अधिकार भी प्राप्त हो गया, जिसका अनुमोदन कमिश्नर वाराणसी श्री टक्कर ने कर दिया था।
3.	श्री एफ. बर्ड	-	संयुक्त मजिस्ट्रेट
4.	कैप्टन स्टील	-	17वीं सेना के प्रमुख अधिकारी, जिसमें ढ़ाई कम्पनी 17वीं सेना और आधी रिसाला 12वीं घुड़सवार सेना (कैवेलरी) थी।

सन् 1857 ई. के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के मूल्यांकन के बारे में मेरे पिता स्व. अनिरूद्ध सिंह का कथन सर्वथा उचित है -

"स्वाधीनता प्राप्ति के लिए किये गये सभी प्रयासों का मूल्यांकन इस तरह नहीं किया जाना चाहिए कि, इसमें सफलता मिली या नहीं। इनका आंकलन इस आधार पर किया जाना चाहिए कि, ऐसे प्रयासों से हमने क्या प्राप्त किया? 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम से स्वाधीनता की वह आकांक्षा भारतीय जनमानस में उत्पन्न हुई, जो ब्रिटिश हुकूमत की तमाम दमनकारी नीतियों के बावजूद दबी नहीं बल्कि, बलिदानी लहू से सजती संवरती अपने उद्देश्य तक पहुँच गई।"[7]

संदर्भः

1. स्वतंत्रता युद्ध : उत्तर प्रदेश में भाग 4, 1857–1859 (हिन्दी संस्करण सूचना विभाग, उ.प्र., पृ. 43
2. फ्रीडम स्ट्रगल इन यू.पी. : सूचना विभाग, उ.प्र. भाग 4, 1857–1859, पृ. 57
3. लाल सुन्दर, भारत में अंग्रेजी राज, प्रभात पेपर बैक प्रकाशन, नई दिल्ली, 1983, पृ. 53
4. सिंह, ठाकुर लाल, स्वतंत्रता संग्राम के सैनिक (संक्षिप्त परिचय), कमला पब्लिकेशन, लखनऊ, 1987, पृ. 113
5. मिश्र, केशव चन्द्र, अतीत के गर्भ से देवरिया जनपद की ऐतिहासिक थाती, वृन्दा कुक पब्लिकेशन, कानपुर, 1983, पृ. 63
6. सिंह, कन्हैया, भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम (बाबू कुँवर सिंह और पूर्वी उत्तर प्रदेश), भारत भवन पब्लिकेशन, लखनऊ, 1993, पृ. 109
7. सिंह, अनिरुद्ध, 1857 ई. के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में ग्राम पैना, जनपद देवरिया का खूनी योगदान एवं संघर्ष का इतिहास, पी.के. पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्लीख 1999, पृ. 73

चौरी-चौरा : मात्र घटना नहीं

प्रो. हिमांशु चतुर्वेदी*

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन और स्वाधीनता हेतु भारतीयों का भागीरथ प्रयास अंतर्निहित इतिहास ही माने जा सकते हैं। इस सम्पूर्ण घटनाक्रम का चित्रफलक इतना व्यापक है कि वैश्विक इतिहास लेखन में भारतीय स्वाधीनता की गाथा सर्वाधिक लोकप्रिय है। यद्यपि कि विभिन्न प्रकार के इतिहास लेखन की प्रवृत्तियों ने स्वाधीनता की गाथा की जो पटकथा प्रस्तुत की, उसके फलस्वरूप देश की स्वाधीनता में जिन्होंने सर्वस्व न्यौछावर कर दिया उन्हें व उनकी भागीदारी को न्याय नहीं मिला। निश्चित ही इतिहास व इतिहासकार न्याय व न्यायाधीश की भूमिका में नहीं हो सकता, परंतु न्यायप्रिय होना उसका मौलिक धर्म है।

चौरी-चौरा को शायद इसी पथ की आवश्यकता है। यदि इस घटना के विभिन्न पक्षों को देखा जाए तो यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि यह एक ऐसी स्थानीय घटना थी जिसने राष्ट्रीय आंदोलन के इतिहास पर व्यापक प्रभाव डाले।

सन् 1857 ई. के प्रयास के पश्चात भारतीयों ने निरंतर अपनी मातृभूमि को मुक्त कराने हेतु, अनेकों आहुतियाँ दीं। साम्राज्यवादी इन शहीदों को अपने दस्तावेजों में उग्रवादी या भारतीय हत्यारा कहें तो अचंभा नहीं। पश्चिमी विद्या से उपजा भारतीय इतिहास लेखन इनके प्रयासों और समर्पण को अनदेखा करे तो उनकी ही दृष्टि और लेखनी में ऐसा क्यों? समझने की आवश्यकता है। उदाहरण स्वरूप इनके अनुसार जॉर्ज वाशिंगटन के साथ रहे क्रांतिकारी महान थे, परंतु भारतीय जन का मुखर प्रतिरोध आतंकवाद था। स्वतंत्रता उपरांत की मार्क्सवादी अवधारणा ऐसी शहादतों को व्यक्तिवादी नायकवाद कहते हुए आगे बढ़ जाएँ और उपाश्रयी इतिहास लेखन इन घटनाओं को जातिगत विभाजन कर भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के कैंब्रिज स्कूल की विचारधारा को संतुष्ट कर जाएँ, वस्तुतः चौरी-चौरा और ऐसी अन्यान्य घटनाएँ इस हेतु अभिशप्त हैं।

चौरी-चौरा को यदि राष्ट्रीय फलक पर समझना है तो जलियांवाला बाग जाना होगा। एक तथाकथित सुसंस्कृत राष्ट्र ने निहत्थे भारतीयों का कत्लेआम किया। जनाक्रोश राष्ट्रीय हुआ और

*सदस्य, भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली

असहयोग आंदोलन को इसके कारण आधार मिला। चौरी-चौरा का आक्रोश जलियांवाला बाग की घटना का प्रत्युत्तर था, परन्तु दुर्भाग्यवश घटना ने असहयोग आंदोलन को ही समाप्त कर दिया। विवेचना का प्रश्न है कि यह दुर्भाग्यवश था या एक सिद्धान्त की अवसरवादिता। समकालीन प्रतिक्रिया जो हुई, शायद, उसने चौरी-चौरा की घटना के इतिहास लेखन को प्रभावित किया। बारदोली प्रस्ताव के पूर्व ही गोरखपुर खिलाफत कांग्रेस समिति ने चौरी-चौरा पर निंदा प्रस्ताव पारित करते हुए घटना मे स्वयं को असम्बद्ध किया। परंतु वास्तविकता यह थी कि घटना में अधिकांशतः असहयोग से जुड़े हुए स्वयंसेवक थे जो ग्रामीण अंचल पर मदिरा और मांस के बहिष्कार को आगे बढ़ा रहे थे। 1 फरवरी को ऐसे ही एक स्वयंसेवक भगवान अहीर की चौरी-चौरा के दरोगा गुप्तेश्वर सिंह के द्वारा पिटाई कर दी गई थी, क्योंकि वह बाजार में मांस की बिक्री का विरोध कर रहा था। अर्थात मूल रूप से गांधी जी के आह्वान पर चौरी-चौरा में यह असहयोग का एक रूप था। 3 फरवरी, 1922 ई. तक के इस घटनाक्रम को चौरी-चौरा का प्रथम समय खंड काल (First Time Line) माना जा सकता है।

चौरी-चौरा का द्वितीय समय खंड काल (Second Time line) 04 फरवरी, 1922 से प्रारंभ माना जा सकता है, जब स्वयंसेवकों के दल ने भगवान अहीर की पिटाई के खिलाफ थाने तक जुलूस ले जाने का कार्य किया। यह सर्वमान्य है कि जुलूस के स्वयंसेवक न ही किसी को मारने की योजना से गए थे और न ही थाना जलाने। घटनाक्रम कुछ जलियांवाला बाग की तरह ही हुआ। निहत्थों पर प्रशासन द्वारा पहले लाठीचार्ज किया गया, तत्पश्चात गोलीबारी। वाचिक इतिहास के तथ्यों से पता चलता है कि इस गोलीबारी में तीन स्वयंसेवक मारे गए, जिनका जिक्र सरकारी रिकार्डों में नहीं किया गया। तदुपरांत भीड़ उग्र हुई और चौरी-चौरा के थाने और सिपाहियों को जलाने की घटना घटी। परंतु उग्र हुए भारतीयों ने अपने विवेक का परिचय दिया और थानाध्यक्ष गुप्तेश्वर सिंह की गर्भवती पत्नी को सुरक्षित जाने का मार्ग दिया। घटना पर कांग्रेस और गांधी जी की प्रतिक्रिया सर्वविदित है। इसके अतिरिक्त यदि समकालीन समाचार पत्र-पत्रिकाओं में चौरी-चौरा की घटना पर प्रतिक्रिया देखी जाए तो वह भी घटना की आलोचना से परिपूर्ण है। उदाहरण के लिए 'आज' अखबार बुधवार 26 सौर माघ, संवत 1978 वै. ने शीर्षक 'गोरखपुर में भीषण उपद्रव' जनता पर गोली, थाने पर हमला, पुलिस कर्मचारियों की निर्मम हत्या'। 'अभ्युदय' साप्ताहिक पत्र 11 फरवरी, 1927, ने शीर्षक दिया 'खेदजनक और भीषण हत्याकांड- दो दरोगा और 15 कांस्टेबलों की हत्या'। 'द लीडर', 8 फरवरी, 1922 ने लिखा 'After Bombay Gorakhpur Orgy of Blood and Arson, Policemen Butchered and Burnt- organised attack on Police Station' इस खबर में घटना को सुनियोजित जामा पहना दिया गया। दिनांक 09 फरवरी के 'द लीडर' अखबार में एक और खबर छपी 'The Gorakhpur Tragedy- Graphic Account of Frightful Scene' 'आज' अखबार ने एक और शीर्षक से खबर लिखी- 'महात्मा गांधी, चौरी-चौरा ईश्वर की तीसरी चेतावनी' अर्थात चौरी-चौरा को एक भीषण

हत्याकांड के रूप में स्थापित कर दिया गया।

कांग्रेस की संगठन के रूप में प्रतिक्रिया, तत्कालीन समाचार पत्रों की प्रतिक्रिया और आश्चर्यजनक रूप से अन्तर्राष्ट्रीय मीडिया द्वारा चौरी-चौरा को जलियांवाला बाग से कहीं अधिक स्थान देना, इन सबने मिलकर चौरी-चौरा की घटना को चौरी-चौरा हत्याकांड की स्थानीय प्रस्तुति में स्थापित कर दिया।

चौरी-चौरा का तीसरा समय खंड काल (Third Time Line) गोरखपुर सत्र न्यायालय में दाखिल वाद से प्रारंभ माना जा सकता है। जिस समय चौरी-चौरा की घटना से जुड़े जनों के साथ न ही कांग्रेस संगठन के रूप में खड़ी थी, न ही अन्य कोई। आश्चर्य नहीं, क्योंकि कांग्रेस प्रारंभ से ही शहीदों की इस प्रवृत्ति के औपनिवेशिक विरोध का कभी पक्षधार नहीं रही थी, चापेकर बंधुओं की शहादत से, भगत सिंह की शहादत तक, उसने स्वयं को असम्बद्ध ही रखा। यहां पर उद्धृत करना आवश्यक है कि चापेकर बंधु के पक्ष में एकमात्र समकालीन समाचार पत्र 'काल' के संपादक एस.वी. परांजपे ने चापेकर बंधुओं के पक्ष में लिखा, परिणामस्वरूप परांजपे को कांग्रेस के अधिवेशनों में आने से दादा भाई नौरोजी द्वारा रोक दिया गया। 1960 के दशक में स्वतंत्रता आंदोलन की सभी ऐसी घटनाएं 1857 से 1946 तक जिसमें भारतीयों के प्रतिरोध का स्वर उग्र दिखता है, को इस इतिहास लेखन में कुछ विशेष श्रेणी के विद्वानों ने किस प्रकार परोसा, इस पर टिप्पणी आवश्यक नहीं लगती। इसी प्रस्तुति का दंश चौरी-चौरा ने भी झेला था।

चौरी-चौरा के इस तृतीय समय खंड काल में शहीदों के साथ भावनात्मक समर्थन और संगठनों का समर्थन नहीं दिखाई पड़ता। सत्र न्यायालय गोरखपुर से 172 भारतीयों को फांसी की सजा सुनाई गई।

इसके पश्चात प्रारंभ होता है चौरी-चौरा का चतुर्थ समय खंड काल (Fourth Time line) वह इसलिए कि 172 लोग फांसी नहीं चढ़े, शहादत की यह संख्या 19 ही रह गई। सत्र न्यायालय के निर्णय उपरांत एक व्यक्ति जो इन जनों के समर्थन में प्रत्यक्ष रूप से आते हैं, वह हैं बाबा राघव दास; मूलत: महाराष्ट्र के, संत के रूप में पूर्वांचल द्वारा अपनाए गए। शायद यही भारतीयता का मूल तत्व है, आप कहां के हैं इसका मायने नहीं, आप के कार्य एवं आप समाज के लिए समर्पित हैं तो भारतीय समाज आपको बिना किसी भेदभाव के स्वीकार करता है। बाबा राघव दास ने चौरी-चौरा के सत्र अदालत के निर्णय का खुला विरोध किया एवं चंदा एकत्रित कर महामना से संपर्क कर इलाहाबाद उच्च न्यायालय में वाद दाखिल कराया। महामना द्वारा चौरी-चौरा का मुकदमा लड़ा गया और 172 जनों को हुई फांसी की सजा को 19 जनों में उच्च न्यायालय ने परिवर्तित किया।

प्रश्न यह उठता है कि जिस प्रकार से औपनिवेशिक तंत्र कार्य करता था और चौरी-चौरा की घटना को लेकर बाबा राघवदास एवं महामना जैसे देशभक्त भी उसी प्रकार की प्रतिक्रिया करके मौन

रहते, जैसे अन्य के द्वारा की गई थी तो वस्तुत: आज चौरी-चौरा में इन शहीदों की सूची 19 की न होकर 172 की होती। इतिहास के इस सत्य और 'शायद' को चिन्हित कर पाना चौरी-चौरा के संदर्भ में लगभग असंभव है। समझने की आवश्यकता है कि चौरी-चौरा का कथानक किन स्तंभों पर खड़ा किया गया? उत्तर स्पष्ट है- अधिकांशत: इस प्रकार की घटनाएं भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के घटनाक्रम में आंदोलन की मर्यादा को क्षीण करने वाली घटनाओं के रूप में दर्शायी गयी हैं। क्या यह जलियांवाला बाग का प्रतिरोध नहीं था? क्या राष्ट्रीय आंदोलन का खंड काल जलियांवाला बाग से प्रारंभ हो चौरी-चौरा तक एक नया अध्याय नहीं लिख रहा था? आवश्यकता है इतिहास के इस क्रम को जोड़कर देखने की। जलियांवाला बाग एक तथाकथित सुसंस्कृत राज्य का हत्याकांड था और चौरी-चौरा उस तथाकथित सुसंस्कृत राज्य को प्रत्युत्तर। यदि 1922 की घटना न्यायिक और नैतिक अपराध की श्रेणी में मात्र इसलिए आती है कि यह अहिंसा के सिद्धांतों को एक सीमा के पश्चात अस्वीकार कर देती है क्योंकि यहां राज्य अपनी बर्बरता का निरंतर परिचय देता रहता है। यदि उच्च न्यायालय में महामना द्वारा किए गए तर्कों पर ध्यान केंद्रित किया जाए तो वह इसी तथ्य पर आधारित है कि स्वयंसेवक थाना जलाने अथवा हत्या के इरादे से नहीं आए थे अर्थात घटना इरादतन नहीं थी और जो घटना घटी उस में तत्कालीन जिला प्रशासन की महत्वपूर्ण भूमिका कारक तत्व थी।

अतिरिक्त इसके, यदि हिंसा का मुद्दा इतना महत्वपूर्ण सिद्धांत था तो आजाद हिंद फौज के मुकदमे में भारतीयों के बचाव में वे लोग क्यों अत्यंत तत्पर हो गए जो हिंसा के पुरजोर विरोधी थे और नेता जी की भूमिका एवं वैचारिकी से असहमत थे। उत्तर है देश का ज्वार और नेता जी एवं आजाद हिंद फौज की लोकप्रियता जो कि शीघ्र ही स्वतंत्र देश की राजनीतिक स्थितियों पर अपना प्रभाव छोड़ सकती थी।

अत: आवश्यकता है चौरी-चौरा को उसके खंड कालों में समझा जाना; जिससे यह मात्र एक स्थानीय घटना न होकर, राष्ट्रीय आंदोलन की दिशा को परिवर्तित करने वाली एक अति महत्वपूर्ण घटना की तरह समझा जा सके। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि, इस घटना के पश्चात कांग्रेस असहयोग के मुद्दे को लेकर लगभग दूसरी बार बंटवारे के मुहाने पर आकर खड़ी हो गई थी।

भारत के स्वातंत्र्य समर में पडरौना क्षेत्र का योगदान

डॉ. सुबोध कुमार मिश्र*

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के लंबे दौर में 1942 ई. का भारत छोड़ो आंदोलन विशेष महत्व रखता है, खासकर इस आंदोलन की प्रकृति और इसके प्रभाव ने इसे भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में विशिष्ट स्थान दिलाया। पहली बार महात्मा गांधी ने जिस प्रकार 'करो या मरो' का नारा दिया और 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' की आवाज लगाकर अति आक्रामक रुख दिखाया, इससे देश के अन्य नेता हतप्रभ थे। जनता कुछ विशेष तरह के आंदोलन की कल्पना करते हुए पूरे उत्साह में थी। उल्लेखनीय है कि सन् 1942 ई. में महात्मा गांधी पडरौना आए थे और रेलवे स्टेशन से सटे बाग में उनकी सभा हुई थी। उनकी इस यात्रा और बाद में जवाहरलाल नेहरू तथा सरदार वल्लभ भाई पटेल की पडरौना यात्रा से इस क्षेत्र में देश की आजादी के प्रति भारी जागरूकता पैदा हुई। सन् 1942 ई. में गांधी के आंदोलन के विषय में दूरस्थ क्षेत्रों और गाँवों में हालांकि विस्तृत योजना नहीं पहुंच सकी थी, फिर भी 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' और 'करो या मरो' की गूंज जरूर पहुंच गई थी। स्थानीय नेता गांव-गांव घूमकर छोटी-छोटी सभाएँ करके आम लोगों को महात्मा गांधी के आंदोलन के विषय में जागरूक कर रहे थे। वे बताते थे कि गांधीजी अंग्रेजों को देश से बाहर निकालने के लिए कोई नया आंदोलन शुरू करने जा रहे हैं।

पडरौना पूर्वी उत्तर प्रदेश के तराई क्षेत्र में स्थित है। इसकी सीमाएं पूर्व में बिहार और उत्तर-पश्चिम में नेपाल को छूती हैं। आजादी के पूर्व यह क्षेत्र सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक आदि सभी दृष्टि से अत्यंत पिछड़ा था। मच्छरों की भरमार और घेंघा नामक बीमारी इस क्षेत्र की पहचान थी। आयोडीन के कमी और वर्षभर रहनेवाली नमी के कारण इस क्षेत्र की आबादी का एक बड़ा हिस्सा मानसिक रूप से कमजोर हुआ करता था। ब्रिटिश शासनकाल में यह क्षेत्र जगदीशगढ़ स्टेट के अधीन था। सन् 1942 ई. के आंदोलन के समय यहां के राजा बृज नारायण सिंह थे, उनके भाई राय बहादुर जगदीश नारायण सिंह थे। आमतौर पर ब्रिटिश शासनकाल में भारत की अधिकांश देशी रियासतें ब्रिटिश शासकों की अनुकंपा पर निर्भर थीं। पडरौना की रियासत भी कोई अपवाद नहीं थी।

आश्चर्यजनक रूप से तमाम पिछड़ापन, शिक्षा के अभाव, राजा और जमींदारों के दमन और

*अध्यक्ष, प्राचीन इतिहास एवं पुरातत्त्व विभाग, महाराणा प्रताप महाविद्यालय, जंगल धूसड़, गोरखपुर (उ.प्र.)

सबसे बढ़कर अंग्रेजों के आतंक के बावजूद 1942 ई. के आंदोलन में इस क्षेत्र की जनता ने जागरूकता, साहस और देशभक्ति का भरपूर जज्बा दिखाया। पडरौना नगर से पूर्व दिशा में तिनफेड़िया में तो आंदोलनकारियों ने (स्थानीय स्तर पर क्रांतिकारी कहे गए) कुछ समय के लिए कब्जा करके सरकारी अधिकारियों/कर्मचारियों को बंधक बनाकर भारत माता की जय बोलवाया और गांधी टोपी पहनने को बाध्य कर दिया।[1]

स्वतंत्रता आंदोलन के दौर में इस क्षेत्र में गांव-गांव से लगाए जानेवाले नारे[2] जैसे– 'दही-चूड़ा राज का, बोटवा सुराज का' और 'दाल-भात रानी के थोट दिखाई गांधी के' आदि से इस क्षेत्र के निवासियों की समझ, सोच और स्वतंत्रता आंदोलन, गांधी और सुराज के प्रति इनकी जागरूकता का अंदाजा लगाया जा सकता है।

सन् 1942 ई. के आंदोलन में इस क्षेत्र के नेताओं में रामधारी पांडेय, रामशरण मणि त्रिपाठी, चंद्रदेव तिवारी, खियाली राय, काशीनाथ पांडेय, विश्वनाथ मिश्र, कृष्णानंद भारती, तड़प भगत, हरे राम दूबे, ब्रह्मदेव शर्मा एवं जगन्नाथ मल्ल का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। रामधारी पांडेय और चंद्रदेव पांडेय क्रमशः एम.एल.सी. एवं एम.एल.ए. भी चुने गए। जगन्नाथ मल्ल राज दरबार के निकट के रिश्तेदार थे।[3] जब ब्रिटिश सरकार ने आंदोलन के समय राजा बृज नारायण सिंह और उनके भाई रायबहादुर जगदीश नारायण पर दबाव डाला कि आपका भांजा जगन्नाथ मल्ल कांग्रेस तथा आंदोलनकारियों की मदद और सरकार की खिलाफत करता है, तब राजा बृज नारायण सिंह ने जगन्नाथ मल्ल को दरबार से हटा दिया और ये वर्तमान पडरौना चीनी मिल के नजदीक अलग घर में रहने लगे। इसके बाद कांग्रेस के कार्यक्रमों में इनकी भागीदारी और अधिक बढ़ गई।

इस आंदोलन के समय कांग्रेस का दफ्तर रामकोला रोड पर वर्तमान चित्रगुप्त मंदिर के निकट हुआ करता था।[4] इसमें कांग्रेस की बैठक होती थी और कार्यक्रम तय किए जाते थे। स्थानीय नेताओं ने अपने-अपने गांव-क्षेत्रों में महात्मा गांधी और उनके आंदोलन के बारे में जानकारी पहुंचाई। सरकार की तरफ से कानूनगो, पटवारी आदि सरकारी कर्मचारियों की ड्यूटी लगाई गई थी कि वे कांग्रेस की मीटिंग से संबद्ध पूर्ण जानकारी से सरकार को अवगत करवाएं।[5] सदर पडरौना के निकट दुदही में सुपरवाइजर कानूनगो के पद पर तैनात शंकर दयाल श्रीवास्तव की ड्यूटी भी कांग्रेस के मीटिंग की रिपोर्ट तहसील में देने के लिए लगाई गई थी। अपनी रिपोर्ट में उन्होंने कहा कि, 'कांग्रेसी नेता कहते हैं कि अंग्रेज सरकार अब कुछ ही दिनों की मेहमान है। उन्होंने ऐसा कहने वाले नेताओं के नाम के विषय में अनभिज्ञता प्रकट की। इस पर ज्वाइंट मजिस्ट्रेट कसया पडरौना, जिसे स्थानीय जनता जंट साहब कहती थी, ने इन पर पांच रुपए का जुर्माना लगा दिया।'[6]

9 अगस्त सन् 1942 ई. को आंदोलन की शुरुआत के ठीक पहले कुछ नेता तो गिरफ्तार हो गए किंतु शेष फरार हो गए।[7] इस क्षेत्र की जनता पहले से दबी हुई और भयभीत भी थी तथा

सरकार के दमन चक्र, आतंक तथा नेतृत्व का अभाव भी था, फिर भी इस क्षेत्र के लोगों ने इस आंदोलन में अपनी उपस्थिती यत्र-तत्र हिंसा, जुलूस, रेल लाइनों को उखाड़कर, टेलीफोन के तार काटकर और सरकार के विरुद्ध अन्य गतिविधियों में लिप्त होकर प्रदर्शित किया। किंचित राजदरबार के प्रति भी आक्रोश दिखाया। बड़े काश्तकार जो दरबार से जुड़े थे, उन्होंने आंदोलन से अपने को अलग रखा। आंदोलनकारियों ने पडरौना से कठकुइयां मार्ग पर इसाई घर के पास रेल लाइन को उखाड़ डाला।[8] युद्धकाल में पडरौना से कसया को जोड़ने वाली अस्थायी रेल लाइन बिछाई गई थी, इसे भी आंदोलनकारियों ने उखाड़ डाला। आन्दोलनकारियों का नेतृत्व मंगल उपाध्याय और रामशरण मणि कर रहे थे।[9] पडरौना से कुबरे स्थान रोड पर बड़गांव में जनता ने राजा के साखू के कटे पेड़ लूट लिये।[10] अमरुल्ला मास्टर जो पेशे से एक किसान थे, उन्होंने गाँववालों को आगे जाने के लिए उकसाया और जुलूस निकालने का प्रयास किया, परंतु गिरफ्तार कर लिये गए।[11]

फरार कांग्रेसी नेताओं को लक्ष्मीगंज क्षेत्र के प्रमुख जमींदार बच्चा बाबू ने अपने यहां शरण दी और उनके भोजन तथा सुरक्षा का पूरा बंदोबस्त भी किया।[12] बच्चा बाबू ऊपर से अंग्रेजों के साथ बने रहे परंतु अंदर-अंदर उन्होंने आंदोलनकारियों की मदद की। फरार कांग्रेसी नेताओं में रामशरण मणि त्रिपाठी ने अगुवाई करके लक्ष्मीगंज रेलवे स्टेशन में आग लगा दी।[13] बाद में जब जांच के लिए टीम आई तो स्टेशन मास्टर, जो बंगाली बाबू कहे जाते थे उन्होंने अपने बयान में कहा कि, स्टेशन को जलाने का कार्य बाहर से आए उपद्रवियों ने किया बच्चा बाबू के आदमियों ने तो बचाया अन्यथा पूरा स्टेशन जल गया होता। स्टेशन मास्टर के बयान से बच्चा बाबू और कांग्रेसी नेताओं दोनों का बचाव हुआ।[14] पडरौना के निकट जोहरा बाजार के रहनेवाले सुखराज को अंग्रेजों ने गिरफ्तार कर लिया और भीषण शारीरिक यातनाएं दी, फिर भी सुखराज ने न तो कांग्रेसी नेताओं का नाम बताया और न ही उनके छिपने का स्थान बताया। सुखराज के त्याग और बलिदान को याद करके आज भी वयोवृद्ध रामशरण मणि त्रिपाठी की आंखों से आंसू बहने लगते हैं। सुखराज के साहस और बलिदान ने इस क्षेत्र के लोगों को आजादी के संघर्ष के लिए प्रेरित किया।

दुदही के चंदूलाल मारवाड़ी ने विद्रोह का झंडा बुलंद किया। अंग्रेज शासकों ने उन्हें गिरफ्तार करके उनकी संपत्ति को जब्त कर लिया। देश की आजादी के बाद उन्हें मुआवजा मिला।[15] ग्राम हिरनहां के हरेराम दूबे भारत छोड़ो आंदोलन में सक्रिय भागीदारी के लिए दंडित किए गए। उनका 135 बीघा खेत / मोजा धीरहरा अंग्रेजों ने जब्त करके नीलाम कर दिया जिसे खड्डा मिल के मैनेजर हिव शेली ने ले लिया।[16] खड्डा क्षेत्र में शंकर भगत और रामचंद्र दूबे ने अत्यंत जुझारू तेवर दिखाए। सरकार की तमाम चेतावनियों और आतंक के बावजूद भी उन्होंने गांव-गांव घूमकर लोगों को जागरूक किया तथा आंदोलन करने को उकसाया। इन दोनों सेनानियों को गिरफ्तार करके क्रमशः पांच माह और एक वर्ष के लिए कैद के साथ सौ रुपया जुर्माना भी लगया गया।[17]

ग्राम होरलापुर के नर्वदेश्वर मिश्र सन 1942 ई. में इलाहाबाद विश्वविद्यालय में बी.ए. के विद्यार्थी थे। इलाहाबाद में आंदोलन के जोर पकड़ने पर, 10 अगस्त को कलेक्ट्रेट परिसर में गोली चलने से जब एक छात्र की मौत हो गई तो सभी छात्रावास खाली कराए गए और सभी छात्रों को जबर्दस्ती उनके गांव घर भेज दिया गया। अत: वे भी 14 अगस्त तक वापस अपने घर आ गए। उन्होंने बताया कि यहां घर पर रोज एक सिपाही यह जानकारी लेने के लिए आता था कि वे घर पर ही हैं या किसी अन्य गतिविधि में लिप्त तो नहीं हैं। पडरौना के आस-पास छिटपुट आंदोलन और हिंसा हुई। यद्यपि कुछ नेता गिरफ्तार थे, परंतु फरार नेताओं और स्थानीय लोगों ने अत्यंत साहसी और उग्र रुख अपनाकर सरकार की नींद उड़ी दी थी। कई सरकारी कर्मचारी जो भारतीय थे, उनकी सहानुभूति कई अवसरों पर कांग्रेस और आंदोलनकारियों के प्रति प्रकट भी हुई। परंतु नौकरी के डर से वे सरकार के आदेशों का पालन कर रहे थे।

अंग्रेजों ने क्रूरतापूर्वक आंदोलन का दमन किया। भीड़ को तितर-बितर करने और आतंक फैलाने के ध्येय से कई जगह हवाई फायरिंग और कहीं-कहीं सीधे फायरिंग भी की गई। ग्राम नंद लाल छपरा के बाबूराम कुशवाहा की गोली लगने से मृत्यु हो गई। अंग्रेजों ने राजदरबार पर भी आंदोलनकारियों के दमन के लिए दबाव डाला। राजा ऊपर से अंग्रेजों के साथ थे, किंतु उनकी सहानुभूति देशवासियों के साथ थी। अत: उन्होंने इसके दमन में कोई उत्साह नहीं दिखाया।

आंदोलन को कुचलने के लिए बाहर से भी फौज बुलाई गई,[18] जिसे रेलवे स्टेशन के पूर्व में चौरियां बाग में टिकाया गया था। सरकारी कर्मचारी भी दमन चक्र में लगाए गए थे।[19] कांग्रेस का दफ्तर जला दिया गया। गांव में छापे मारकर गिरफ्तारियां हुईं और संपत्ति जब्त की गई। रामप्यारे लाल और महावीर लाल पटवारी को विद्रोहियों के प्रति सहानुभूति के आरोप में नौकरी से निकाल दिया गया।[20] जिस गांव या जिस क्षेत्र में ज्यादा अशांति हुई वहां गांव पर सामूहिक जुर्माना लगाया गया। राजदरबार के उत्तर सिसवां गोइती में सरपंच विश्वनाथ मिश्र के नेतृत्व में आंदोलन का दबाव ज्यादा होने के कारण अंग्रेज सरकार ने पूरे क्षेत्र की पुलिस और सेना लगाकर घेरवा लिया। ग्राम वृंदावन में आग लगवा दी। भारी संख्या में गिरफ्तारी हुई और सामूहिक जुर्माना लगाया गया। विश्वनाथ मिश्र किसी तरह भाग निकले। गांववालों ने अत्याचार और जुर्माना सहने पर भी उनके बारे में कुछ नहीं बताया।

अंग्रेज सरकार ने ऐसे कर्मचारियों और अधिकारियों को पुरस्कृत और प्रोन्नत किया जिन्होंने विद्रोह के दमन विद्रोहियों की गिरफ्तारी और सामूहिक जुर्माना वसूलने में उत्साह दिखाया। पडरौना क्षेत्र में विद्रोहियों को कुचलने के लिए गोरखपुर से कलेक्टर मॉस भी पहुंचे। कुछ दिनों में इस विद्रोह को दबाने में सरकार सफल हुए। परंतु पडरौना में उम्मीद से ज्यादा ही सन् 1942 ई. के आंदोलन ने जोर दिखाया। इसे याद करके आज भी इस क्षेत्र के लोग गौरवान्वित होते हैं। विशेष रूप से दूरस्थ

और अत्यंत पिछड़े गांवों में भी जिस प्रकार देशभक्ति का जज्बा दिखाई दिया और उन्होंने विद्रोह का झंडा बुलंद किया। उससे अंग्रेज शासकों को इस क्षेत्र में उम्मीद से ज्यादा ताकत और समय लगाना पड़ा।

संदर्भ

1. श्री रामशरण मणि त्रिपाठी और श्री पुरुषोत्तम कौशिक से साक्षात्कार के आधार पर।
2. श्री शंकर दयाल श्रीवास्तव, श्री नर्वदेश्वर मिश्र, श्री राधाकृष्ण मिश्र एवं श्री शारदा लाल से साक्षात्कार के आधार पर।
3. उपर्युक्त एवं खेतान, भगवती प्रसाद; *आजादी की कहानी पडरौना की जुबानी*, पृ. 12–131
4. वही, पृ. 141
5. श्री शंकर दयाल के साक्षात्कार के आधार पर।
6. वही एवं तहसील रिकार्ड पडरौना।
7. खेतान, उपर्युक्त वर्णित, पृ. 37
8. वही एवं श्री राधाकृष्ण मिश्र से साक्षात्कार पर आधारित।
9. श्री रामशरण मिश्र, श्री पुरुषोत्तम कौशिक एवं श्री शंकर दयाल से साक्षात्कार पर आधारित।
10. श्री राधाकृष्ण मिश्र से साक्षात्कार पर आधारित।
11. श्री नवदेश्वर मिश्र एवं श्री शंकर दयाल से साक्षात्कार पर आधारित।
12. श्री रामशरण मणि त्रिपाठी एवं श्री पुरुषोत्तम कौशिक से साक्षात्कार पर आधारित।
13. वही एवं खेतान, उपर्युक्त वर्णित, पृ. 44।
14. वही।
15. मिश्र, रवींद्र किशोर, 'गोरखपुर मंडल में 1942 का आंदोलन', *हिंदी दैनिक*, 9 अगस्त 1981 ई.।
16. वही।
17. कसेरा, दिनेश, 'खड्डा क्षेत्र के रणबाकुरों के शहादत', *दैनिक जागरण*, 15 अगस्त 2003 ई.।
18. मिश्र, रवींद्र किशोर, उपर्युक्त वर्णित।
19. श्री शंकर दयाल, श्री राधाकृष्ण मिश्र से साक्षात्कार एवं तहसील रिकार्ड।
20. वही।

भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का उत्प्रेरक जलियाँवाला बाग नरसंहार

डॉ. विनोद कुमार*

जलियाँवाला बाग नरसंहार मनुज्य के ज्ञात इतिहास का एक ऐसा काला अध्याय है, जिसने सम्पूर्ण मानवता को शर्मसार कर दिया था। यह सभ्य समाज के माथे पर ऐसा कलंक है, जिसके घाव आज तक महसूस किये जा रहे हैं। आज भी भारतीय प्रधानमंत्री के ब्रिटेन दौरे या ब्रिटिश प्रधानमंत्री के भारत दौरे के दौरान यह विषय चर्चा के केन्द्र में रहता है और विभिन्न इतिहासकार इसके लिये ब्रिटिश प्रधानमंत्री से आधिकारिक माफी माँगने की अपील करते हैं, लेकिन अभी तक ऐसा हुआ नहीं है। अपने साम्राज्य निर्माण एवं क्षेत्रों को फतह करने के निमित्त विश्व इतिहास में बहुत से युद्ध हुए हैं जिनमें लाखों लोगों की मौत भी हुई है लेकिन उन सभी युद्धों में मारकाट सैनिकों के बीच होती थी तथा हारी हुई सेना के क्षेत्रों पर विजयी शासक का अधिकार हो जाता था लेकिन असैनिक लोगों के साथ ज्यादती नहीं की जाती थी परंतु जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड में तो साम्राज्य के नशे में चूर एक उन्मादी व्यक्ति ने 3 मिनट की मोहलत देकर असहाय बूढ़े, बच्चों एवं महिलाओं को गोलियों से छलनी कर डाला था, जिनके पास बचने और प्रतिरोध करने के लिये कुछ नहीं था।

प्रथम विश्व युद्ध में भारतीयों का समर्थन प्राप्त करने के लिये ब्रिटिश सरकार ने भारत के लोगों से वायदा किया था कि विश्व युद्ध में विजयी होने के पश्चात उन्हें स्वशासन प्रदान कर दिया जायेगा। युद्धोपरांत स्वशासन की उम्मीद में भारत के लोगों ने ब्रिटिश सरकार को बिना शर्त हर तरीके से मदद दी थी; यहाँ तक कि गाँधी जी ने स्वयं लोगों को सेना में भर्ती होने के लिये प्रेरित किया था परंतु युद्ध की समाप्ति के पश्चात् ब्रिटिश सरकार अपने द्वारा किये गये वायदे को भूल गयी और देने के नाम पर लायी मोंटेग्यु-चेम्सफोर्ड सुधार। इससे भारतीयों को स्वयं को छले जाने का अनुभव हुआ और वह मुखर होकर सरकार के प्रति खड़े होने के लिये तैयार होने लगे; तो सरकार निर्ममतापूर्वक एक कदम आगे बढ़ते हुए लोगों का दमन करने के लिये रौलेट एक्ट ले आयी, जिसे आतंकवादी अधिनियम या काला अधिनियम के नाम से भी जानते हैं। लोगों ने इसके विरोध में

*पोस्ट डॉक्टोरल फेलो, भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली

आन्दोलन शुरू कर दिया। इसी आन्दोलन में जलियाँवाला बाग नरसंहार और बाद के अत्याचारों के बीज निहित हैं।

चूँकि हम जलियाँवाला बाग नरसंहार के पीछे के कारणों को रौलेट सत्याग्रह में देखते हैं। रौलेट सत्याग्रह गाँधी जी के नेतृत्व में प्रथम विश्व युद्ध के उपरान्त 1857 ई. के महान विप्लव के बाद एक ऐसा सशक्त जन आंदोलन था, जिसमें राष्ट्रवाद का भी पुट निहित था। रौलेट सत्याग्रह के रूप में शुरू हुए इस जन-संघर्ष में समाज के लगभग सभी वर्गों की भागीदारी थीं। इसमें मजदूरों, नौकरी पेशा लोगों, दस्तकारों, शिक्षित वर्ग, नौजवान, बुर्जुआ वर्ग आदि सभी वर्ग के लोग शामिल थे।

प्रथम विश्व युद्ध के उपरांत व्याप्त सामाजिक एवं राजनीतिक असंतोष ने लोगों पर व्यापक सामाजिक आर्थिक दुष्प्रभाव डाला। इसने जनमानस में ब्रिटिश राज के विरूद्ध व्यापक असंतोष को जन्म दिया। युद्धकाल के दौरान भारी संख्या में सैनिकों की भर्ती की गयी थी। चूँकि रौलेट सत्याग्रह का सर्वाधिक प्रमुख केन्द्र पंजाब था। युद्ध के दौरान पूरे भारत से लगभग 12 लाख सैनिकों की भर्ती की गयी थी, जबकि अकेले पंजाब से 3,55,000 सैनिक भर्ती की गयी थी। इस भर्ती के लिये लोगों के साथ जोर जबरदस्ती भी की गयी थी। इससे पंजाब में जनांकिकीय एवं जन व्यावसायिक अनुपात बिगड़ गया। सैनिक तथा अन्य असैनिक कार्य करने वाले लोगों के अनुपात में परिवर्तन हो गया, जिससे अन्य कार्य करने वाले लोगों की संख्या में भारी कमी आई। साथ ही सेना में जवान लोगों के जाने से पंजाब का जनांकिकीय गणित भी बिगड़ गया। इससे लोगों में ब्रिटिश सत्ता के प्रति भारी असंतोष था।

युद्ध के दौरान भारत पर युद्ध ऋणों का बोझ बहुत अधिक बढ़ गया। साथ ही करों की दर बढ़ा दी गयी और नये कर भी प्रत्यारोपित कर दिये गये। युद्ध के दौरान रक्षा-व्यय में 300% की वृद्धि हुई, जिसे युद्ध ऋण या करों में वृद्धि के द्वारा पूरा किया गया। युद्ध के पहले तक परम्परागत किस्म के छोटे व्यापारी आयकर से मुक्त थे लेकिन अब उन्हें भी आयकर के दायरे में ले आया गया। हस्तशिल्प की वस्तुओं का व्यापार करने वाले ये व्यापारी पहले से ही ब्रिटिश निर्मित वस्तुओं के सामने अपने उत्तरजीविता के लिये संघर्ष कर रहे थे, ऊपर से अब उन्हें भी आयकर के दायरे में लाकर इनका शोषण शुरू कर दिया गया, जिससे ये लोग भी औपनिवैषिक शासन से असंतुष्ट थे। बुर्जुआ वर्ग पर एक नया लाभ कर भी थोप दिया गया। इससे व्यापारी वर्ग का सरकार से मोहभंग हो गया।

दूसरी ओर 1918-19 ई. के दौरान भारत में भीषण अकाल पड़ा, जिसके साथ एन्फ्लुऐंजा की महामारी का प्रकोप भी जुड़ गया। इससे करीब 1 करोड़ 30 लाख लोगों की मृत्यु हो गयी। अकाल से खाद्यान्न उत्पादन में भारी कमी आयी, जबकि खाद्यान्नों का निर्यात लगातार जारी रहा। इन

सभी कारणों से मूल्यों में भारी वृद्धि हुई, जोकि युद्ध काल की तुलना में युद्धोपरांत लगभग ढ़ाई गुना बढ़ गई थी। युद्ध में मानव संसाधन के अलावा सेना का साजो-सामान, रसद सामग्री तथा सैनिकों और इस सभी सामानों को युद्ध क्षेत्र में ले जाना और वहाँ से वापस लाने का सारा खर्च भारत को ही वहन करना पड़ता था, जबकि प्रत्यक्ष रूप से भारत का तो इस युद्ध से कोई संबंध नहीं था। इन सभी कारणों से 1919-20 ई. के दौरान भारत के राष्ट्रीय ऋणों में 1460 लाख पाउण्ड की वृद्धि हुई।

युद्ध के दौरान माँग में कमी के कारण जूट, कपास, तिलहन आदि व्यापारिक फसलों के निर्यात में ह्रास हुआ, जिससे किसान काफी प्रभावित हुए और सरकार से असंतुष्ट हुए। वहीं चूँकि युद्ध के दौरान मुद्रास्फीति के सापेक्ष आय में वृद्धि नहीं हुई, साथ ही खाद्यान्नों की कीमतों में भारी वृद्धि के कारण गरीब, मजदूर और दस्तकार सबसे अधिक प्रभावित हुए। मजदूरों ने तो वेतन वृद्धि और बोनस को लेकर कई जगह हड़तालें भी कर दीं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विश्व युद्ध ने कर वृद्धि, युद्ध ऋणों के भारी बोझ, वस्तुओं के मूल्यों में भारी वृद्धि, बेरोजगारी (जिसके कारण नौजवानों में सरकार के प्रति नफरत थी) आर्थिक मन्दी (जिससे व्यवसायी लोग प्रभावित थे) आवश्यक वस्तुओं का अभाव आदि के कारण समाज के सभी वर्ग इससे प्रभावित और सरकार से रूष्ट थे तथा रौलेट सत्याग्रह में सरकार के विरूद्ध खड़े हो गये। अब संघर्ष का दायरा मध्यम-वर्ग से निकलकर आम जनमानस तक पहुँच गया था।

रौलेट एक्ट के पूर्व देश में विभिन्न कारणों से ऐसा राजनीतिक वातावरण बन गया था कि लोगों में राष्ट्रवादी भावना चरम पर थी। एनी बेसेन्ट एवं बाल गंगाधर तिलक के होमरूल आन्दोलन ने देश की युवा पीढ़ी को संघर्ष करने के लिये तैयार कर दिया था और यह वर्ग उग्र ब्रिटिश विरोधी हो गया था लेकिन एनी बेसेन्ट इसे सफल नेतृत्व के द्वारा किसी दिशा में नहीं मोड़ पायीं थीं। अत: इन लोगों के अन्दर ब्रिटिश विरोधी भावना की ऊर्जा भरी हुई थी। इस वर्ग ने रौलेट एक्ट विरोधी आन्दोलन से पूर्व ही देश के विभिन्न भागों में सरकार विरोधी सभाऐं आयोजित की थीं। इसके अलावा महात्मा गाँधी को रौलेट सत्याग्रह में मानव संसाधन पूँजी के रूप में इन होमरूलवादियों का बहुत ही बेहतरीन योगदान मिला था। 25 फरवरी 1919 ई. को गाँधी जी ने दिनशा एदलजी वाचा के नाम एक खत में लिखा था– "मुझे लगता है कि आज के वातावरण में बड़े हो रहे नौजवानों के लिये अर्जियाँ आदि देने का उपाय काफी नहीं है। हमें उन्हें कोई न कोई कारगर उपाय देना चाहिये। मेरा तो ख्याल है कि बम आन्दोलन को रोकने का उपाय केवल सत्याग्रह है।"

भारतीय मुसलमानों ने प्रथम विश्व युद्ध में ब्रिटिश सरकार का साथ इस शर्त पर दिया था कि युद्ध के दौरान या युद्ध के उपरांत ब्रिटेन उनके आध्यात्मिक प्रमुख और पवित्र धर्म स्थलों के साथ कोई बुरा बर्ताव नहीं करेगा लेकिन महायुद्ध की समाप्ति एवं युद्ध में विजय के पश्चात ब्रिटेन ने तुर्की

साम्राज्य को विघटित करके येरूशलम जैसे पवित्र धर्म स्थल को हड़प लिया। मुस्लिम जगत के सर्वमान्य राजनीतिक एवं आध्यात्मिक नेता का भविष्य भी संकट में पड़ गया। इससे भारतीय मुसलमान भी ब्रिटिश सरकार से रूष्ट थे। गाँधी जी ने इस मौके का लाभ हिन्दू-मुस्लिम एकता के रूप में उठाने की योजना बनायी। वर्ष 1918 ई. में कांग्रेस का दिल्ली में वार्षिक अधिवेशन हुआ। कांग्रेस ने महायुद्ध में शानदार भारतीय योगदान का हवाला देते हुए पूरे देश में तत्काल प्रांतीय स्वतंत्रता लागू किये जाने, पेरिस के शांति सम्मेलन में भारत के राष्ट्रीय नेताओं की भागीदारी एवं दमनात्मक कानूनों की तुरंत वापसी की माँग की। उसी प्रकार मुस्लिम लीग ने भी अपने वार्षिक अधिवेशन में येरूशलम और अन्य धार्मिक स्थलों पर ब्रिटिश आधिपत्य का विरोध किया और ब्रिटिश सरकार से कहा कि वह मित्र राष्ट्रों को ऐसी कोई भी हरकत करने से रोके, जिससे धर्म स्थलों की स्थिति एवं प्रतिष्ठा प्रभावित हो।

रूस की बोल्शेविक क्रांति के पश्चात रूस में साम्यवादी सरकार की स्थापना हुई। इसने साम्राज्यवादी स्वार्थों को त्यागकर एवं विभिन्न राष्ट्रों को समान दर्जा प्रदान कर औपनिवेशिक मुक्ति संघर्षों को प्रेरित किया। जिससे दुनिया के शोषित-पीड़ित जनगणों में एक नया उत्साह जागा। युद्ध काल के दौरान दोनों पक्षों ने एक दूसरे के प्रति क्रूरता का खुलासा किया। इससे लोगों के मन से पश्चिम की नैतिक श्रेष्ठता का मिथक टूट गया और लोगों में पश्चिम के प्रति एक नफरत पैदा हो गयी।

इन सभी कारणों से विश्व युद्ध की समाप्ति तक देश की जनता में क्रांति के लिये एक पृष्ठभूमि तैयार हो चुकी थी। सही समय पर इसे चिंगारी देने की आवश्यकता थी। वो समय भी आ गया, जब ब्रिटिश सरकार ने 10 सितम्बर, 1917 ई. को ब्रिटिश उच्च न्यायालय के न्यायाधीश सर सिडनी रौलेट की अध्यक्षता में आतंकवाद को रोकने, उससे संबंधित कानूनों की समीक्षा करने तथा नये कानूनों का मसौदा तैयार करने के लिये एक समिति नियुक्त की। इस समिति ने अप्रैल 1918 ई. में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। रिपोर्ट में कहा गया कि भारत रक्षा कानून के कारण ही युद्धकालीन क्रांतिकारी गतिविधियों पर काबू पाया जा सका था परंतु उनके पुनः भड़कने से इनकार नहीं किया जा सकता है। अतः इस समिति ने इसके लिये दो बिलों का प्रारूप तैयार किया। फरवरी 1919 ई. में दो बिल केन्द्रीय असेम्बली में पेश किये गये, जिसमें से पहले विधेयक को भारी विरोध के बावजूद 21 मार्च को पारित कर दिया गया लेकिन दूसरे भारतीय दण्ड संहिता संशोधन विधेयक को कुछ समय के लिये स्थागित कर दिया गया। इन विधेयकों को पेश करने के दौरान ही पूरे देश में इनका भयंकर विरोध होने लगा। स्वयं गाँधी जी ने 24 फरवरी को वायसराय को पत्र लिखकर इन विधेयकों पर पुर्नविचार की माँग की, अन्यथा परिणाम भुगतने के लिये कहा। सर सिडनी रौलेट की अध्यक्षता वाली समिति की सिफारिश पर प्रारूपित इस अधिनियम के तहत किसी भी व्यक्ति को

केवल संदेह के आधार पर अनिश्चितकाल तक के लिये गिरफ्तार करके जेल में डाला जा सकता है। इसके विरूद्ध वह व्यक्ति अपने बचाव में कहीं अपील भी नहीं कर सकता था। इसी कारण इस अधिनियम को बिना अपील, बिना दलील, बिना वकील वाला कानून भी कहा जाता है। इस एक्ट के विरोध में पूरे भारत में विरोध प्रदर्शन होने लगे। इस एक्ट का विरोध करने के लिये गाँधी जी ने सत्याग्रह शुरू करने का प्रस्ताव रखा। इसके लिये उन्होंने सत्याग्रह सभा बनाई और स्वयं इसके अध्यक्ष थे। इस सभा की देश के विभिन्न भागों में बहुत सी शाखाएं थीं, जो गाँधी जी द्वारा निर्देशित होती थीं। शुरूआत में तो गाँधी जी ने प्रतिबंधित पुस्तकों के प्रकाशन एवं सार्वजनिक वितरण के द्वारा कानून भंग करके जेल जाने का कार्यक्रम निर्धारित किया लेकिन 23 मार्च को राष्ट्रव्यापी हड़ताल का विचार प्रस्तुत किया। उन्होंने 30 मार्च का दिन निर्धारित किया। इस दिन सभी लोग रौलेट कानून के विरोध में 24 घण्टे का उपवास रखकर प्रार्थना करेंगे तथा शांतिपूर्ण सभाओं एवं प्रदर्शनों द्वारा कानूनों का विरोध करेंगे लेकिन बाद में ये तिथि परिवर्तित करके 6 अप्रैल कर दी गयी। सत्याग्रह सभा ने विभिन्न प्रचार साहित्य का प्रकाशन एवं वितरण, सत्याग्रहियों के हस्ताक्षर जुटाना तथा उन्हें अहिंसक संघर्ष का प्रशिक्षण देना आदि कार्य अपने हाथ में लिये थे। गाँधी जी ने मार्च और शुरूआती अप्रैल में पूरे देश का दौरा किया। इस समय रौलेट एक्ट विरोधी आंदोलन में तीन संगठनों- होमरूल लीग, खिलाफत समिति तथा सत्याग्रह सभा के लोगशामिल थे। गाँधी जी के आह्वान पर उत्तर और पश्चिमोत्तर भारत के क्षेत्रों, जैसे- पंजाब और दिल्ली में इसका बहुत तेजी से प्रसार हुआ। इसके अलावा गुजरात, बम्बई और सिंध तथा इसके आसपास के छोटे शहर भी इसके केन्द्र थे। चूँकि रौलेट सत्याग्रह का स्वरूप शहरी था इसलिये इसमें मुख्य रूप से शहरी मध्यमवर्गीय, पेशेवर, बुद्धजीवी, व्यापारी, छात्र एवं निम्नवर्गीय दस्तकार आदि सभी वर्ग के लोग शामिल थे तथा साम्प्रदायिक दृष्टि से हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, पारसी आदि सभी धर्मावलंबियों ने इसमें भाग लिया।

जैसा कि हमने ऊपर बताया है पहले हड़ताल की तिथि 30 मार्च निर्धारित की गयी थी जिससे दिल्ली में तो हड़ताल 30 मार्च को ही हुई लेकिन बाद में पुन: तिथि बदलकर 6 अप्रैल कर दी गयी, जिससे पुन: 6 अप्रैल को पूरे देश में हड़ताल हुआ। इस दिन लोगों ने समुद्र एवं नदियों में स्नान कर प्रार्थना की, 24 घण्टे का उपवास रखते हुए सभा एवं जुलूसों के द्वारा काले कानूनों का शांतिपूर्वक विरोध किया।

रौलेट सत्याग्रह का सबसे बड़ा केन्द्र था पंजाब; और पंजाब में भी मुख्यत: पाँच जिले- लाहौर, अमृतसर, गुजराँवाला, गुजरात और लायलपुर। यहाँ पर युद्धकाल के दौरान जबरन सैनिक भर्ती, युद्ध ऋण की उगाही, गदर आंदोलन का क्रूर दमन तथा महँगाई के कारण लोगों में ब्रिटिश सरकार के प्रति काफी गुस्सा था। अमृतसर में हड़तालें शांतिपूर्ण रहीं। 9 अप्रैल को डॉ. सैफुद्दीन किचलू एवं डॉ. सत्यपाल ने अमृतसर में एक जुलूस निकाला, जिसमें हिन्दू-मुस्लिम एकता का

नायाब नमूना प्रस्तुत किया गया। इस साम्प्रदायिक एकता और दृढ़ राष्ट्रवादी भावना से पंजाब का डिप्टी गर्वनर माइकल ओ. डायर भयभीत हो गया और उसने आन्दोलन को दबाने का निर्णय लिया। डॉ. किचलू एवं डॉ. सत्यपाल को उसी दिन निर्वासित कर दिया गया। ये दोनों पंजाब के काफी लोकप्रिय नेता थे। इनके निर्वासन से लोगों में गुस्सा था। विरोध स्वरूप लोगों ने 10 अप्रैल को एक शांतिपूर्ण मार्च निकाला। पुलिस ने उस शांतिपूर्ण भीड़ पर गोली चला दी। फलतः भीड़ उग्र हो गयी और साम्राज्यवादी ठिकानों पर तोड़फोड़ शुरू कर दी। इसमें कुछ गोरे अधिकारियों की मृत्यु भी हो गयी। इसके बाद माइकल ओ. डायर ने शहर का प्रशासन सैनिक अधिकारी ब्रिगेडियर जनरल आर. डायर को सौंप दिया। इसने 11 अप्रैल को अमृतसर में सैनिक शासन लागू कर दिया तथा 12 अप्रैल को कुछ गिरफ्तारियाँ करवाई और शहर में धारा 144 लागू कर सभा करने, जुलूस निकालने आदि को गैर-कानूनी घोषित कर दिया। 13 अप्रैल 1919 ई. को बैसाखी के दिन रौलेट एक्ट तथा डॉ. सत्यपाल एवं डॉ. किचलू के निर्वासन के विरोध में एक सभा का आयोजन किया गया। ये सभा किसने बुलायी थी, इस संबंध में 'हंसराज' नामक एक व्यक्ति का उल्लेख आता है। यही व्यक्ति बाद में सरकारी गवाह बन गया। चूँकि 13 अप्रैल को ही सुबह साढ़े नौ बजे सभा को अवैधानिक घोषित कर दिया गया था। उसी दिन बैसाखी थी, इस दिन हरमिन्दर साहिब पर विशाल मेले का आयोजन होता है और हरमिंदर साहिब और जलियाँवाला बाग के मध्य ज्यादा दूरी नहीं है। सभा को अवैधानिक घोषित होने के बावजूद वहाँ पर 20,000 की संख्या में भीड़ एकत्रित हो गयी, जिसमें अधिकतर बूढ़े, बच्चे एवं महिलाऐं थीं। इसका कारण यह हो सकता है कि लोग बैसाखी का मेला देखने आये हों और जलियाँवाला बाग में आकर बैठ गये हों तथा उन्हें धारा 144 के बारे में कुछ ज्ञात ही न हो। यही बात डायर ने हण्टर आयोग के समक्ष स्वीकार की थी कि सम्भव है पूरे शहर में धारा 144 की सूचना प्रसारित न की गई हो। सभा की सूचना मिलते ही ब्रिगेडियर जनरल आर. डायर अपनी गोरखा और पंजाबियों की 50 सैनिकों की टुकड़ी लेकर वहाँ पहुँच गया और स्वयं बाग के मुख्य दरवाजे पर खड़ा होकर लोगों को तीन मिनट के भीतर बाग खाली करने का आदेश दिया। इस बाग की स्थिति ऐसी है कि यह चारों ओर से ऊँची-ऊँची दीवारों से घिरा हुआ है और इसमें कुल चार द्वार हैं और उन दरवाजों से होकर एक बार में दो आदमी नहीं निकल सकते हैं। इसके बाद आर. डायर ने सैनिकों को गोली चलाने का आदेश दे दिया। सैनिक तब तक गोलियाँ चलाते रहे जब तक कि खत्म नहीं हो गयीं। कुल 1600 राउण्ड गोलियाँ चलीं। निहत्थी, असहाय भीड़ छलनी होती रही। लोग अपनी जान बचाने के लिये बाग में स्थित कुऐं में कूद गये। सरकारी स्त्रोतों के अनुसार इस नरसंहार में 379 लोग मारे गये जबकि करीब 1200 लोग घायल हुए। गैर-सरकारी सूत्रें के अनुसार करीब 1000 लोग मारे गये और 2000 लोग घायल हुए।

अब प्रश्न उठता है कि जलियाँवाला बाग नरसंहार कानून-व्यवस्था की स्थिति को ठीक करने के दौरान आवेश में घटित एक दुर्घटना थी या सोची-समझी साजिश? बाद की घटनाओं और

घटनाक्रमों को देखकर यह एक सोची समझी साजिश लगती है, जो क्रूर साम्राज्यवादी शक्ति के विरूद्ध सिर उठाने वालों को दबाने के लिये तथा लोगों में भय का माहौल व्याप्त करने के लिये की गयी कार्यवाही थी। इस घटना के बाद भी हत्यारे डायर को अपने किये पर कोई पछतावा नहीं था बल्कि उसकी तो मंशा थी कि काश मेरी गाड़ी बाग के अंदर घुस जाती तो लोगों को फौजी गाड़ी के नीचे रौंदता। इसके अलावा डायर घायलों को ऐसे ही मरने के लिये छोड़कर वहाँ से चलता बना। डायर को अपने इस वहशियाना कार्य मे भी संतोष नहीं हुआ। इसके बाद उसने पूरे शहर पर आतंक का राज बरपा दिया। भारी संख्या में लोगों की गिरफ्तारियाँ की गईं और उनकी सम्पत्ति या तो जब्त कर ली या नष्ट कर दी गई। लोगों को सरेआम चौराहों पर कोड़ों से पीटा गया। शहर की सारी सवारियाँ जब्त कर ली गईं। विशेष्रा अदालतों और मनमानी सजाओं का दौर शुरू हुआ। एकता का मजा चखाने के लिये हिन्दू और मुसलमानों को उनकी एक-एक कलाई जोड़कर हथकड़ी लगायी गयी, वकीलों को सिपाही के रूप में भर्ती कर शारीरिक श्रम करने के लिये विवश किया गया, छात्रों को 16 मील पैदल चलकर हाजिरी देने जाना पड़ता था, लोगों को पेट के बल रेंगकर चलने को विवश किया गया, सारे गोरे लोगों को सलाम करना हर भारतीय की ड्यूटी थी, प्रेस पर कठोर सेंसरशिप बैठा दी गई। पूरे देश में इस नरसंहार की कड़ी निंदा हुई और दोषी व्यक्तियों को कठोरतम सजा देने की माँग की गई लेकिन सजा देना तो दूर सरकार ने आर. डायर की तरफदारी ही की। जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड के समय पंजाब के लेफ्टिनेंट गर्वनर माइकल ओ. डायर ने इस कृत्य के संदर्भ में कहा कि– "तुम्हारी कार्यवाही ठीक है, गर्वनर इसे स्वीकार करता है।" बढ़ते असंतोष के मद्देनजर सरकार ने विवशतावश जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड की जाँच हेतु 1 अक्टूबर, 1919 ई. को लॉर्ड हण्टर की अध्यक्षता में एक आयोग का गठन किया, जिसमें हण्टर सहित आठ सदस्य थे, जिनमें 5 अंग्रेज और 3 भारतीय शामिल थे। हण्टर आयोग ने मार्च 1920 ई. में अपनी रिपोर्ट सरकार को सौंप दी। सरकार ने इसके पहले ही दोषी लोगों को बचाने के लिये इण्डेम्निटी बिल पास कर दिया। आयोग ने सम्पूर्ण प्रकरण पर लीपा-पोती करने का प्रयास किया। पंजाब के लेफ्टिनेंट गर्वनर को निर्दोष घोषित किया गया। आयोग ने आर. डायर पर दोषों का हल्का बोझ डालते हुए कहा कि आर. डायर ने कर्त्तव्य को गलत समझते हुए जरूरत से ज्यादा बल प्रयोग किया; परंतु जो कुछ किया, निष्ठा से किया। तत्कालीन भारत सचिव मान्टेग्यू ने कहा– "जनरल डायर ने जैसा उचित समझा, उनके अनुसार बिल्कुल नेकनियत से कार्य किया। अत: उसे परिस्थिति को ठीक-ठीक समझने में गलती हो गई।" डायर को उसके अपराध के लिये नौकरी से हटाने का दण्ड दिया गया। ब्रितानी अखबारों ने उसे 'ब्रिटिश साम्राज्य का रक्षक' तथा लॉर्ड सभा ने उसे 'ब्रिटिश साम्राज्य का शेर' कहा। सरकार ने उसकी सेवाओं के लिये उसे 'मान की तलवार' की उपाधि प्रदान की। एक ब्रिटिश अखबार मॉर्निंग पोस्ट ने डायर के लिये 30,000 पांउण्ड की धनराशि इकट्ठा की थी। पंजाब के लेफ्टिनेंट गर्वनर माइकल ओ. डायर की उधम सिंह ने मार्च 1940 ई. में लंदन में हत्या कर दी।

इन्हें गिरफ्तार कर मृत्युदण्ड दे दिया गया। जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड की जाँच के लिये कांग्रेस ने भी पं. मदन मोहन मालवीय की अध्यक्षता एवं गाँधी जी की सदस्यता के साथ एक तहकीकात कमेटी गठित की। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट में अधिकारियों के इस बर्बर कृत्य के लिये उन्हें निन्दा का पात्र बनाया एवं सरकार से दोषी लोगों के खिलाफ कार्यवाई तथा मृतकों के परिवारों को आर्थिक सहायता देने की माँग की परंतु सरकार ने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया। फलस्वरूप गाँधी जी ने असहयोग आन्दोलन चलाने का निर्णय लिया।

अमृतसर के अलावा पंजाब के 4 अन्य जिलों लाहौर, गुजराँवाला, गुजरात एवं लायलपुर में भी यही हाल रहा। यहाँ पर सरकार ने आन्दोलन को दबाने के लिये क्रूरता और कठोरता का नंगा एवं वीभत्स नृत्य आयोजित किया। 14 अप्रैल को गुजराँवाला एवं आसपास के गाँवों पर हवाई हमले किये गये, सैनिक अदालतों द्वारा लोगों को बेंत लगाने की सजा दी गई और लोगों को ज़मीन पर नाक रगड़ने के लिये विवश किया गया, पंजाब की चिलचिलाती धूप में पूरी आवादी को पूरे दिन खड़ा रखा गया। इस जनव्यापी राजनीतिक कार्यवाई के दौरान पूरे पंजाब में मात्र 4 अंग्रेज मारे गये थे जबकि कम से कम 1200 भारतीय शहीद हुए और 3600 घायल हुए। यही हाल अन्य केन्द्रों पर भी आन्दोलन को कुचलने के लिये किया गया।

संदर्भ सूची

1. मित्तल, डॉ. सतीश चन्द्र; जलियाँवाला बाग नरसंहार : एक ऐतिहासिक विश्लेषण, प्रकाशन विभाग, अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना, नई दिल्ली, 2019
2. मित्तल, डॉ. सतीश चन्द्र; भारत का संक्षिप्त इतिहास, सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014
3. मित्तल, डॉ. सतीश चन्द्र; आधुनिक भारतीय इतिहास : चिन्तन तथा लेखन, वर्तमान स्वरूप तथा चुनौतियाँ, प्रकाशक विभाग, अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना, नई दिल्ली, 2018
4. शुक्ल, रामलखन; आधुनिक भारत का इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2010
5. चन्द्रा, विपिन; भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, हिन्दी माधयम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2015
6. बंद्योपाध्याय, शेखर; प्लासी से विभाजन तक और उसके बाद : आधुनिक भारत का इतिहास, ओरिएंट ब्लैकस्वॉन, नई दिल्ली, 2015
7. सरकार, सुमित; आधुनिक भारत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1993
8. पाण्डे, एस.के.; आधुनिक भारत, प्रयाग एकेडमी पब्लिकेशन, 2012
9. ग्रोवर, बी.एल.; यशपाल, आधुनिक भारत का इतिहास, एस. चन्द एण्ड कम्पनी लि., नई दिल्ली, 2003
10. महाजन, विद्याधर; आधुनिक भारत का इतिहास, एस. चन्द एण्ड कम्पनी लि., नई दिल्ली
11. मित्तल, डॉ. ए.के.; भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, 2001
12. मित्तल, डॉ. सतीश चन्द्र; कांग्रेस : अंग्रेज-भक्ति से राजसत्ता तक, प्रकाशन विभाग, अखिल भारतीय

इतिहास संकलन योजना, नई दिल्ली, 2011

13. सिंह, प्रताप; आधुनिक भारत, रिसर्च पब्लिकेशन, जयपुर
14. जैन, डॉ. पुखराज; भारत में स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, 2003
15. Majumdar, R.C.; History of the Freedom Movement in India, Vol.-I, Firma K.L., Mukhopadhyay Pvt. Ltd., 1963
16. फजल, रेहान; जनरल डायर : कहानी जलियाँवाला बाग के कसाई की, बी.बी.सी. न्यूज हिन्दी, 13 अप्रैल, 2019
17. सिंह, हरजेश्वर पाल; जलियाँवाला हत्याकाण्ड : क्यूँ चलाई डायर ने गोली, बी.बी.सी. न्यूज हिन्दी, 14 अप्रैल, 2019
18. भारद्वाज, अनुराग; जलियाँवाला बाग नरसंहार : नरसंहार, जिसने चर्चिल जैसे हिन्दुस्तान विरोधी को भी हिलाकर रख दिया था, सत्याग्रह, 2019
19. स्वतंत्रता संग्राम में सामूहिक आत्म बलिदान का अनुपम प्रसंग, विश्व संवाद केन्द्र भोपाल, 16 अप्रैल, 2019

पुराणों में इतिहास दृष्टि

*डॉ. पद्मजा सिंह

प्राचीन भारतीय समाज के विविध पहलुओं का ज्ञान हमें जिन साहित्यिक स्रोतों से होता है उनमें 'पुराणों' का विशेष स्थान है। प्राचीन भारतीय इतिहास के उद्घाटन में पौराणिक ग्रन्थों की महत्ता सर्वस्वीकार्य है। वस्तुतः पुराण अनन्त ज्ञानराशि के भण्डार हैं। इनका साहित्य अत्यन्त विशाल है। लौकिक तथा पारलौकिक ज्ञान-विज्ञान के सभी विषय इनमें भरे पड़े हैं। त्रिकालदर्शी ऋषियों की ज्ञान-साधना के परिणाम हैं पुराण। वस्तुतः धर्मनीति, राजनीति, सदाचार, अर्थशास्त्र, तत्त्वज्ञान आदि का जो उल्लेख वैदिक ऋषियों ने वेदों में सूत्ररूप से किया है, उनका सरस और विस्तृत रूप पुराणों में प्राप्त होता है। पुराण वेदार्थ के ही बोधक हैं। पुराणों में वैदिक तत्त्वों की आख्या विविध कथा-दृष्टान्तों द्वारा की गई है। कहा गया है कि पुराणों के ज्ञान के बिना वेदों का भी ज्ञान पूर्णरूपेण नहीं हो सकता। जैसा कि नारद पुराण में कहा गया है– **वेदाः प्रतिष्ठिताः सर्वे पुराणेष्वेव सर्वदा।** महाभारत में भी इस बात का उल्लेख मिलता है कि वेद की व्याख्या इतिहास और पुराणों से ही की जा सकती है। यथा– **इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।** वायुपुराण कहता है कि जो द्विज अंगोसहित चारों वेदों को जानता है, किन्तु पुराणों को नहीं जानता, वह पण्डित कदापि नहीं हो सकता। यथा–

यो विद्याच्चतुरो वेदान् सांगोपनिषदो द्विजः।
न चेत पुराणं से विद्यात् नैव स स्याद् विचक्षणः॥

भारतीय संस्कृति के मूलाधार के रूप में वेदों के अनन्तर पुराणों का सम्मानपूर्ण स्थान है। वेदों में वर्णित अगम रहस्यों तक जनसामान्य की पहुँच नहीं हो पाती, परन्तु भक्तिरस से परिपूर्ण पुराणों की शैली से आमजन वैदिक परम्परा को आत्मसात कर सकता था। वायुपुराण में पुराणों की महिमा बताते हुए कहा गया है–

यस्मात् पुरा ह्यनतीदं तेन तत् स्मृतम्।
निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते।

---

*असिस्टेंट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

महाभारत के आदिपर्व में भी कहा गया है कि पुराणों को पवित्र कथाएँ धर्म-अर्थ को देने वाली हैं - **पुराणसंहिताः पुण्याः कथा धर्मार्थसंश्रितः।**

पुराणकार स्वयं पुराणों को वैदिक परम्परा का विस्तार मानते हैं। नारद पुराण में कहा गया है कि वेद पुराणों में प्रतिष्ठित हैं। यथा- **'वेदाः प्रतिष्ठिताः सर्वे पुराणेश्वेव सर्वदा।'** श्रीमद्भागवत् में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि इतिहास पुराण पाँचवाँ वेद है- **इतिहासं पुराणं च पंचमो वेद उच्यते।** इस प्रकार के उल्लेख वैदिक एवं पौराणिक ग्रन्थों में अनेकत्र देखे जा सकते हैं। वस्तुतः भारत के प्राचीन इतिहास का अध्ययन और ज्ञान पुराणों के ऐतिहासिक विवेचन के बिना अधूरा है। पौराणिक साहित्य भारतीय इतिहास को समझने और जानने की कुंजी है। सृष्टि के विकास-क्रम का इतिहास पुराणों में कथाओं, आख्यानों, जीवन चरित्रों, संवादों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। पुराणों में सर्वाधिक श्लोक स्कन्दपुराण में मिलते हैं। यह सात खण्डों में विभाजित है। सभी खण्डों को मिलाकर कुल 81100 श्लोक हैं। इस महापुराण में माहात्म्यकथाओं के प्रसंग में जो विभिन्न इतिहास तथा जीवन चरित्र का वर्णन हुआ है, वे बड़े महत्त्व के हैं। उनमें लौकिक, पारलौकिक, पारमार्थिक, सभी प्रकार के वर्णन हैं। विभिन्न प्रसंगों में धर्म, सदाचार, योग, ज्ञान, शक्ति आदि का बड़ा ही सुन्दर निरूपण किया गया है। तीर्थों के वर्णन में जो भूवृत्तान्त आया है, वह तो अत्यन्त आश्चर्यकारक और भूगोल के विद्वानों के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। मार्कण्डेय और ब्रह्मपुराण में अनेक साधन, उपदेश और आदर्श चरित्र भरे हैं, जिनसे मनुष्य सहज ही अपने अभ्युदय तथा निःश्रेयस का पथ प्राप्त कर सकता है। तीर्थ माहात्म्य, भगवद्भक्ति, ज्ञान, योग, सदाचार, आदि का कथानकों के माध्यम से बड़ा ही रोचक, मनोहर, गम्भीर और मार्मिक वर्णन इनमें प्राप्त होता है। नारद और विष्णु पुराण बड़े ही महत्त्व के सात्विक पुराण माने जाते हैं। नारद पुराण में पुराणोचित महत्त्व के प्रसंग तो हैं ही, उसमें वेद के छः अंग- शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छनद का विस्तारपूर्वक महत्त्वपुर्ण और मौलिक उल्लेख है। नारद पुराण के तीसरे पाद में सकाम उपासना का भी वर्णन मिलता है। ब्रह्मवैवर्त पुराण वैष्णवप्रिय होने के साथ-साथ कई दृष्टियों से उपयोगी है। इस पुराण के अध्ययन और उपयोग से देश एवं समाज के वर्तमान संकट, तन-धन-जन की रक्षा, खोई हुई शक्ति-सम्पत्ति और मेधा को पुनः प्राप्त कराने, संग्राम में आसुरी शक्तियों का विनाश करने आदि में आसानी से सफलता मिल सकती है। इसी प्रकार अन्य पुराणों का अध्ययन और उनकी युगानुकूल व्याख्या तथा उनके सार-तत्त्व का निरूपण मानव समाज के उत्थान एवं विकास के लिए अत्यन्त उपयोगी हो सकता है। अतः अब तक के पाश्चात्य ऐतिहासिक दृष्टि के घेरे से निकलकर भारत को भारतीय मन तथा भारतीय दृष्टि से समझने की समझ पैदा करने तथा भारत की अमूल्य साहित्यिक-धार्मिक साहित्यों पर अत्याधुनिक युग के परिप्रेक्ष्य में शोध की आवश्यकता है।

दुनिया के श्रेष्ठतम मानव समाज का इतिहास और उच्च मूल्यों से युक्त जीवन पद्धति को संजोये पौराणिक ग्रन्थों को यह कहकर नहीं उपेक्षित किया जा सकता कि वे धार्मिक दृष्टि से

विवेचित आख्यान हैं, कल्पना हैं, कथा हैं इत्यादि।[2] हमें ऐसे में सामाजिक जीवन की युक्तिसंगत विवेचना करनी होगी और विश्व के समक्ष श्रेष्ठ जीवन पद्धति का प्रतिरूप जो पुराणों में है, उसे ऐतिहासिक दृष्टि से विवेचित कर मानव कल्याण हेतु प्रस्तुत करना होगा। धार्मिक दृष्टि से सराबोर यदि कोई समाज नैतिक-आचारवान जीवन जीता है तो उसकी इतिहास में भी प्रतिष्ठा होनी चाहिए। पुराणों में जिस भारतीय समाज का चित्रण है यदि उसका प्रतिमान हम विश्व के मानव समुदाय के समक्ष प्रस्तुत करें तो विश्व का कल्याण-मार्ग ही प्रशस्त होगा।

ऋग्वेद में पुराण विशेषण है[3] पुरातन इतियों का पुराण के सर्ग-प्रतिसर्ग-ब्रह्माण्डीय वर्णन मूल रूप से श्रुति-स्मृति 'ना मूलं लिख्यते-किंचित्' को प्रमाणित करता है।

पुराण शब्द का अर्थ विकास

ऋग्वेदादि के कतिपय शब्दों का प्रथम निर्वचन यास्क ने किया है। ऋग्वेद में उल्लिखित 'पुराण' शब्द का अर्थ 'पुरा नवं भवति' अर्थात् जो प्राचीन होकर भी अर्वाचीन होता है। पुराण का यह सनातन संवादात्मक अर्थ है। 'इतिहास पुराणाभ्याम् वेदं समुपबृंहयेत' रूप से पुराण शब्द का अर्थ उपबृंहित हुआ है। वायु पुराण के अनुसार (1/203) 'पुरा अनति इति पुराण:?' अर्थात् प्राचीन काल में जो विद्यमान था। इसी प्रकार पद्म पुराण (5/2/53) का कथन है कि 'पुरा परम्परा वष्टि पुराणं तेन तम स्मृतम' अर्थात् जो प्राचीन परम्परा की कल्पना करता है, वह पुराण है। पुराण शब्द का अर्थ-विकास आधुनिक काल के 'प्रज्ञा-पुराण' तक प्रवर्धित हुई है। ध्यातव्य तथ्य यह है कि परम्परा अपने में लोक की प्रथित प्रथाओं को समाहित करती हुई पुरस्सर होती है। इस दृष्टि से पुराण एक विद्या है।[4] इसी लोक तथ्य का उल्लेख कुमारिका खण्ड (40/198) में किया गया है– "इतिहास-पुराणानि भिद्यन्ते लोक-गौरवात" अर्थात् लोक गौरव को अपने में समाहित करने से पुराणों में भिन्नता दिखाई देती है। लोकपरम्परा की पुष्टि वात्स्यायन ने न्याय भाष्य में किया है कि "लोक वृतम इतिहास पुराणस्य विषय:।"

पुराण-इतिहास की प्राचीनता

विश्व के विद्वान इस तथ्य से एकमत हैं कि ऋग्वेद प्राचीनतम वाङ्मय है। ऋग्वेद में उल्लेख है कि "सना पुराणं अधयेमिआरात्"[5] अब मैं सदा होने-रहने वाले पुराण का अध्ययन करता हूँ। ऋग्वेद में पुराण का अनेकत्र उल्लेख किया गया है।[6] परन्तु ऋग्वेद में 'इतिहास' शब्द अप्राप्य है। इससे यह संकेतित है कि 'पुराण' प्राक्वैदिक काल में व्यवहृत था। 'इतिहास' शब्द का प्रथम उल्लेख हमें अथर्ववेद के व्रातकाण्ड में प्राप्त होता है-"स बृहतीं दिशम अनुव्यचलत, ताम इतिहासश्च पुराणं च गाथाश्च नाराशंसी च अनुव्यचलत"[7]। अर्थात् व्रती-संकल्पी महान लक्ष्य (दिशा) की ओर जब चलता, उसका अनुकरण इतिहास, पुराण, गाथा और नाराशंसी करते हैं।

उपर्युक्त उल्लेखों से प्रमाणित है कि पुराण की प्राचीनता प्राक् ऋग्वैदिक और इतिहास परवर्ती है। जैन तथा बौद्ध परम्परा भी पुराण को स्वीकार करती है।

इतिहास-पुराण लक्षण

प्राचीन ग्रन्थों में प्रायः द्वन्द्व समास में ही इतिहास पुराण का उल्लेख किया गया है। आधुनिक इतिहास के अनिवार्य लक्षणों में - प्रघटना, देश, काल, कारण, परिणाम माना जाता है। प्रायः पुराण के पंच लक्षणों में सर्ग, प्रतिसर्ग, मन्वन्तर, वंश, वंशानुचरित। पुराण लक्षणों का विकास - रक्षा, वृत्ति, संस्था, हेतु, उपाश्रय में हुआ।[७] प्रकारान्तर से स्थानम्, पोषणम्, अतमः, ईशानुकथा, निरोध, मुक्ति आदि को भी पुराण लक्षण में परिगणित किया गया। पौराणिक इतिहास लक्षण में ब्रह्माण्ड की दृष्टि है- सर्ग अर्थात् ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति विद्या का विवेचन है। मन्वन्तर के अन्तर्गत पृथ्वी उत्पत्ति एवं मानव प्रजाति का। इस प्रकार सर्ग, प्रतिसर्ग, मन्वन्तर, वंश, वंशानुचरित की जो परिगणना की गयी है, उसका संकेत हिमाद्रि के पंच लक्षणों देश, काल, हेतु, क्रिया, संकीर्तन के संकल्प रूप में किया गया है।[८]

देश-स्थान संकल्प

"अनन्त कोटि ब्रह्माण्डेषु स्वीय कक्षायां भ्रमणानां - कतिपय आदित्यानां मध्ये स चन्द्र, बुद्ध, शुक्र, शनि, वरुण, कुबेर प्रभृत ज्ञात-अज्ञात ग्रह संभूत सूर्य मालायां द्वाविंशत प्रकाश पातालन्तरे चन्द्र सहितं सूर्य परिक्रमा कुर्वन्त्या पृथिव्याः सप्तार्णव परिवृत्ते इलावर्ते-जम्बूद्वीपे भारतखण्डे-शिवालक पर्वतोप्रान्ते गोरक्षप्रान्तेः गोरखपुर मण्डले, अचिरावती नदी तीरे, गोरखपुर नगरे दिग्विजयनाथ महाविद्यालये गोष्ठी कार्य हेतु उपस्थित तो बयं अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना, कार्यकारिणी सदस्याः।" इस देश स्थान संकल्प मंत्र में ब्रह्माण्ड से लेकर क्रमशः सूक्ष्म-सूक्ष्मतर तथा सूक्ष्मतम देश-स्थान का स्मरण परम्परा पौराणिक इतिहास का विधायन अद्यतन लोक जीवन में जीवन्त है।[९]

काल-संकल्प

"श्रीमद्भगवतो महापुरुषस्य प्रवर्तमानस्य वर्तमान ब्रह्माणो द्वितीय परार्धे श्री श्वेत वराह कल्पे प्रथम दिवसे वैवस्वत-मन्वन्तरे अष्टाविंशति तमे युग चतुष्के कलि-मिते...युगाब्दतमे-संवत्सर चक्रे... नाम्नि संवत्सरे उत्तरायण अयने वसन्त ऋतौ चैत्र मासे कृष्णपक्षे चतुर्दशी रविवारे अद्य[१०].... आदि का यहाँ संक्षिप्त उल्लेख किया गया है। इसी प्रकार हेतु, क्रिया (प्रघटना) का संकीर्तन भी पौराणिक-इतिहास परम्परा में प्राप्त है।

भारतीय विद्या के विश्वविश्रुत विद्वान वासुदेवशरण अग्रवाल ने पौराणिक काल-गणना के सम्बन्ध में लिखा है कि "यह सृष्टि चार अरब, बत्तीस करोड़ वर्ष की है। इसे एक कल्प कहते हैं।

इसमें एक सहस्र चतुर्युगी और चौदह मन्वन्तर होते हैं। एक चतुर्युगी (कृत, त्रेता, द्वापर, कलि) में 43 लाख 20 हजार वर्ष होते हैं। एक कलियुग – 4 लाख 32 हजार वर्ष का है।[११] ऋग्वेद की अक्षर संख्या भी 4,32,000 है। एक कल्प – एक सृष्टि। इसके बाद प्रलय भी एक कल्प के बराबर ही होता है। एक सृष्टि, ब्रह्मा का एक दिन है। प्रलय उसकी रात्रि है। इस क्रम में ब्रह्मा की आयु सौ वर्ष की होती है। यही सृष्टि-सनातन काल का चक्र है। ब्रह्माण्ड के विभिन्न पिण्डों की इतियों द्वारा प्रक्षेपित किरणों की गति की गणना भारतीय ज्योति विज्ञान (ज्योतिष) के आधार पर पुराण में किया गया है।

रोमन-सृष्टि उत्पत्ति

रोम के पादरी यूषर (*USHER*) ने 17वीं शताब्दी के मध्य यह घोषणा की कि इस पृथ्वी की उत्पत्ति 4004 ई.पू. में 22 अक्टूबर को प्रातः नौ बजे हुई।[१२] इस घोषणा को स्वीकार करना अनिवार्य कर दिया गया और इसे न मानने वाले के लिए दण्ड का विधान किया गया। यूषर की तिथि को आधार मानकर ही मैक्समूलर ने ऋग्वेद की अवैज्ञानिक तिथि 1500 ई.पू. निर्धारित किया।

पौराणिक इतिहास लेखन-कथन की विद्या

महाभारतकार ने लिखा है कि–

"धर्म अर्थ काम मोक्षाणाम् उपदेश समन्वितम्।
पूर्ववृत्तं कथा युक्तम् इतिहास प्रचक्षते॥"

अर्थात् शतायु जीवन के पुरुषार्थों की धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का उद्दाम आकांक्षी के पूर्व कृत कृतियों का वृत्त (इतिहास) लोकरंजनात्मक विद्या में उपदेश से समन्वित लिखना-कहना चाहिए। विश्व की महान विभूतियों, कृष्ण, महावीर, बुद्ध, क्राइस्ट, मुहम्मद आदि ने स्वयं कुछ भी नहीं लिखा, उनके उपदेश ही ऐतिहासिक थाती बन गयी। उसी प्रकार प्राचीन पुराणकारों के उपदेश कथा रूप में इतिहास प्रसिद्ध हैं। कथा (इतिहास) का कथन अतिरंजनात्मक होती है। उसके अर्थ तत्त्व को ग्रहण करने की क्षमता सामान्य जन में नहीं होती है, जैसे घोड़ा तेज दौड़ रहा है, घोड़ा आसमान में है। कथन अभिधान लक्षणा, व्यंजना में है। शब्द शक्तियों की अज्ञानता के कारण कथन कथा अतिशयोक्ति प्रतीत होती है। इसलिए व्याख्याएँ अलौकिक हो जाती हैं, जबकि सभी पुराण-कथन लौकिक इतिहास हैं।

पौराणिक भुवन-कोष

पुराणों का प्रिय विषय पृथ्वी तथा पृथ्वी पर विद्यमान महाद्वीप, द्वीप, द्वीपान्तर, पर्वत, नदियाँ, वन, प्रान्तर, जन, जन सन्निवेश रहा है। आधुनिक भाषा में जिसे विश्व कोश कहा जाता है, उससे

वृहत्तर भाग भुवन-कोश है। 16वीं सदी ई. तक 'यूरोप' नामक कोई भौगोलिक संज्ञा न तो विश्व में प्रसिद्ध थी, न तो स्वयं इन तथाकथित यूरोपीय देशों में।[13] यूरोप संज्ञा तो 19वीं सदी ई. में जर्मन-भूगोलवेत्ता कार्ल कृतेर ने दिया।[14] इसीलिए पौराणिक भुवन-कोश में यूरोप अमेरिका आदि के स्थानों पर तत्कालीन भू-प्रदेशों का नाम प्राप्त है। ध्यातव्य तथ्य यह है कि पुराण प्राचीन 'ब्रह्माण्ड-कोश' हैं, जिनमें देश-काल परिवर्तन के सभी ज्ञात विषयों का समावेश है। मानवीय इतिहास के साथ ही साथ सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का इतिहास है। आधुनिक विज्ञान अपनी विभिन्न विधाओं से पौराणिक इतिहास की पुष्टि करता जा रहा है।

पुराणों में इतिहास

भारतीय प्रतिमा के अमन्द उन्नयन का अनाविल आदर्श, एतन्निहित अनिन्द्य मेधा के सन्दर्शन का विराट बोधि वृक्ष एवं अस्मद्देशीय संस्कृति का हिरण्यगर्भित अग्रसवर्तन का संस्मरणीय साक्ष्य-सन्दोह वैदिक वाङ्मय है तथा उसके 'समुपबृंहण' (इतिहास पुराणाभ्याम् वेदं समुपबृंहयेत्) एवं 'संग्रहण' (आख्यानैश्चोपाख्यानैः गाथाभिः कल्पजोक्तिभिः पुराण-संहितांचक्रे पुराणार्थ विशारदः) से सम्बन्धित क्रिया का परिणाम पुराण साहित्य है। अथर्ववेद यह स्पष्ट कर देता है कि ब्रात्यों (एक मत के अनुसार अनार्यजाति किन्तु अन्य मत के अनुसार आर्यों की पुरातन शाखा) के पद-चिह्नों का अनुगमन सारस्वत परिवेश के जिन संघटकों ने किया, वे इतिहास, पुराण, गाथा तथा नाराशंसी थे (तमितिहासपुराणं चे गाथाश्च नाराशंसीश्चानु व्यचलन्)। अथर्ववेद के अनुसार पुराण, पुरातन कल्पों (वृत्तों) का द्योतक है, तथा घटनाओं का यथातथ्य निदर्शन इतिहास है (इति+ह+आस) गाथा एवं नाराशंसी भारत-ईरानी (इण्डोईरानियन स्तर) से सम्बन्धित है, जबकि अवेस्ता के एक भाग को ही 'गाथा' कहते थे। इसी प्रकार नाराशंसी का अवेस्ता में वर्णित समस्तरीय शब्द 'नइर्योसङ्' है। उत्तर वैदिक काल में इतिहास एवं पुराण दोनों को समान कोटि में रखा जाता था। दोनों को ही 'ऐतिह्य' की संज्ञा प्राप्त हुई थी (इतिहस्य भावः ऐतिह्यम्-व्यञ् प्रत्यय)।

प्रस्तुत सन्दर्भ में कृष्ण यजुर्वेदीय शाखा के तैत्तिरीय आरण्यक में निम्नोक्त वर्णन प्राप्त होता है- 'स्मृतिः प्रत्यक्षनैतिह्यम्'। इस वाक्य पर सायण-भाष्य वक्ष्यमाण है- "स्मृतिसुमेय श्रुति मूलं मन्वादिशास्त्राम्। प्रत्यक्षं सर्वपुरुषाणां श्रोत्रेण ग्राह्यं वेदवाक्यं च। ऐतिह्यमितिहास पुराण महाभारत ब्राह्मणादिकम्।" प्रस्तुत भाष्य में स्पष्टतया इतिहास एवं पुराण दोनों को ही अतीत कालीन घटनाओं का यथार्थ निदर्शक माना गया है। स्वयं पुराण ग्रन्थ 'इतिहास' के उक्त स्वरूप का अंगीकरण करते हैं, जिसका विशदीकरण एवं स्पष्टीकरण 'अत्राप्युदाहरन्ति इतिहासं पुरातनम्' जैसी पंक्तियों में होता है। इसी आशय का अभिव्यक्तिकरण यास्क ने निरुक्त में किया है- "पुराणं कस्मात्। पुरा नवं भवति। नवं कस्मात्। आनीतं भवति।" प्रस्तुत विमर्श में एक प्रमुख प्रश्न यह उठता है कि पुरातन ग्रन्थों में इतिहास एवं पुराण शब्दों के तात्पर्य एवं अभिव्यजन में भिन्नता स्थापित करने का प्रयास किया गया

है अथवा नहीं। वस्तुतः इस प्रसंग में विरोधात्मक विवरण प्राप्त हैं। प्रस्तुत स्थिति को स्पष्ट करने के लिए दो भाष्यकारों के साक्ष्य प्रस्तुत किये जा सकते हैं– सायण एवं शंकर। शतपथ ब्राह्मण के स्थलों की व्याख्या करते हुए सायण ने इतिहास की परिभाषा में ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति को निरूपित करने वाले आख्यानों को सम्मिलित किया है तथा पुराण की परिभाषा में उन आख्यानों को रखा है, जो पुरुरवा एवं उर्वशी से सम्बन्धित एवं समनुवर्ती वर्णनों को निरूपित करते हैं। किन्तु शंकर ने इसकी प्रतिवर्तित व्याख्या को प्रस्तुत किया है। वृहदारण्यक उपनिषद्[१४] पर टिप्पणी करते हुए शंकर का कथन है कि ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति से सम्बन्धित कथानक पुराण के अन्तर्गत आते हैं तथा पुरुरवा–उर्वशी की कथा अर्थात् राजवंशों से सम्बन्धित वृतान्त निरूपित करने वाले विवरण इतिहास की परिधि में आते हैं– "पुराणम्–असद्वा इदमग्र आसीत् इतिहास इति–उर्वशी पुरूरवसोः संवादादिः"। वैदिक ग्रन्थों के मूल स्थलों में दोनों ही शब्द सन्दर्भित मिलते हैं किन्तु दोनों को परस्पर भिन्न–भिन्न माना गया है। उदाहरणार्थ, शतपथ ब्राह्मण में अश्वमेध के विषय में कहा गया है कि इस अवसर पर आठवीं पारिप्लव रात्रि में इतिहास एवं नवीं पारिप्लव रात्रि में पुराण का श्रवण–श्रावण अपेक्षित है। गोपथ ब्राह्मण[१५] ने सपर्वेद, पिशाचवेद, असुरवेद, इतिहासवेद एवं पुराणवेद का सम्बन्ध पाँच पृथक महात्याहृतियों से मानकर इनके पृथक अस्तित्व की ओर इंगित किया है। इन दोनों को परस्पर भिन्न मानने की प्रवृत्ति उत्तरकालीन स्तरों पर चलती रही। उदाहरणार्थ, मनुस्मृति का कथन है कि श्राद्ध के अवसर पर धर्मशास्त्र, आख्यान, इतिहास एवं पुराण के स्वाध्याय एवं श्रवण की व्यवस्था अपेक्षित है:

"स्वाध्यायं श्रावयेत् पित्र्ये धर्मशास्त्राणि चैव हि।
आख्यानानीतिहासांश्च पुराणानि खिलानी च॥"

उक्त श्लोक पर मनुस्मृति के उत्तरमध्यकालीन टीकाकार मेधातिथि ने अपनी व्याख्या प्रस्तुत करते हुए इतिहास एवं पुराण को परस्पर भिन्न स्वीकार किया है– "इतिहास महाभारतादयः। पुराणानि व्यासादि प्रणीतानि सृट्यादिश्च निरूपाणि।"

इसके अतिरिक्त यह भी एक विचारणीय प्रश्न है कि द्वन्द्व समास में उल्लिखित 'इतिहास–पुराण' शब्द के सन्दर्भ में दोनों में भिन्नता किस प्रकार स्थापित की जा सकती है। प्रस्तुत प्रश्न का समाधान यास्ककृत 'निरुक्त' के द्वारा किया जा सकता है। पुराण शब्द के व्युत्पत्तिपरक अर्थ के विषय में यास्क का कथन है कि जिस विशेष माध्यम से प्राचीन वृत्तों को अर्वाचीन परिवेश में उद्घाटित किया जाता है, उसे पुराण कहते हैं– "पुराणं कस्मात्। पुरा नवं भवति।" ऐसा प्रतीत होता है कि प्रारम्भ में कल्पना–सापेक्ष एवं तथ्य सापेक्ष दोनों प्रकार के कथानकों को पुराण शब्द से अभिव्यंजित किया जाता था। इस आशय के स्थल सबसे पहले अथर्ववेद में प्राप्त होते हैं तथा आगे चलकर ऐसे स्थलों का व्यवहार पुराणों में भी किया गया। यथा–

(क) "ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह।
उच्छिष्टा ज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवादिविश्रितः।।"-अथर्ववेद, 11.7.24

(ख) "पुराणं सर्वशास्त्राणां ब्रह्माणा प्रथमं स्मृतम्।"-ब्रह्माण्डपुराण, 1.1.40 तथा मत्स्यपुराण, 3.3

(ग) "पुरातनस्य कल्पस्य पुराणानि विदुर्बुधाः।।"-मत्स्य पुराण, 43.62

यह सम्भावित है कि उत्तरकाल में कल्पना-सापेक्ष एवं तथ्य-सापेक्ष कथानकों में भिन्नता स्थापित करने का प्रयास किया गया; तथा कल्पना-सापेक्ष कथानकों को पुराण एवं तथ्य-सापेक्ष कथानकों को इतिहास की परिधि में सम्मिलित किया गया। इसीलिए निरुक्त के दुर्गा-भाष्य में 'जो निश्चित रूप से घटित हुआ है' उसे इतिहास की संज्ञा प्रदान की गयी है- 'इति ह एवम् आसीत् इति य उच्यते स इतिहासः।' इस सन्दर्भ में स्वयं यास्क ने इतिहास का उदाहरण दिया है, वह इसी आशय से मेल खाता है- "तत्रेतिहासमाचक्षते। विश्वामित्र ऋषिः सुदासः पैजवनस्य पुरोहितो बभूव।"

पुराण एवं इतिहास में भिन्नता के द्योतक उक्त साक्ष्यों के बावजूद सामान्यतया इन दोनों में एकता स्थापित करने की प्रवृत्ति चल रही थी। उदाहरणार्थ, वायु एवं ब्रह्माण्ड ये दोनों ही पुराण[१७] अपने आपको इतिहास घोषित करते हैं-

"इदं यो ब्राह्मणो विद्वानितिहासं पुरातनम्।
श्रृणुयाच्छावये द्वापितथाऽध्यायतेऽपि च।।"

इसी प्रकार की सूचना पद्म पुराण से भी प्राप्त होती है, जो अपने आपको मुनीश्वर शाण्डिल्य द्वारा इतिहास घोषित करता है:

"इतिहासमिमं पुण्यं शाण्डिल्योऽपि मुनीश्वरः।
पठते चित्रकूटस्थो ब्रह्मानन्दपरिप्लुतः।।"

उक्त आशय का ही साक्ष्य कौटिल्य के अर्थशास्त्र[१८] में भी प्राप्त होता है जिसमें पुराण को इतिहास का अंग घोषित किया गया है: "पुराणमितिवृत्तमाख्यायिकोदाहरणं धर्मशास्त्रमर्थशास्त्रं चेतिहासः।" इसी प्रकार उत्तरकालीन कोशकारों एवं टीकाकारों के विवरण एवं व्याख्या से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि इतिहास एवं पुराण एक ही आशय के द्योतक माने जाते थे। एतदर्थ अमरकोश एवं महाभारत के टीकाकार नीलकण्ठ[१९] के साक्ष्य प्रस्तावित किये जा सकते हैं। यहाँ इतिहास एवं पुराण दोनों को 'पुरावृत्त' कहकर दोनों में अभेद सम्बन्ध निरूपित किया गया है। याज्ञवल्क्य स्मृति के काल तक सम्भवतः पुराण शब्द में पुराण एवं इतिहास दोनों का ही आशय समाहित हो चुका था, क्योंकि पुराण अब पर्याप्त व्यापक ज्ञान क्षेत्र से जुड़ चुके थे। इस स्मृति में धर्म के चौदह स्थानों (स्रोतों) में केवल पुराण की गणना की गयी है न कि इतिहास अथवा इतिहास पुराण की।[२०] इस प्रकार की मान्यता विष्णु पुराण से भी प्रमाणित होती है।[२१] महाभारत के एक उल्लेख[२२] से उक्त स्मृतिकार की इस ध

रणा की सम्पुष्टि की जा सकती है कि इतिहास भी धर्मशास्त्र से सम्बद्ध ग्रन्थ माने जाते थे। अतः पुराण में इतिहास का अन्तर्भाव भारतीय चिन्तन धारा में यथेष्ट लगता है।

यहाँ प्रसंगतः 'आख्यान' की प्राचीनता पर भी विचार किया जा सकता है। सामान्यतया विद्वानों ने आख्यान का तात्पर्य ऐसे कथानकों से माना है, जिनमें ऐतिहासिक तत्त्व विद्यमान होते हैं।[२३] आख्यानों के सन्दर्भ ऋग्वेद से ही मिलने लगते हैं। निरुक्त एवं वृहद्देवता के अनुसार ऋग्वेद के ऐसे अनेक मन्त्र हैं जो आख्यानों के संकेतक प्रतीत होते हैं।[२४] ऐसा विचार है कि पुरुरवा और शुनःशेष के आख्यान ऋग्वैदिक मन्त्रों पर आधारित हैं; अथवा यह भी सम्भावित है कि ये आख्यान ऐसी परम्परा पर आधारित हैं, जिनकी प्रतिच्छाया ऋग्वेद के मन्त्रों में प्रतीत होती है।[२५] संस्कृत नाट्यशैली के अनुरूप ही इनका स्वरूप संवादात्मक है, यही कारण है कि इनके परिप्रेक्ष्य में ऋग्वैदिक काल में अर्धनाटकीय आख्यान साहित्य के अस्तित्व की सम्भावना की गयी है। इसके अतिरिक्त ऐतिहासिक वृत्तों के अभिव्यंजक होने के कारण इनके सन्दर्भ में अर्धऐतिहासिक महाकाव्यीय आख्यान साहित्य के अस्तित्व का अनुमान भी किया गया है। ऐसी स्थिति में इन आख्यानों को उत्तरकालीन ऐतिहासिक नाट्यग्रन्थों एवं काव्यों का स्रोत भी माना गया है।

ब्राह्मण ग्रन्थों से विदित होता है कि उत्तरवैदिक काल में आख्यानों की परम्परा पर्याप्त रूप से प्रचलित हो चुकी थी। शतपथ ब्राह्मण में उन पारिप्लव आख्यानों का उल्लेख मिलता है, जिन्हें यज्ञाश्व की पर्यटन अवधि पर्यन्त पूरे वर्ष तक अश्वमेध के अवसर पर सुनना अपेक्षित था। यद्यपि शतपथ ब्राह्मण में आख्यान एवं इतिहास में भिन्नता स्थापित है।[२६] तथापि ऐसा प्रतीत होता है कि आगे चलकर पौराणिक युग में आख्यान को इतिहास पुराण परम्परा में सम्मिलित कर लिया गया था। एतन्निदर्शक मत्स्यपुराण का पूर्वोक्त साक्ष्य प्रस्तावित किया जा सकता है, जिसके अनुसार पुराणों के पंच-लक्षण आख्यान की संज्ञा से अभिहित किये जाते थे।

पुराणों के ऐतिहासिक तत्त्व का परिशीलन करते हुए ए.के. बार्डर ने उस मूल पुराण की परिकल्पना की है, जिसमें प्राचीन राजाओं एवं राजवंशों का विवरण संकलित किया गया था। वस्तुतः पुराणशोध से सम्बन्धित यह एक मौलिक समस्या बनी रही है कि प्राचीन राजवंशों में वृत्तों का समावेश करने वाला यह पुराण ग्रन्थ एक ही था अथवा इस कोटि के अनेक ग्रन्थों का प्रणयन एक ही समय में हुआ। वायु पुराण के निम्नोक्त श्लोक के आधार पर जैक्सन एवं पार्जीटर जैसे विद्वानों ने मूलतया एक ही पुराण की परिकल्पना की है, जिसकी पृष्ठभूमि में उत्तरकालीन स्तरों के समय अनेक पुराण ग्रन्थ विरचित हुए थे–

"आख्यानैश्चोपाख्यानैः गाथाभिः कल्पजोक्तिभिः।
पुराणसंहिताचक्रे पुराणार्थ विशारदः॥"

किन्तु ए.डी. पुसाल्कर, हाजरा प्रभृति विद्वानों की समीक्षा के अनुसार उक्त सम्भावना भ्रामक है। यह सही है कि पुराण ग्रन्थों में पुराण शब्द का प्रयोग एक वचन में हुआ है और ऐसी परिस्थिति में मूलभूत एक पुराण ग्रन्थ के अस्तित्व की सम्भावना की जा सकती थी। किन्तु इसके साथ ही संशयरहित है कि पुराण-ग्रन्थों में अनेकत्र पुराण शब्द का प्रयोग बहुवचनार्थ हुआ है, जो इन ग्रन्थों की अनेकता का द्योतक माना जा सकता है। पुसाल्कर के अनुसार मूलभूत एक ही पुराण-संहिता के अस्तित्व की सम्भावना उसी प्रकार नहीं की जा सकती है, जैसे कि मूलभूत वेद संहिता की। वस्तुतः आलोचित उक्त श्लोक में पुराण संहिता जैसे किसी विशेष ग्रन्थ का संकेतक नहीं माना जा सकता है। परसम्भाव्य है कि पुराणों के पंचलक्षणों के संहत एवं संकलित रूप आख्यान की अभिधा से विदित थे, तथा ये ही लक्षण पुराणों की ऐतिहासिकता के निर्माणक तत्त्व थे। इस सन्दर्भ में मत्स्य पुराण[७७] का वक्ष्यमाण श्लोक विचारणीय है:

"पंचङ्गानि पुराणेषु आख्यानकमिति स्मृतम्।
सर्गश्चप्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पंचलक्षणम्।।"

इनमें ऐतिहासिक महत्त्व की दृष्टि से वंश एवं वंशानुचरित ही महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं। अर्थात् राजवंशावलियों को जिस वाङ्मय में सुरक्षित किया जाता था, वह पुराण वाङ्मय था। विद्वानों के जिस वर्ग ने इन्हें सुरक्षित तथा संकलित किया था उन्हें 'सूत' कहते थे। आधुनिक समीक्षा विषयक मतों में से एक मत के अनुसार सूत का सामाजिक स्तर ऊँचा नहीं था किन्तु यह मत समीचीन नहीं है। स्मृतियों में वर्णित ब्राह्मणी एवं क्षत्रिय के संयोग से उत्पन्न प्रतिलोम सूत से पौराणिक सूत भिन्न था। पौराणिक सूत को (परम्परा के अनुसार रोमहर्षण अथवा लोमहर्षण) वंशन्कुशल, धीमान्, कृतबुद्धि आदि विशेषणों से अभिहित किया गया है। ए.के. बार्डर का यह कथन तथ्यसंगत प्रतीत होता है कि सूत ब्राह्मण होते थे तथा पदेन उनका कर्तव्य राजकीय वंशावली सुरक्षित करना होता था। उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रादुर्भाव उत्तर वैदिक काल में ही हो चुका था। तैत्तिरीय ब्राह्मण में उसे राजसभा के 'रत्निन' के रूप में प्रतिष्ठा मिल चुकी थी। वी.एस. पाठक ने सूत का सम्बन्ध भृगु, अंगिरस एवं अथर्वन जैसे वैदिक ऋषियों से माना है। ऋग्वेद से ये स्पष्ट होता है कि तीनों ऋषि-वंश एक ही सूत्र में बँधे थे (अंगिरसों नः पितरो नवग्वा अथर्वाण भृगवो सोम्यासः)। इन्हीं ऋषियों की परम्परा में इतिहास पुराण सुरक्षित था। छान्दोग्य उपनिषद् के अनुसार इतिहास-पुराण मधु है तथा अथर्वांगिरस मधुकर है। इन्हीं अथर्वांगिरसों द्वारा इतिहास पुराण अभितप्त होता है। यथा:

"अथ येऽस्योदञ्चोरश्मयस्ता एवास्योस्यदीच्यो मधुनाड्योऽथर्वांगिरस एवं मधुकृत इतिहास-पुराण पुष्पं ता अमृता आपः। ते वा एतेऽथर्वांगिरस एतदितिहास पुराणमभ्यतपन्.....।

सूत सम्प्रदाय के बुद्धि कौशल एवं प्रवास परम्परा के परिणामस्वरूप पुराणों के वंश तथा

वंशानुचरित खण्ड में प्राचीन भारतीय इतिहास के निम्नांकित घटक सुरक्षित हैं।

(क) प्राचीन भारत का परम्परागत इतिहास

(ख) प्राचीन भारतीय राजवंशावली

(ग) प्राचीन भारतीय वंशानुक्रम एवं कालानुक्रम।

इस सन्दर्भ में यदि पुराणों के वर्णन में असंगति दिखाई देती है, तो इसका एकमात्र कारण इनकी आख्यात्मक शैली को माना जा सकता है अथवा जैसा कि प्रो. दशरथ शर्मा का मत है कि पुराणगत ऐतिहासिक असंगतियाँ वर्णन प्रक्रिया की दृष्टि से दिखाई अवश्य देती हैं लेकिन ऐतिहासिक तथ्य की दृष्टि से वे असंगत नहीं हैं। पुराणों की ऐतिहासिक उपादेयता को यदि व्याघात पहुँचा है तो केवल इसलिए कि इनके मूल संस्करण का युग-युगान्तर में प्रतिसंस्करण तैयार होता रहा तथा प्रतिसंस्करणकर्ताओं ने मौलिक स्थलों में वर्णित अनेक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक तथ्यों को प्रायः छोड़ दिया है। इसके कुछ उदाहरण दिये जा सकते हैं-

भ्रान्तिमूलक प्रतिसंस्करण शब्द	**मूल संस्करण का शुद्ध शब्द**
1. कोटिशश्चन्द्रगुप्तस्तु	कौटिल्यश्चन्द्र तु
2. पुष्यमित्र के आठ पुत्र एक साथ शासन करेंगे	पुष्यमित्र का एक पुत्र आठ वर्ष तक शासन करेगा (पुष्यमित्र सुत्रश्चाष्टौ भविष्यति समा नृपः)
3. विन्दुनाशो भविष्यति	त्रिम्बिसारो भविष्यति

ये स्थल पहली कोटि के भ्रान्तिमूलक पाठ हैं जिनका शुद्ध पाठ पुराणों के उपलब्ध अन्य संस्करणों के आधार पर किया जा सकता है। दूसरी कोटि के द्योतक वे स्थल हैं, जिनका ऐतिहासिक शुद्धीकरण पुराणेतर साक्ष्यों से सम्भव है। तृतीय शताब्दी ईसवी के राजवंशों के प्रसंग में इन ग्रन्थों में 'मेघ' नामधारी शासक उल्लिखित है, 'कोसलाया तु राजानो भविष्यन्ति महाबलाः। मेघ इति समाख्याता बुद्धिमन्तो नवैवतु।' अभिलेखीय एवं मौद्रिक साक्ष्यों से स्पष्ट है कि वस्तुतः ये शासक 'मघ' नामधारी थे। जैसे शिवमघ, शतमघ, जयमघ, विजयमघ तथा भद्रमघ आदि।

तीसरी कोटि में वे सम्मिलित किये जा सकते हैं जो पुराणों के उपलब्ध संस्करणों में कथमपि नहीं प्राप्त होते किन्तु प्रासंगिक सन्दर्भों के आधार पर उनके विषय में अनुमान अवश्य लगाया जा सकता है– जैसे बुद्धकालीन गणराज्य जिनका विषद वर्णन बौद्धग्रन्थों में प्राप्त होता है। पुराण ग्रन्थ अराजक स्थिति की भर्त्सना करते हैं। ए.के. बार्डर का अनुमान है कि इस प्रवृत्ति का प्रादुर्भाव मध्यकाल में हुआ होगा, जबकि सम्राट को राष्ट्र के एक व्यक्ति में केन्द्रित सत्ता के रूप में स्वीकार किया था। पुराणों के प्रतिसंस्करण के इसी स्तर पर गणराज्यों के अभिद्योतक स्थलों को हटा दिया गया था।

राजनीतिक इतिहास के आधुनिक समीक्षण की दृष्टि से देखा जाय तो प्रतीत होगा कि पुराणों के वंश एवं वंशानुचरित खण्डों के दो विशिष्ट स्तर हैं। प्रथम स्तर उन स्थलों का है जो वैदिक युग से लेकर प्राक्बौद्ध युग के नरेशों तथा उनके उपलब्धियों की रूपरेखा प्रस्तुत करते हैं। द्वितीय स्तर का सम्बन्ध उन स्थलों से है जिनमें बौद्ध युग से लेकर गुप्तकाल तक नृपतियों एवं राजनीतिक घटनाक्रमों का वर्णन हुआ है। इनमें सन्देह नहीं कि द्वितीय स्तर के स्थलों के वर्णन की ऐतिहासिक वस्तुस्थिति का समर्थन कुछ एक अपवादों के साथ अन्य साक्ष्यों द्वारा हो जाता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि पौराणिक विवरण में कल्पना या अतिरंजना नहीं है तथा प्रथम स्तर के उल्लेखों में भी कल्पना की प्रसूति नहीं है। शासकों की संख्या के सम्बन्ध में पौराणिक उल्लेख की वास्तविकता का यहाँ एक उदाहरण दिया जा सकता है। पौराणिक वर्णन के अनुसार मनु वैवस्वत से चन्द्रगुप्त मौर्य तक आविर्भूत हुए शासकों की संख्या 135 थी। एरियन भी मनु से सैण्ड्रकोट्टस (अर्थात् चन्द्रगुप्त मौर्य) तक 135 शासकों के आविर्भाव का उल्लेख करता है। दोनों साक्ष्यों के वर्णन प्रायः समान हैं, अतएव पौराणिक वर्णन की ऐतिहासिक वास्तविकता विवादरहित है।

प्रथम स्तर के पौराणिक वर्णन से अभिव्यंजित इतिहास को आधुनिक समीक्षक पारम्परिक इतिहास की संज्ञा देते हैं। इसकी विशेषता है कि एक सन्तोषजनक सीमा तक इसका समर्थन एवं अनुमोदन वैदिक स्थलों द्वारा हो जाता है। दोनों साक्ष्यों की समवेत समीक्षा के आधार पर 'परम्परागत इतिहास' की संक्षिप्त रूप-रेखा निम्नांकित है। ऋग्वेद 'पंचजन' का उल्लेख करता है, जिसमें यदु, तुर्वसु, द्रुह्यु, अनु एवं पुरु सम्मिलित हैं। ऋग्वेद के यदु पुराणों में वर्णित यादव हैं, जिनके प्रतिनिधि श्रीकृष्ण ने महाभारत के युद्ध में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। शक्तिसम्पन्नता की दृष्टि से पंचजन में सर्वोत्कृष्ट स्थान पुरु-जन का था। इनके वंशधर आन्व के नाम से विख्यात हुए। इस वंश का सबसे प्रसिद्ध शासक शिवि था, जिसने सम्पूर्ण सिन्धु प्रदेश को अधिकृत किया था। द्रुह्यु के वंशधरों ने अपनी सत्ता की स्थापना पश्चिमोत्तर भारत (गान्धार) प्रदेश में किया था। परम्परागत इतिहास के इस प्रारूप को ध्यान में रखते हुए पार्जीटर ने 'एंशण्ट इण्डियन हिस्टॉरिकल ट्रेडिशन' नामक ग्रन्थ में कहा है कि जलप्लावन के समय के पुराण-ग्रन्थ स्वायम्भू मनु से प्रारम्भ होने वाले प्राक्महाजलप्लावन राजवंशों से लेकर महाभारत के युद्ध तक के राजवंशों के इतिहास के अंकन में सहायक हैं। अल्तेकर का भी मत है कि पुराणों में वर्णित प्राक्भारत राजवंशों में ऐतिहासिक सत्यता दिखायी देती है।

सन्दर्भः

1. दुर्ग, आचार्य, निरुक्त भाष्य वृत्ति, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1963, पृ. 122
2. ऋग्वेद, 3.5.49, 3.58.6, 10.130.6 संपा. डॉ. लक्ष्मण स्वरूप, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली, 1987, पृ. 113, 321, 712

3. अग्रवाल, वासुदेवशरण, प्राचीन भारतीय लोकधर्म, साबरमती भाषा संस्थान, अहमदाबाद, 1964, पृ. 139
4. ऋग्वेद, 3.54.9, उपरोक्त
5. ऋग्वेद, 3.58.6, 9.99.4, 10.130.6 उपरोक्त
6. अथर्ववेद, 15.1.7, संपा., जयदेव शर्मा, आर्य साहित्य मंडल लिमिटेड, अजमेर, 1937, पृ. 223
7. भागवत पुराण, 12.7.9, गीताप्रेस गोरखपुर, 13वाँ संस्करण, 1999, पृ. 353
8. भागवत पुराण, 2.10.1 उपरोक्त, पृ. 133
9. साठे, श्रीराम, संकल्प विचार, श्री बाबा साहब आप्टे स्मारक समिति, पुणे, 1983, पृ.171
10. उपरोक्त, पृ. 212
11. अग्रवाल, वासुदेवशरण, इतिहास दर्शन, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, 1973 ई. पृ. 27
12. आर्य, द्रष्टव्य, रवि प्रकाश, भारतीय काल गणना का वैज्ञानिक एवं वैश्विक स्वरूप, अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना, नई दिल्ली, 2007 ई., पृ. 93
13. डेविज, नार्मन 'यूरोपः ए हिस्ट्री', ग्रोमस्वान पब्लिकेशन, न्यूयार्क, 1996, पृ. 215
14. न्यू इंग्लिश इनसाइक्लोपीडिया, पर्नेल एण्ड सन्स लिमिटेड, लन्दन, 1965, पृ. 2264
15. वृहदारण्यक उपनिषद्, 2.4.10, चौखम्बा संस्कृत सीरीज प्रकाशन, वाराणसी, 1973, पृ. 301
16. गोपथ ब्राह्मण, 1.10, आनन्द आश्रम संस्कृत ग्रन्थावली, पूना, 1963 ई. पृ. 117
17. वायु पुराण, 3.48, गीता प्रेस, गोरखपुर, 8वाँ संस्करण, 2001, पृ. 118
18. अर्थशास्त्र, संपा वाचस्पति गैरोला, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, चतुर्थसंस्करण, 2000, पृ. 113
19. 'पुराणं पुरावृत्तम्' – महाभारत, 1.5.1 पर नीलकण्ठ द्वारा प्रस्तुत टीका
20. 'पुराणन्यायमीमांसा धर्म शास्त्रांग मिश्रिताः।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश।।' – याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.3
21. विष्णु पुराण, 3.6.28, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, 1971, पृ. 222
22. "ज्यो नामेतिहासोऽयं श्रोतव्यो विजिगीषुणा।
अर्थशास्त्रमिदं पुण्यं धर्मशास्त्रमिदं परम्।
मोक्षशास्त्रमिदं प्रोक्तं व्यासेनामितबुद्धिना।।" – महाभारत, समीक्षित संस्करण, 1.56.19,21
23. पाठक, विश्वम्भरशरण, एन्शिएण्ट हिस्टोरियन ऑफ इण्डिया, प्राचीन इतिहास पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग, दीनदयाल उपाध्याय, गोरखपुर विश्वविद्यालय से प्रकाशित, गोरखपुर, 1984 ई. पृ. 129
24. निरुक्त, संपा, आचार्य दुर्गाप्रसाद, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1979 ई. पृ. 113
25. विण्टरनित्स, हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर, भाग 1, पृ. 105-106: द्रष्टव्य, सिद्धेश्वरी नारायण राव, पौराणिक धर्म एवं समाज, पृ. 4-7
26. द्रष्टव्य, रोमिला थापर का लेख 'पुराणिक लिनिएज एण्ड आर्कियालॉजिकल डाटा'
27. द्रष्टव्य, प्रोसीडिंग्स ऑफ इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस, भाग-3

State of U.P. v. Gayatri Prasad Prajapati

Case registered-18/02/2017
FIR Lodged- 18/02/2017
FIR NO. 29/2017
*FIR lodged on order vide WRIT PETITION dated – 17.02.2017

Neelank Rao*

Facts of the Case

Here, the informant is a ward member of ward 10, Ramghat, Chitrakoot, she alleged the accused i.e. Gayatri Prasad Prajapati for committing rape with her when she visited his house from time-to-time in previous three years. She stated that, she was raped by him and his team including six others, by mixing a toxic substance in her tea. Thereafter, she took her nude photographs under the garb of which she was regularly sexually exploited by them, and she never raised any alarm due to her social status.

After some time, they called her daughter and asked her to leave with him, when she resisted they didn't listen to her concerns and forced it anyway. Few accused also tried to commit rape with her daughter after which she decided to file the complaint. F.I.R. was lodged under section 154 of Cr.P.C. in Lucknow vide an order dated 17/02/2017. Section 376, 376D, 511, 504, and 506 of the Indian Penal Code, 1860 were included in the report along with sections 3, 4, 5(g) and 6 of POCSO Act, 2012. List of accused included seven individuals.

The accused Gayatri Prasad Prajapati was admitted to KGMU, Lucknow for treatment after complainant of severe medical issues in the jail hospital. After the treatment, the accused was discharged on 17th January, 2020 and was admitted in Jail Hospital. Before the trial court, the examination-in-chief recorded the statements of the victim and she turned hostile. She denied the involvement of the minister in the incidents and stated that only two of the aforementioned seven accused committed rape with her. About the previous F.I.R. She denied lodging and signing it as the signature was in Hindi and she only signed her documents in English. Thus, impugning the validity of the F.I.R. itself. Trial court issued a show cause notice as to why proceedings under section 340 Cr.P.C. should not be initiated. On 14th September, 2018 the victim replied

*Student, BALLB 5th Semester, School of Legal studies Babu Banarasi Das University, Lucknow

to the same and stated that statements given to

the examination-in-chief are correct and earlier she was forced by two self-proclaimed journalists namely. Anshur Gaur and Ram Singh who were meanwhile bearing the expense of her daughter's treatment at AIIMS, Delhi.

Defence

That the FIR has been lodged after a long span of time of almost three years. It creates suspicion of manipulation of facts and lodging of fake FIR as the accused is a political personality. And the complainant has political ambitions. That the complainant has not filed an FIR in Gautampalli, Police Station before 18/02/2017, as stated by P.W. 6, Ashutosh Tripathi, SHO, Gautampalli in his statement. As the complainant turned hostile and swept away from her earlier statements, the question can be simply raised as to why she did not file a complaint against Ashish Shukla only as he was not having much political influence. If she had to file any complaint, she could have done that earlier too, as lodging an FIR against the PRO of the minister would not be problematic for an individual.

The accused has not been named by Ananya Pathak in her statement under section 164 Cr.P.C. The victim in the same has denied even being acquainted with the accused.

No medical report has been produced by the prosecution to corroborate that any such act, as has been stated by Savita Pathak, has taken place which questions the validity of the statement given by the complainant Savita Pathak. The two primary witnesses produced before the court are related to the complainant herself and there are chances of biasness in her favour as no other individual except for her family has given any augmenting statements in her favour.

Prosecution

The defence has taken the point that F.I.R. was lodged with some delay, the prosecution has contended that lapse of time for such an offence is immaterial and has relied on the decision of the Hon'ble apex court in ***State through CBI v. Amar Mani Tripathi***. The prosecution on the point that the Trial Court has granted bail via order date 25.04.2017 contended that the Court passed the order in haste and without any reasonable opportunity to the prosecution as the court did not pass any order on the application moved by ADGC on adjournment. This act by the Court thereby violated Section 437 CrPC.

The prosecution added that the Trial Court has passed the order regarding the grant of bail without any information given by the applicant regarding the criminal

history of Accused No. 1, i.e., Gayatri Prasad Prajapati, which has resulted in gross failure and miscarriage of justice. To remedy the same the Prosecution requested the Court to exercise its powers u/s 439(2) and 482 CrPC and cancel the bail. [The same was granted by the Hon'ble Court vide order dated 26.05.2017. The prosecution also contended, during the Bail Cancellation Application filed before the Hon'ble High Court, that in case the accused are granted bail, their availability during the course of the trial could not be ascertained on the account that all the Accused are influential persons with Accused No. 1 being Former Cabinet Minister of the State. To substantiate the same the prosecution pointed out that, it was only after a month that the accused could be arrested, i.e., on 14.03.2017 and the F.I.R. was registered (on 18.03.2017) only after the Hon'ble Apex Court passed an order regarding the same vide order dated 17.02.2017 in Writ Petition(Crl) No. 160/2016.

The prosecution has contended, during the arguments of the 1st Bail application, that one of the girls of the complainant has lost her sanity due to the sexual misdemeanour committed by the accused on her. The prosecution to substantiate the argument brought in to light the fact that both of the girls of the complainant were subjected to sexual assault with the result being that Ananya Pathak suffered psychologically due to which she had to be admitted to the Psychiatry ward of AIIMS Delhi. The prosecution, on the point that the statement of the complainant is uncorroborated, contended that in rape cases, an uncorroborated statement of prosecution is sufficient to deny bail. The prosecution, on the point that no photos or videos have been produced before the court, contended that nowhere in her statement the complainant has stated that the articles were given to her instead it was only shown to her, and on the threat of exposure of the said articles rape was committed on her. The prosecution on the defence argument that no criminal history of serious nature is present, pointed out the fact that seven cases were pending against the applicant Gayatri Prasad Prajapati.

The Prosecution, on the point that the lead prosecution witnesses are having relation with the complainant and thereby their statement will have biases, contended that the Hon'ble High Court and Hon'ble Supreme Court in a plethora of cases have held that a related witness has the same credibility as an independent witness.

The Prosecution, to the point of lack of independent witness, contended that an offence such as Gang Rape is often committed in places without independent witnesses and as such lack of an independent witness will not affect the bail application. The prosecution, to the point that complainant/victim Savita Pathak has changed her statement, has submitted that the Complainant has been managed by the applicant. To substantiate the same the prosecution has presented the record of the Complainant and her relatives account details which showcases huge monetary transactions even though

her official income is not much. The prosecution also presented that four sale deeds have taken place with the Complainant and her relatives with the applicant, in which no measure has been taken by the applicant to withdraw the money which further entails that the complainant has been managed by the Applicant.

The Prosecution, on the point that no order has been passed by the court that direct shifting of accused from KGMU to SGPGIMS, contended that the decision of shifting of accuse has been taken keeping in mind the condition of the applicant and the circumstances of Covid-19 in KGMU. The prosecution also argues for formation of a medical board to evaluate the condition of the applicant and to carry out the treatment of the applicant under the supervision of police authorities. The Appellant submitted before the Hon'ble Apex Court that while granting the interim bail to the respondent, the Hon'ble High Court has not considered the report of the medical board. The Appellant submitted that one of the conditions for granting the interim bail is that the respondent shall ordinarily reside at his residence and not for any medical emergency. The appellant to substantiate the same presented the fact that the respondent for the last one year was in hospital which violates the conditions on which interim bail was granted. The Appellant also pointed out that while granting interim bail to the Respondent the Hon'ble High Court has not referred to the medical report submitted by K.G.M.U. and S.G.P.G.I.M.S.

Judgement

According to the principle of Presumption of Innocence the accused is considered innocent until proven guilty. Under this principle the burden of proof is on the Prosecution to prove the accused person guilty. Section 29 & 30 of Protection of Child from Sexual Offences (POCSO) Act, 2012 are the exceptions of the principle of Presumption of Innocence. Section 29 of POCSO talks about the Presumption as to certain offences of an accused when he is prosecuted and Section 30 talks about Presumption of culpable mental state. Hence, the court is bound to consider the presumption of guilt and culpable mental state. The court has also cited the case of Bable vs State of Chhattisgarh stating that the FIR is not a substantive piece of evidence, it is certainly a relevant circumstance of evidence produced by the investigation agency.

It was stated in the case of *Bable vs State of Chhattisgarh*[1] that,

"Merely because the PW-1 (Complainant) turned hostile, it cannot be said that the FIR would lose its relevancy ."

The court has also stated that in the situation of circumstantial evidence the presence of Cause of Action is must. However, mere absence of cause of action is not a ground for acquittal in a criminal case in the situation of circumstantial evidence. The

court has also mentioned that the victim has a criminal history of fraudulent statements in return of property that has already been registered. The court also believes that the victim S.P. and PW – 14, Ram Singh and PW – 17, Anshu Gaud made a delay in filing the statement with the intention of monetary deals with the accused(s) and the Victim also forced the 2nd victim A.P. to change her statements in the court for the same. The court has also ordered the Police Commissioner of Lucknow for the enquiry against the Victim and both witnesses P.W. – 14, Ram Singh and P.W. – 17, Anshu Gaud for the offence of Malicious Prosecution.

Salient Features

1. FIR lodged vide order from Supreme Court writ petition no. 160 of 2016.

Though the Cr.P.C. does not provide for the direct approach of lodging F.I.R. through a Supreme Court order. The only methods and remedies to lodge an F.I.R as stated in the Cr.P.C is that:

1. To lodge an FIR under section 154(1).
2. To file a complaint to the magistrate under section 156(3) read with section 200.
3. To file an application to the Superintendent of Police if the SHO denies to file the same under 154(3).
4. To file a writ petition or a petition section 482 of Cr.P.C before the High Court.

In all the above-mentioned methods, nowhere we can find the role of the Supreme Court in the process of lodging an FIR. However, in the present case we observed how an FIR was lodged vide an order of the Supreme Court which adds another remedy to lodge an FIR. Some of the precedents of the apex court in this regard are as follows:-

The verdict of Apex Court in the case of *Lalita Kumari v. Government of U.P. & Ors.*[2] does not pertain to issue of entitlement to writ of mandamus for 2017 (I) MPJR 247 compelling the police to perform statutory duty under Section 154 Cr.P.C. without availing alternative remedy under Sections 154(3), 156(3), 190 and 200 Cr.P.C.

Writ of mandamus to compel the police to perform its statutory duty under Section 154 Cr.P.C can be denied to the informant/victim for non-availing of alternative remedy under Sections 154(3), 156(3), 190 and 200 Cr.P.C., unless the four exceptions enumerated in decision of Apex Court in the the case of *Whirlpool Corporation Vs. Registrar of TradeMarks, Mumbai and Ors.*[3], come to the rescue of the informant / victim.

2. Conviction on Circumstantial Evidence

The basic rule of criminal law is to prove guilt beyond reasonable doubt which in normal circumstances can only happen by proving/presenting evidence which is concrete in nature. This is done as criminal law deals with a person's life and dignity which is not something that can be put on stake on loose grounds. However, in the present case we observe that there is no direct evidence or eye-witness present to corroborate the statements of the victim in the FIR. Though it must be taken into account that the offence was of such nature in which there is lack of eye-witnesses as such offences takes place in confined spaces with limited individuals around.

The second major point which relates to the primary victim turning hostile on her own statements and limiting the number of names in the accused list, also denied Gayatri Prasad Prajapati being one of the accused. The apex court in *Bable v. State of Chhattisgarh*[4] held that,

Reference

"In any case, the FIR by itself is not a substantive piece of evidence but is certainly a relevant circumstance of evidence produced by the investigating agency. Merely because PW1 turned hostile it cannot be said that the FIR would lose all its relevancy and cannot be looked into for any purpose."

1 Bable v. State of Chhattisgarh, 2012 (11) SCC 181

2 Lalita Kumari v. Government of U.P. & Ors., (2014) 2 SCC 1

3 Whirlpool Corporation Vs. Registrar of TradeMarks, Mumbai and Ors., (1998) 8 SCC 1

4 Bable v. State of Chhattisgarh, 2012 11 SCC 181

Mānaviki

A Peer Reviewed Interdisciplinary Journal of Humanities & Social Sciences

Subscription Form

Editor,
Mānaviki
Maharana Pratap P.G. College
Jungle Dhusar, Gorakhpur-273014

Dear Editor,

I/we would like to subscribe to the Mānaviki, an interdisplinary journal of Humanities and Social Sciences, published by you. Subscription amount Rs./US$.....is being enclosed herewith by cheque*/demand draft no. ..... drawn on ..... Kindly enrol my/our - Annual/ Five Year/Life subscription** and arrange to send the issues of the journal on the following address :

Name of Individual/Institution : .....

Address : .....

.....

City : ..... Pin/Zip .....

State : ..... Country :.....

Subscription Rates

	Individual		Institutional	
Annual	Rs. 300	US $ 30	Rs. 500	US $ 50
Five Years	Rs. 1250	US $ 80	Rs. 2000	US $ 125
Life (15 Years)	Rs 2500	US $ 150	Rs. 4000	US $ 200

* All cheques/demand drafts should be drawn in favour of Mānaviki payable at Gorakhpur. In case of outstation cheques please add Rs. 30/US$ 2 for clearing expenses.

** Please tick the desired subscription period.

Maharana Pratap P.G. College
Jungle Dhusan, Gorakhpur
Mob. : 9794299451, 9452971570 • E-mail : mpmpg5@gmail.com

संगोष्ठी रिपोर्ट

भारत का स्वातंत्र्य समर : गोरखपुर परिक्षेत्र के विशेष संदर्भ में

16-17 अक्टूबर, 2021

भारत का स्वाधीनता संघर्ष भारत की वह गौरव गाथा है, जिसे याद कर हर भारतीय का सर गर्व से ऊँचा हो जाता है। भारत ने अपनें स्वतंत्रता संघर्ष में जो प्रतिमान, जो आदर्श स्थापित किए हैं, वो संसार के इतिहास में अन्यत्र दुर्लभतम् है। भारत का स्वातंत्र्य समर 1857 ई. से प्रारम्भ होता हैं। उसके बाद से भारतवासियों नें अपनी मातृभू को विदेशी दासता से मुक्त करानें हेतु अनेकानेक आहूतियाँ दीं। हजारों-लाखों माँ भारती के सपूतों ने अपना सर्वस्व स्वतंत्रता के इस महान यज्ञ में हवि के रूप अर्पित कर दी। इस महाभियान में उत्तर प्रदेश के पूर्वी आंचल में स्थित गोरखपुर परिक्षेत्र का योगदान अविस्मरणीय है। यह वही क्षेत्र हैं, जिसका नेतृत्व स्वतंत्रता संग्राम के दौरान तत्कालीन गोरक्षपीठाधीश्वर **महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज** ने किया गया। यह वही क्षेत्र है, जहाँ देश में अंग्रेजी शासन की चूलें हिला देने वाली **चौरी-चौरा जनक्रांति** की घटना घटित हुई थी। यह वही क्षेत्र है जहाँ अंग्रेजों के दमनकारी प्रयासों को **डोहरियाँ कला** के बांकुरों ने अपने सीने पर गोली खाकर किल किया था। यह वही क्षेत्र है जहाँ **बाबू बंधू सिंह** ने अपनी विशिष्ट गुरिल्ला युद्ध शैली से अनेकानेक अंग्रेज अफसरों के शीश काटकर माँ तरकुलहाँ देवी के चरणों में अर्पित किया था। यह वही क्षेत्र है जहाँ पैना, छावनी, डुमरी आदि के अगणित योद्धाओं ने स्वतंत्रता की बलि दे दी पर हँसते-हँसते अपना सब कुछ लुटा दिया। इसी क्षेत्र में भाई जी के नाम से विख्यात प्रातः स्मरणीय **हनुमान प्रसाद पोद्दार** जी ने उक्त समय के झंझावत भरे माहौल में भी गीता-प्रेस के माध्यम से भारतीय संस्कृति का अबाध प्रसार जनमानस में करते रहे। किन्तु देश का दुर्भाग्य यह है कि इस क्षेत्र के इतने महत्वपूर्ण घटनाओं और इतने महत्वपूर्ण व्यक्तित्वों को भारतीय इतिहास में शडयंत्र पूर्वक उपेक्षित कर दिया गया। भारतीय इतिहास के इन्हीं उपेक्षित और लगभग भुला दिया गए इतिहास को नए सिरे से व्याख्यायित करने के उद्देश्य से महाराणा प्रताप महाविद्यालय जंगल धूसण, गोरखपुर द्वारा **"भारत का स्वातंत्र्य समर : गोरखपुर परिक्षेत्र के विशेष सन्दर्भ में"** विषय **पर दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद (ICHR), नई दिल्ली** के अकादमिक एवं वित्तीय सहयोग से सम्पन्न की गई। आयोजित संगोष्ठी की एक संक्षिप्त रपट आप सबके समक्ष प्रस्तुत है।

उद्घाटन सत्र (16 अक्टूबर 2021)

नियत समय अर्थात् 16 अक्टूबर, 2021 को संगोष्ठी का उद्घाटन हुआ। उद्घाटन समारोह में मुख्य अतिथि के रूप में अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना, नई दिल्ली के राष्ट्रीय संगठन सचिव **डॉ. बालमुकुन्द पाण्डेय** उपस्थित रहे। मुख्य वक्ता के रूप में दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर के इतिहास विभाग के आचार्य एवं भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली के सदस्य **प्रो. हिमांशु चतुर्वेदी** एवं सारस्वत अतिथि के रूप में उत्तर प्रदेश शासन के सूचना आयुक्त **श्री हर्षवर्द्धन शाही** ने अपनी उपस्थिति सुनिश्चित कराई। कार्यक्रम की अध्यक्षता उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ के कार्यकारी अध्यक्ष एवं प्रख्यात साहित्यकार **प्रो. सदानन्द प्रसाद गुप्त** ने की। उद्घाटन सत्र का संचालन महाविद्यालय के प्राचीन इतिहास, पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग के अध्यक्ष **डॉ. सुबोध कुमार मिश्र** ने किया। उद्घाटन सत्र को सम्बोधित करते हुए मुख्य अतिथि डॉ. बालमुकुन्द पाण्डेय ने कहा कि– आजादी के अमृत महोत्सव के अन्तर्गत आयोजित इस राष्ट्रीय संगोष्ठी को एक उत्सव के रूप में देखे जाने की आवश्यकता है। भारत के गौरवपूर्ण इतिहास को भारतीय परिप्रेक्ष्य में लिखने व देखने की आवश्यकता तो है ही, साथ ही आने वाली पीढ़ी को स्थानीय इतिहास के प्रति जागरूक करना भी आवश्यक है। इस अवसर पर सारस्वत अतिथि के रूप में बोलते हुए श्री हर्षवर्द्धन शाही ने कहा कि भारतीय दार्शनिक परम्परा एवं ज्ञान ने देश-विदेश में

दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी के उद्घाटन अवसर पर प्रो. सदानन्द प्रसाद गुप्त को स्मृति चिन्ह भेंट करते प्रो. हिमांशु चतुर्वेदी

दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी के उद्घाटन अवसर पर डॉ.बालमुकुन्द पाण्डेय को स्मृति चिन्ह भेंट करते प्रो. हिमांशु चतुर्वेदी

दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी के उद्घाटन अवसर पर प्रो. हिमांशु चतुर्वेदी को महाविद्यालय के प्रकाशन भेंट करते प्राचार्य डॉ. प्रदीप कुमार राव

दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी के उद्घाटन अवसर पर अध्यक्षीय उद्बोधन देते प्रो. सदानन्द प्रसाद गुप्त

दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी के उद्घाटन अवसर पर बीज वक्तव्य प्रस्तुत करते प्रो. हिमांशु चतुर्वेदी

दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी के उद्घाटन अवसर पर उद्बोधन देते डॉ. बालमुकुन्द पाण्डेय

दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी के उद्घाटन अवसर पर अतिथियों का स्वागत एवं आभार ज्ञापित करते महाविद्यालय के प्राचार्य डॉ. प्रदीप कुमार राव

दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी के उद्घाटन अवसर पर सारस्वत अतिथि के रूप में श्रोताओं का मार्गदर्शन करते हुए श्री हर्षवर्धन शाही

अपनी अमिट छाप छोड़ी है। भारत के स्वतंत्रता संग्राम में गोरखपुर परिक्षेत्र की सक्रियता, योगदान एवं इस क्षेत्र के प्रेस की भूमिका अविस्मरणीय है। इस अवसर पर मुख्य वक्ता के रूप में बीज वक्तव्य प्रस्तुत करते हुए प्रो. हिमांशु चतुर्वेदी ने कहा कि– यह भारत का दुर्भाग्य रहा कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व एवं स्वतंत्रता के पश्चात भी भारतीय इतिहास लेखन को भारतीयता से मुक्त रखा गया। इसीलिए भारतीय इतिहास लेखन की दृष्टि ठीक नहीं रही है। पाश्चात्य एवं औपनिवेशिक इतिहासकारों ने भारतीय इतिहास को पराजितों के इतिहास के रूप में प्रस्तुत किया। इससे भी बड़ा

दुर्भाग्य यह है कि वही इतिहास एक लम्बे समय तक भारत के सभी शिक्षण संस्थानों में पढ़ाया जाता था। भारत के स्वातंत्र्य समर में गोरखपुर परिक्षेत्र का योगदान भारत के किसी भी अन्य क्षेत्र के योगदान से कमतर नहीं है। अध्यक्षीय उद्‌बोधन देते हुए कार्यक्रम अध्यक्ष प्रो. सदानन्द प्रसाद गुप्त ने कहा कि भारत को तोड़ने के लिए हमारे इतिहास और भाषा को तोड़ा गया क्योंकि यही वो दो माध्यम हैं जो किसी भी देश को शक्तिशाली बनाने का आधार उपलब्ध कराते हैं। विदेशियों द्वारा भारत को कमजोर करने के लिए यहां की भाषा, शिक्षा एवं समाज पर कड़ा प्रहार किया। भारतीय भाषाओं की जगह विदेशी भाषाओं को महत्व देकर हमें कुंठित किया। भारत के स्वाधीनता आन्दोलनों को यदि हम ठीक से आंकलित करें तो पाऐंगे कि भाषाई जागरूकता ने इसे और तीव्रता एवं धार प्रदान किया था। उद्‌घाटन सत्र के दौरान प्रो. हिमांशु चतुर्वेदी द्वारा लिखित पुस्तक **'भारत निर्माण'** का विमोचन किया गया। इस अवसर पर **प्रो. हिमांशु चतुर्वेदी, प्रो. मनोज तिवारी, प्रो. ध्यानेन्द्र नरायण दूबे, डॉ. रामप्यारे मिश्र, डॉ. प्रकाश प्रियदर्शी, डॉ. उग्रसेन सिंह, डॉ. शैलेन्द्र उपाध्याय, डॉ. सुशील कुमार पाण्डेय, डॉ. ज्ञान प्रकाश मंगलम, डॉ. सर्वेश शुक्ल, डॉ. अनुज प्रताप सिंह, डॉ. रविन्द्र आनन्द** सहित विभिन्न विभागों के शोधार्थी एवं शहर के गणमान्य नागरिकों सहित महाविद्यालय के समस्त शिक्षक एवं विद्यार्थी उपस्थित थे।

सहभोज

प्रथम तकनीकी सत्र के समाप्त होते ही 01 बजे से 02 बजे तक सहभोज का आयोजन हुआ। सहभोज में उपस्थित समस्त अतिथि, विषय विशेषज्ञ एवं प्रतिभागियों ने अपनी उपस्थिति दर्ज कराई।

प्रथम एवं द्वितीय संयुक्त तकनीकी सत्र (16 अक्टूबर, 2021)

सहभोज के तुरन्त बाद संयुक्त रूप से प्रथम एवं द्वितीय तकनीकी सत्रों का आयोजन किया गया। इस संयुक्त सत्र की अध्यक्षता दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर के प्राणि विज्ञान विभाग के पूर्व अध्यक्ष **प्रो. दिनेश कुमार सिंह** ने की। सह अध्यक्ष के रूप में दीनदयाल

प्रथम तकनीकी सत्र में सह अध्यक्ष के रूप में अपने विचार व्यक्त करते डॉ. मनोज कुमार तिवारी

प्रथम तकनीकी सत्र में अपना शोध-पत्र प्रस्तुत करते डॉ. राजेश नायक

प्रथम तकनीकी सत्र में सह अध्यक्ष के रूप में अपने विचार व्यक्त करते प्रो. कमलेश कुमार गौतम

प्रथम तकनीकी सत्र में अपना शोध-पत्र प्रस्तुत करते डॉ. सुधाकर लाल श्रीवास्तव

प्रथम तकनीकी सत्र में अपना शोध-पत्र प्रस्तुत करते डॉ. कन्हैया सिंह

प्रथम तकनीकी सत्र में विषय विशेषज्ञ के रूप में अपने विचार व्यक्त करते डॉ. प्रवीन कुमार त्रिपाठी

प्रथम तकनीकी सत्र में अध्यक्षीय उद्बोधन द्वारा श्रोताओं एवं विद्यार्थियों का मार्गदर्शन करते प्रो. दिनेश कुमार सिंह

प्रथम तकनीकी सत्र में पॉवर प्वाइंट एवं प्रोजेक्टर के माध्यम से पैना ग्राम के इतिहास की विवेचना करते कार्यक्रम अध्यक्ष प्रो. दिनेश कुमार सिंह

उपाध्याय गोरखपुर, विश्वविद्यालय, गोरखपुर के प्राचीन इतिहास, पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग के आचार्य **प्रो. कमलेश गौतम** एवं इतिहास विभाग के आचार्य **डॉ. मनोज तिवारी** उपस्थित रहे। विषय विशेषज्ञ के रूप में जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा, बिहार के इतिहास विभाग के आचार्य **डॉ. राजेश नायक** तथा गणेश राय पी.जी. कालेज, डोभी, जौनपुर के इतिहास विभाग के सहायक आचार्य **डॉ. प्रवीण कुमार त्रिपाठी** ने अपनी सारस्वत उपस्थिति दर्ज करायी। सत्र का संचालन महाराणा प्रताप पी.जी. कालेज, जंगल धूसड़, गोरखपुर के प्राचीन इतिहास, पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग के अध्यक्ष **डॉ. सुबोधकुमार मिश्र** ने किया जबकि सत्र का प्रतिवेदन आई.सी.एच.आर के

फेलो **डॉ. विनोद कुमार** ने किया। इस तकनीकी सत्र में **डॉ. सुधाकर लाल श्रीवास्तव, डॉ. अजय कुमार सिंह, डॉ. शचीन्द्र मोहन, डॉ. कन्हैया सिंह, डॉ. सर्वेश शुक्ल, डॉ. रितेश्वरनाथ तिवारी, डॉ. अलका सिंह, डॉ. कामिनी सिंह, सुश्री पूजा, सुश्री कंचन तिवारी** सहित 14 विद्वानों एवं शोधार्थियों ने अपना शोध पत्र प्रस्तुत किया। अन्त में पावर प्वाइंट माध्यम से अपना अध्यक्षीय उद्‌बोधन प्रस्तुत करते हुए सत्राध्यक्ष प्रो. दिनेश कुमार सिंह ने भारत के स्वतंत्रता संग्राम में गोरखपुर परिक्षेत्र के योगदान पर प्रकाश डालते हुए समस्त प्रतिभागियों के प्रस्तुत शोध पत्र का सार प्रस्तुत किया एवं भावी जीवन की उन्हें शुभकामनाएं दी।

तृतीय तकनीकी सत्र (17 अक्टूबर 2021)

संगोष्ठी के दूसरे दिन अर्थात् 17 अक्टूबर को प्रातः 10 बजे तृतीय तकनीकी सत्र का आयोजन किया गया। सत्र की अध्यक्षता सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु, सिद्धार्थनगर के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष **प्रो० हरीश शर्मा** ने की। मुख्य वक्ता के रूप में मजीदुन्निशां गर्ल्स पी.जी. कालेज, मऊ के प्राचार्य **डॉ. अजय कुमार मिश्र** एवं विषय विशेषज्ञ के रूप में दिल्ली विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग के प्रवक्ता **डॉ. अजय कुमार सिंह** ने अपनी उपस्थिति दर्ज करायी। सत्र का संचालन **डॉ. आशुतोष त्रिपाठी** ने किया। इस सत्र में **श्री जयगोपाल मधेशिया,**

तृतीय तकनीकी सत्र में अध्यक्षीय उद्‌बोधन प्रस्तुत करते डॉ. हरीश कुमार शर्मा

तृतीय तकनीकी सत्र में मुख्य वक्ता के रूप में उद्‌बोधन प्रस्तुत करते डॉ. अजय कुमार मिश्र

तृतीय तकनीकी सत्र में अपना शोध पत्र प्रस्तुत करते डॉ. प्रवीन कुमार त्रिपाठी

तृतीय तकनीकी सत्र में अपना शोध पत्र प्रस्तुत करते श्री अनूप कुमार पाण्डेय

तृतीय तकनीकी सत्र के दौरान मंच पर उपस्थित मुख्य अतिथि, विषय विशेषज्ञ एवं अन्य

तृतीय तकनीकी सत्र के दौरान सत्र में उपस्थित महाविद्यालय के विद्यार्थी, शोधार्थी एवं श्रोतागण

तृतीय तकनीकी सत्र में विषय विशेषज्ञ के रूप में अपने विचार व्यक्त करते डॉ. अजय कुमार सिंह

तृतीय तकनीकी सत्र में अपने शोध पत्र का वाचन करते डॉ. आशुतोष कुमार त्रिपाठी

डॉ. शत्रुजीत सिंह, डॉ. विनोद कुमार, डॉ. प्रवीण त्रिपाठी, डॉ. ब्रजभूषण यादव सहित 09 लोगों ने अपना शोध पत्र प्रस्तुत किया। सत्र के अन्त में महाविद्यालय के वरिष्ठ आचार्य **डॉ. विजय कुमार चौधरी** नें सभी के प्रति आभार व्यक्त किया।

समूह परिचर्चा सत्र

तृतीय तकनीकी सत्र के उपरान्त एक मुक्त समूह परिचर्चा सत्र का आयोजन किया गया। इस मुक्त समूह परिचर्चा सत्र की अध्यक्षता जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा, बिहार के इतिहास विभाग के आचार्य **डॉ. राजेश नायक** ने की। सह अध्यक्ष के रूप में दीनदयाल उपाध्याय विश्वविद्यालय गोरखपुर के इतिहास विभाग के आचार्य **डॉ. मनोज तिवारी** उपस्थित रहे। इस सत्र में विषय विशेषज्ञ के रूप में **डॉ. सुधाकर लाल श्रीवास्तव, डॉ. ज्ञानप्रकाश मंगलम, डॉ. रितेश्वरनाथ त्रिपाठी, डॉ. प्रवीण त्रिपाठी, डॉ. अजय कुमार सिंह, डॉ. अम्बिका तिवारी** आदि ने भी अपनी उपस्थिती दर्ज करायी। मुक्त परिचर्चा सत्र का विषय प्रवर्तन करते हुए सत्राध्यक्ष डॉ. राजेश नायक के कहा कि–

समूह परिचर्चा सत्र की अध्यक्षता करते डॉ. राजेश कुमार नायक

भारतीय स्वंतत्रता संग्राम रूपी सलिला की एक सशक्त एवं महान धारा गोरखपुर परिक्षेत्र से भी प्रवाहित होती है। गोरखपुर परिक्षेत्र के **चौरी-चौरा, डोहरिया कला, महुआडाबर, पैना, छावनी, सतासी राज** इत्यादि स्थल इस बात के मौन साक्षी है कि यह क्षेत्र किसी समय में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का अगुआ था। पूर्वांचल की यह धारती तत्कालीन नाथपंथ के पीठाधीश्वर **ब्रह्मलीन महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज** के कुशल नेतृत्व में संगठित होकर अंग्रेजी सत्ता का सामूहिक प्रतिकार किया था। आज आवश्यकता है इतिहास के पन्नों में इस पूर्वांचल के क्षेत्र के इन अदम्य बलिदानों

समूह परिचर्चा सत्र में उपस्थिति विषय विशेषज्ञ, शोधार्थी एवं श्रोतागण

समूह परिचर्चा सत्र के दौरान विषय विशेषज्ञों से अपनी जिज्ञासा पूछता प्रतिभागी

को समावेशित करने की जो हमारे युवाओं के लिए प्रेरणा स्त्रोत बन सकें। विषय प्रवर्तन के उपरान्त एक-एक करके सभी विषय विशेषज्ञों ने अपनी-अपनी बात रखी। तत्पश्चात श्रोताओं और महाविद्यालय के विद्यार्थियों ने अपनी जिज्ञासाएं एवं प्रश्न विषय विशेषज्ञों के सामने रखा जिसका उत्तर विषय विशेषज्ञों द्वारा दिया गया।

सहभोज

समूह परिचर्चा सत्र के समाप्त होते ही 01 बजे से 02 बजे तक सहभोज का आयोजन हुआ। जिसमें उपस्थित समस्त अतिथि, विषय विशेषज्ञ एवं प्रतिभागियों ने अपनी उपस्थिति दर्ज कराई।

विशेष व्याख्यान कार्यक्रम

भोजन के उपरान्त एक विशिष्ट व्याख्यान सत्र का आयोजन महाविद्यालय के श्रीराम सभागार में किया गया। इस कार्यक्रम में मुख्य वक्ता के रूप में महात्मा गांधी अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालयख वर्धा के कुलपति **प्रो. रजनीश शुक्ल** ने **'क्षेत्रीय इतिहास लेखन'** विषय पर अपना सारगर्भित उद्‌बोधन देते हुए कहा कि किसी भी क्षेत्र की प्राचीनता एवं इसका गौरवशाली अतीत वर्तमान के युवाओं की प्रेरणा का आधार बनता है। भारत के समग्र इतिहास का वास्तविक लेखन तब तक पूरा नहीं हो सकता, जब तक कि हम भारत के अलग-अलग

क्षेत्रीय इतिहास लेखन विषय पर अपना विचार प्रस्तुत करते प्रो. रजनीश कुमार शुक्ल

क्षेत्रों का क्षेत्रीय इतिहास ढीक से न लिखें। इसके लिए हम सभी को अपने क्षेत्रीय इतिहास से वाकिफ होना पड़ेगा। क्षेत्रीयत का ही संगठित रूप राष्ट्रीयता कहलाती है। एक राष्ट्र के रूप में भारत का गौरव गाथा तथा समृद्ध इतिहास के हम उत्तराधिकारी हैं। अत: यह हमारा पुनीत कर्तव्य है कि हम अपने उत्तराधिकारियों के लिए भी राष्ट्र की अस्मिता एवं अखंडता के वाहक के रूप में अपने इतिहास को और अधिक समृद्ध एवं प्रमाणिक तथ्यों से परिपूर्ण करें जिसके कि भारत का वह इतिहास जो वामपंथी एवं साम्राज्यवादी इतिहासकारों द्वारा विदूषित किया गया, उसे हम ठीक कर सकें। कार्यक्रम की अध्यक्षता महाविद्यालय के प्राचार्य **डॉ. प्रदीप कुमार राव** ने तथा संचालन भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली के मानद सदस्य **प्रो. हिमांशु चतुर्वेदी** ने की।

समापन समारोह - 17 अक्टूबर, 2021

विशिष्ट व्याख्यान सत्र के तुरन्त बाद दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का समापन समारोह आयोजित किया गया। समापन समारोह की अध्यक्षता दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग के पूर्व अध्यक्ष **प्रोफेसर राजवंत राव** ने की। मुख्य अतिथि के रूप में महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा के कुलपति **प्रोफेसर रजनीश शुक्ल** तथा मुख्य वक्ता के रूप में भारतीय इतिहास संकलन समिति गोरक्षप्रांत के सचिव **प्रो. दिग्विजयनाथ मौर्य** भी उपस्थित रहे। संगोष्ठी को संबोधित करते हुए मुख्य वक्ता प्रो. मौर्य ने कहा कि भारत इतिहास को जिस रूप में प्रस्तुत किया जाना चाहिए, उसे उस रूप में न कर हर प्रकार से विकृत करके प्रस्तुत किया गया है। भारतीय समाज एवं संस्कृति की यदा-कदा कमियों को

दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी के समापन अवसर पर मुख्य अतिथि प्रो. रजनीश शुक्ल को स्मृति चिन्ह भेंट कर उनका स्वागत करते महाविद्यालय के प्राचार्य डॉ. प्रदीप कुमार राव

दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी के समापन अवसर पर डॉ. अल्का सिंह द्वारा लिखित पुस्तक 'युगद्रष्टा स्वामी विवेकानन्द' का विमोचन करते आदरणीय मंचासीन अतिथि

दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी के समापन अवसर पर अध्यक्षीय उद्बोधन देते कार्यक्रम अध्यक्ष प्रो. राजवन्त राव

दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी के समापन अवसर पर मुख्य वक्ता के रूप में उद्बोधन देते प्रो. दिग्विजयनाथ मौर्य

मुख्य वक्ता प्रो. दिग्विजयनाथ मौर्य को स्मृति चिन्ह भेंट करते महाविद्यालय के प्राचार्य डॉ. प्रदीप कुमार राव

अतिशय महिमा मण्डित कर विवेचित किया गया है। मुख्य अतिथि के रूप में प्रो. रजनीश शुक्ल ने अपने उद्बोधन में कहा कि भारतीय इतिहास को व्यापक रूप में समझना होगा। वास्तव में इतिहास घटित होता है, निर्देशित नहीं। भारत का वर्तमान लिखित इतिहास औपनिवेशिक विचारधारा द्वारा निर्देशित है। इसे वर्तमान पीढ़ी को ठीक करना ही होगा। अध्यक्षीय उद्बोधन देते हुए कार्यक्रम

अध्यक्ष प्रो. राजवंत राव ने कहा कि गोरखपुर परिक्षेत्र का स्वातंत्र्य समर भारत के किसी अन्य क्षेत्र के स्वतंत्रता संग्राम से किसी भी मामले में कम नहीं है अंतर केवल इतना है कि गोरखपुर परिक्षेत्र की घटनाओं को इतिहासकारों ने इतिहास पटल पर उचित प्रकार से प्रस्तुत नहीं किया है। चाहे वह चौरी-चौरा की घटना हो, गोरखपुर के आस-पास के क्षेत्रों की घटनाएं हों, यहाँ के सांस्कृतिक एवं धार्मिक आन्दोल हों, आन्दोलनों में जनभागीदारी हो, आन्दोलन के भावना को समझनें की बात हो इस सभी मामलों में यहाँ का इतिहास सदा ही उपेक्षा का शिकार रहा है। पिछले कुछ वर्षों से सामाजिक एवं राजनीतिक चेतना के परिणामस्वरूप इतिहास की इन गलतियों के विरूद्ध समाज मुखर हुआ है और सरकार के ऊपर यह दबाव है कि इन गलतियों को सुधारा जाए। इतिहास को पुर्नसंकलित एवं पुनरावलोकित किया जाए। इसी क्रम में दो दिनों तक चलने वाली इस राष्ट्रीय संगोष्ठी का संपूर्ण प्रतिवेदन श्रीगणेश राय पी.जी. कालेज के इतिहास विकास के आचार्य **डॉ. प्रवीण कुमार त्रिपाठी** ने प्रस्तुत किया। कार्यक्रम का संचालन भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद के पोस्ट डाक्टोरल फेलो **डॉ. सर्वेश शुक्ल** ने किया जबकि महाविद्यालय के प्राचार्य **डॉ. प्रदीप कुमार राव** ने समस्त अतिथियों के प्रति आभार ज्ञापित किया।

दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी के समापन अवसर पर डॉ. विनोद कुमार द्वारा लिखित पुस्तक 'वैष्णव आगम में प्रतिमा विज्ञान' का विमोचन करते आदरणीय मंचासीन अतिथि

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

राष्ट्रीय संगोष्ठी का अग्रणी समाचार पत्रों द्वारा कवरेज

1904 में बैंक ऑफ इटली को आम लोगों के लिए खोला गया। हिन्दुस्तान • गोरखपुर • रविवार • 17 अक्टूबर 2021 • 04

एमपीपीजी कॉलेज में राष्ट्रीय संगोष्ठी से निकली बात, विद्यार्थियों को ऐतिहासिक घटनाक्रमों से अवगत कराने पर जोर

इतिहास को भारतीय परिप्रेक्ष्य में देखने की जरूरत

संगोष्ठी

गोरखपुर | प्रमुख संवाददाता

आजादी के बाद एक साजिश के तहत इतिहास लेखन में तमाम भारतीय स्वतंत्रता सेनानियों के योगदान को भुला दिया गया। इतिहास में इनके उचित सम्मान और स्थान को पुनर्स्थापित किए जाने की जरूरत है। असल में भारत के इतिहास को भारतीय परिप्रेक्ष्य में लिखने और देखे जाने की आवश्यकता है।

ये बातें अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना, नई दिल्ली के राष्ट्रीय संगठन सचिव डॉ. बालमुकुन्द पाण्डेय ने शनिवार को महाराणा प्रताप पीजी कॉलेज जंगल धूसड़ में 'भारत का स्वातंत्र्य समर : गोरखपुर परिक्षेत्र के विशेष संदर्भ में' विषय पर आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी के उद्घाटन सत्र में बतौर मुख्य अतिथि कहीं। उन्होंने कहा कि शिक्षण संस्थाओं को चाहिए कि वे गोरखपुर के विद्यार्थियों को इस अंचल के ऐतिहासिक घटनाक्रमों से परिचित जरूर कराएं। तभी इतिहास के पुनर्मूल्यांकन व पुनर्लेखन की आवश्यकता पूरी हो सकेगी। अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान के कार्यकारी अध्यक्ष प्रो. सदानन्द प्रसाद गुप्त ने कहा कि भारत को तोड़ने के लिए हमारे इतिहास और भाषा को तोड़ा गया क्योंकि यही वो दो माध्यम हैं जो किसी भी दोनों ही किसी देश को शक्तिशाली बनाने का आधार उपलब्ध कराते हैं।

संगोष्ठी का एमपीपीजी कॉलेज में राष्ट्रीय संगोष्ठी के दौरान मंच पर मौजूद अतिथिगण।

कार्यक्रम में बतौर सारस्वत अतिथि राज्य सूचना आयुक्त हर्षवर्धन शाही ने कहा कि भारतीय दार्शनिक परम्परा और ज्ञान ने देश-विदेश में अपनी छाप छोड़ी है। महात्मा बुद्ध, श्रीकृष्ण, पतंजलि, गुरु गोरखनाथ और आचार्य रजनीश उस परम्परा से आते हैं, जिससे भारतीयता को बल मिलता है। श्री शाही ने छात्रों से सवाल-जवाब के जरिए जीवंत संवाद किया और संस्मरणों के जरिए भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में पूर्वांचल की पत्रकारिता के योगदान को खासतौर पर रेखांकित किया। उन्होंने कहा कि ऐसी संगोष्ठियों का अर्थ तभी है जब वे छात्र-छात्राओं के लिए फलदायी हों। उन्होंने कहा कि कड़वा अनुभव है कि भारतीय शिक्षा प्रणाली में कार्यों कुछ अच्छा हुआ, किन्तु शिक्षा-तन्त्र जाता है और प्रश्न तथा इतना नीरस होता है कि वे केवल नम्बरों या श्रेणियों का हिस्सा बनकर रह जाता है। यही वजह है कि बहुत से विद्यार्थी ज्ञान अर्जित करने आते हैं, डिग्री लेकर जाते हैं, ज्ञान साथ में आता ही नहीं।

मुख्य वक्ता के रूप में डीडीयू के इतिहास विभाग के पूर्व अध्यक्ष प्रो. हिमांशु चतुर्वेदी ने कहा कि भारतीय इतिहास लेखन को भारतीयता से मुक्त रखा गया, इसलिए भारतीय इतिहास लेखन की दृष्टि ही ठीक नहीं रही। यदि स्वतंत्र भारत में गोरखपुर परिक्षेत्र के योगदान की बात की जाए तो चौरीचौरा, डोहरियाकला व बुढ़ियाबारी परिक्षेत्र के ही मामला बड़ा होता है।

90 या इससे अधिक अंक वाले अनारक्षित वर्ग के अभ्यर्थी ले सकेंगे एमएससी एजी में प्रवेश

दैनिक जागरण
गोरखपुर, 18 अक्टूबर 2021
www.jagran.com

इतिहास घटित होता है निर्देशित नहीं

जागरण संवाददाता, गोरखपुर : महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय वर्धा के कुलपति प्रो.रजनीश शुक्ल ने कहा है कि भारतीय इतिहास को व्यापक रूप में समझने के लिए हमें बर्मा, भूटान, नेपाल, तिब्बत, चीन आदि देशों के इतिहास को समझना होगा। वास्तव में इतिहास घटित होता है, निर्देशित नहीं। भारत का वर्तमान लिखित इतिहास औपनिवेशिक विचारधारा द्वारा निर्देशित है। इसे ठीक करने की जिम्मेदारी वर्तमान पीढ़ी की है।

प्रो.रजनीश शुक्ल को स्मृति चिह्न भेंट करते प्राचार्य डा.प्रदीप कुमार राव। • जागरण

प्रो.शुक्ल महाराणा प्रताप पीजी कालेज जंगल धूसड़ में 'भारत का स्वातंत्र्य समर : गोरखपुर परिक्षेत्र' विषय पर आयोजित दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी के अंतिम दिन बतौर मुख्य अतिथि अपने विचार व्यक्त कर रहे थे। अध्यक्षीय उद्बोधन में दीदउ गोरखपुर विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास विभाग के आचार्य प्रो. राजवंत राव ने कहा कि गोरखपुर परिक्षेत्र का स्वातंत्र्य समर भारत के किसी अन्य क्षेत्र के स्वतंत्रता संग्राम से किसी भी मामले में कम नहीं है। यहां की घटनाओं को इतिहासकारों ने इतिहास के पटल पर सही रूप में नहीं रखा। यही वजह है कि गोरखपुर की घटनाओं को भारतीय इतिहास में वह जगह नहीं मिल सकी, जो मिलनी चाहिए थी। इस गलती को सुधारने की जरूरत है। इतिहास को फिर से संकलित और अवलोकित करने की जरूरत है। बतौर मुख्य वक्ता गोरखपुर विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास विभाग के अध्यक्ष प्रो.दिग्विजय नाथ मौर्य ने कहा कि संगोष्ठी का मुख्य उद्देश्य इतिहास के अछूते पन्नों को तलाश कर उन्हें संजोना है। संगोष्ठी की अध्यक्षता डा.प्रवीण कुमार त्रिपाठी ने तथा आभार ज्ञापन संचालन डा.सर्वेश कुमार शुक्ल ने किया। संगोष्ठी के दौरान समूह चर्चा का भी आयोजन किया गया, जिसकी अध्यक्षता जयप्रकाश विश्वविद्यालय छपरा के इतिहास विभाग के आचार्य डा.राजेश नायक ने की। तकनीकी सत्र की अध्यक्षता प्रो.हरीश वर्मा ने की। व्याख्यान सत्र के अध्यक्ष कालेज प्राचार्य डा.प्रदीप कुमार राव रहे। संगोष्ठी अंतिम दिन 17 शोधार्थियों ने अपना शोधपत्र पढ़ा।

अमर उजाला | गोरखपुर | सोमवार, 18 अक्तूबर 2021 | 4

इतिहास को ठीक करने की जिम्मेदारी वर्तमान पीढ़ी की : प्रो. रजनीश शुक्ल

एमपी पीजी कालेज जंगल धूषण में आयोजित दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का हुआ समापन

अमर उजाला ब्यूरो

गोरखपुर। महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय वर्धा के कुलपति प्रो. रजनीश शुक्ल ने कहा कि भारतीय इतिहास को व्यापक रूप में समझने के लिए हमें बर्मा, भूटान, नेपाल, तिब्बत, चीन आदि देशों के इतिहास को समझना होगा। वास्तव में इतिहास घटित होता है, निर्देशित नहीं। भारत का वर्तमान लिखित इतिहास औपनिवेशिक विचारधारा द्वारा निर्देशित है। अब इसे ठीक करने की जिम्मेदारी वर्तमान पीढ़ी की है।

ये बातें प्रो. रजनीश ने महाराणा पीजी कालेज जंगल धूषण में कहीं। वे 'भारत का स्वातंत्र्य समर : गोरखपुर परिक्षेत्र' विषय पर आयोजित दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी के अंतिम दिन बतौर मुख्य अतिथि संबोधित कर रहे थे। अध्यक्षता करते हुए गोरखपुर विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास विभाग के पूर्व विभागाध्यक्ष प्रो. राजवंत राव ने कहा कि गोरखपुर परिक्षेत्र का स्वातंत्र्य समर भारत के किसी अन्य क्षेत्र के स्वतंत्रता संग्राम से किसी भी मामले में कम नहीं है। यहां की घटनाओं को इतिहासकारों ने इतिहास के पटल पर सही रूप में नहीं रखा। इस गलती को सुधारने की जरूरत है।

मुख्य वक्ता गोरखपुर विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास विभाग के अध्यक्ष प्रो. दिग्विजय नाथ मौर्य ने कहा कि संगोष्ठी का मुख्य उद्देश्य इतिहास के अछूते पन्नों को पन्नों की तलाश कर उन्हें सजोना है। संगोष्ठी की रूपरेखा डा. प्रवीण कुमार त्रिपाठी ने रखी।

संचालन डा. सर्वेश कुमार शुक्ल ने किया। संगोष्ठी के दौरान समूह चर्चा का भी आयोजन किया गया, जिसकी अध्यक्षता जयप्रकाश विश्वविद्यालय छपरा के इतिहास विभाग के आचार्य डा. राजेश नायक ने की। तकनीकी सत्र की अध्यक्षता प्रो. हरीश वर्मा ने की। व्याख्यान सत्र के अध्यक्ष कालेज प्राचार्य डॉ. प्रदीप कुमार राव रहे। संगोष्ठी अंतिम दिन 17 शोधार्थियों ने अपना शोधपत्र पढ़ा। इसके पूर्व अतिथियों ने डॉ. विनोद कुमार की पुस्तक का विमोचन भी किया।

एमपी पीजी कॉलेज जंगल धूषण में आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी के दूसरे दिन डॉ. विनोद कुमार की पुस्तक का विमोचन करते प्रो. रजनीश शुक्ला, प्रो. राजवंत राव, प्रो. दिग्विजय नाथ मौर्य, डॉ. प्रवीण त्रिपाठी व अन्य। अमर उजाला

हिन्दुस्तान, गोरखपुर • गुरुवार • 21 अक्तूबर 2021 • 04

छात्र संघ की बैठक में योजनाओं की समीक्षा

गोरखपुर। महाराणा प्रताप महाविद्यालय, जंगल धूसड़ में बुधवार को छात्र संघ कार्यकारिणी की बैठक हुई। बैठक में छात्र संघ के भविष्य की योजनाओं एवं वर्तमान परिस्थितियों की समीक्षा की गई। अध्यक्ष सूरज गुप्ता ने कहा कि कक्षाओं के संचालन और महाविद्यालय के प्रशासन एवं प्रबंधन में छात्र संघ की भूमिका महत्वपूर्ण है। बैठक में महाविद्यालय प्रशासन के विभिन्न उत्तरदायित्वों में विद्यार्थी सहभाग के उद्देश्य से 13 विभिन्न समितियों का गठन किया गया। इनमें अनुशासन समिति, क्रीड़ा [illegible] समिति, तकनीकी समिति, पुस्तकालय समिति, [illegible]ला समिति आदि में शिक्षकों के साथ विद्यार्थियों के उत्तरदायित्वों को भी सुनिश्चित किया गया।

uad Camera
alaxy M31

गोरखपुर, 17 अक्टूबर, 2021 दैनिक जागरण 17

भारतीयता से दूर रहा आजादी की लड़ाई का इतिहास : प्रो. हिमांशु

[illegible]

अमर उजाला

गोरखपुर | रविवार, 17 अक्टूबर 2021 8

भारतीयता से दूर रखा गया आजादी की लड़ाई का इतिहास : प्रो. हिमांशु

गोरखपुर। दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय में आचार्य प्रो. हिमांशु चतुर्वेदी ने कहा, स्वतंत्रता प्राप्ति और इसके बाद के भारतीय इतिहास लेखन को भारतीयता से दूर रखा गया। इसलिए भारतीय इतिहास लेखन की दृष्टि ही ठीक नहीं रही।

शनिवार को महाराणा प्रताप पीजी कॉलेज, जंगल धूसड़ में दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का शुभारंभ हुआ। राज्य सूचना आयुक्त हर्षवर्धन शाही ने कहा कि भारतीय दार्शनिक परंपरा व ज्ञान ने विदेश में भी अपनी छाप छोड़ी है। अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना, नई दिल्ली के राष्ट्रीय संगठन सचिव डॉ. बालमुकुंद पांडेय ने कहा कि भारत के इतिहास को भारतीय परिप्रेक्ष्य में लिखने व देखने की जरूरत है। अध्यक्षता हिंदी संस्थान के कार्यकारी अध्यक्ष प्रो. सदानंद गुप्त ने की। उद्घाटन सत्र के बाद संगोष्ठी के पहले और दूसरे तकनीकी सत्र में एक दर्जन से अधिक शोधपत्र प्रस्तुत किए गए। इन तकनीकी सत्रों में जयप्रकाश विश्वविद्यालय के छपरा के आचार्य प्रो. राजेश नायक, गणेश राय पीजी कॉलेज डोभी जौनपुर के सहायक आचार्य डॉ. प्रवीण त्रिपाठी, गोरखपुर विश्वविद्यालय के सह आचार्य डॉ. मनोज तिवारी, प्रो. कमलेश गौतम आदि ने भी विचार रखे। तकनीकी सत्र की अध्यक्षता प्रो. दिनेश सिंह ने की। ब्यूरो

संगोष्ठी

गोरखपुर | प्रमुख संवाददाता

आजादी के बाद एक साजिश के तहत इतिहास लेखन में लाखों भारतीय स्वतंत्रता सेनानियों के योगदान को भुला दिया गया। इतिहास में उनके उचित स्थान और सम्मान को पुनर्स्थापित किए जाने की जरूरत है। असल में भारत के इतिहास को भारतीय परिप्रेक्ष्य में लिखने और देखे जाने की आवश्यकता है।

ये बातें अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना, नई दिल्ली के राष्ट्रीय संगठन सचिव डॉ. बालमुकुन्द पाण्डेय ने शनिवार को महाराणा प्रताप पीजी कालेज जंगल धूसड़ में 'भारत का स्वातंत्र्य समर : गोरखपुर परिक्षेत्र के विशेष संदर्भ में' विषय पर आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी के उद्घाटन सत्र में बतौर मुख्य अतिथि कहीं। उन्होंने कहा कि शिक्षण संस्थाओं को चाहिए कि वे गोरखपुर के विद्यार्थियों को इस अंचल के ऐतिहासिक घटनास्थलों से परिचित ... पुनर्मूल्यांक... गति मिल... सम्बोधन मे... कार्यकारी... ने कहा कि... इतिहास औ...

शनिवार को एमपीपीजी कॉलेज में राष्ट्रीय संगोष्ठी के दौरान

पहले और दूसरे सत्र में पढ़े गए शोध पत्र

गोरखपुर। उद्घाटन सत्र के बाद संगोष्ठी के पहले और दूसरे तकनीकी सत्र में एक दर्जन से अधिक शोध पत्र प्रस्तुत किये गये। इन तकनीकी सत्रों में मुख्य वक्ता जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा के आचार्य डॉ. राजेश नायक रहे। तकनीकी सत्र की अध्यक्षता गोरखपुर विवि के प्राचीन इतिहास विभाग के पूर्व अध्यक्ष प्रो. दिनेश कुमार सिंह ने की। श्री गणेश राय पी.जी. कॉलेज डोभी, जौनपुर के इतिहास विभाग के सहायक आचार्य डॉ. प्रवीण कुमार त्रिपाठी, तकनीकी सत्र के सह-अध्यक्ष के रूप में गोरखपुर विवि के इतिहास विभाग के सहयुक्त आचार्य डॉ. मनोज कुमार तिवारी और गोरखपुर विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग के आचार्य प्रो. कमलेश कुमार गौतम ने भी विचार रखा। दोनों तकनीकी सत्रों में 14 शोध पत्र प्रस्तुत किए गए। संगोष्ठी के उद्घाटन और तकनीकी सत्रों का संचालन महाविद्यालय के प्राचीन इतिहास, पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग के प्रभारी डॉ. सुबोध कुमार मिश्र ने किया।

आज होगा दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का समापन

दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का समापन 17 अक्टूबर को होगा। इस अवसर पर मुख्य वक्ता के रूप में महात्मा गांधी अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा के कुलपति प्रो. रजनीश शुक्ल, गोरखपुर विवि के प्राचीन इतिहास, पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग के आचार्य प्रो. राजवंत राव, प्रो. दिग्विजयनाथ मौर्य, सिद्धार्थ विश्वविद्यालय कपिलवस्तु के हिन्दी विभाग के आचार्य प्रो. हरीश शर्मा सहित कई विद्वान मौजूद रहेंगे।

महाराणा प्रताप महाविद्यालय, जंगल धूसड़, गोरखपुर

GUIDELINES FOR CONTRIBUTORS

1. Contribution should be submitted in duplicate, the first two impressions of the typescript. It should be typed in font Walkman-Chanakya (Hindi) and in Times New Roman (English) on a quarter or foolscap sized paper, in double-space and with at least one and a half inch margin on the right. Two copies of a computer printout along with a CD are preferred. They should subscribe strictly to the Journal format and style requirements.

2. The cover page of the typescript should contain: (i) title of the article, (ii) name (s) of author(s), (iii) professional affiliation, (iv) an abstract of the paper in less than 150 words, and (v) acknowledgements, if any. The first page of the article must also provide the title, but not the rest of the item of cover page.

3. Though there is no standard length for articles, a limit of 5000 words including tables, appendices, graphs, etc., would be appreciated.

4. Tables should preferably be of such size that they can be composed within one page area of the Journal containing about 45 lines, each of about 85 characters (letter/digits). The source(s) should be given below each table containing data from secondary source(s) or results from previous studies.

5. Figures and charts, if any, should be professionally drawn using such materials (like black ink on transparent papers) which allow reproduction by photographic process. Considering the prohibitive costs of such process, figures and charts should be used only when they are most essential.

6. Indication of notes should be serially numbered in the text of the articles with a raised numeral and the corresponding notes should be given at the end of the paper.

7. A reference list should appear after the list of notes. It should contain all the articles, books, reports, etc., referred in the text and they should be arranged alphabetically by the names of authors or institutions associated with those works.

   (a) Reference to books should present the following details in the same order: author's surname and name (or initials), year of publication (within brackets), title of the book (underlined/italic), place of publication. For example:

   Chakrabarti, D.K. (1997), *Colonial Indology: Socio-politics of the Ancient Indian Past*, pp. 224-25, New Delhi

   (b) Reference to institutional publications where no specific author(s) is (are) mentioned should present the following details in the same order: institution's name, year of publication (within brackets), title of the publication (underlined/italic), place of publication. For example:

   Ministry of Human Affairs (2001), *Primary Census Abstract*, New Delhi, pp. xxxviii.

   (c) Reference to articles in periodicals should present the following details in the same on: the author's surname and name (or initials), year of publication (in brackets), title of the article (in double quotation marks), title of periodical (underlined/italic), number of the volume and issue (both using Arabic numerals), and page numbers. For example:

   Siddiqui, F.A. and Naseer, Y. (2004), "Educational Development and Structure of Works participation in western Uttar Pradesh", *Population Geography*, Vol. 26, Nos. 1 & 2, pp. 25-26.

   (d) Reference in the text or in the notes should simply give the name of the author or institution and the year of publication, the latter within brackets: e.g. Roy (1982). Page numbers too may be given wherever necessary, e.g. (Roy 1982: pp. 8-15).

मानविकी

मानविकी एवं समाज-विज्ञान की अन्तः अनुशासनात्मक शोध पत्रिका

In the Pious Memory of

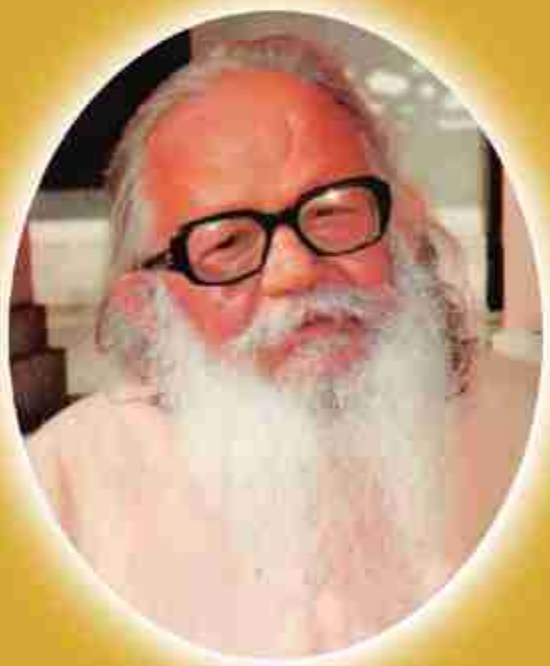

ब्रह्मलीन पूज्य महंत अवेद्यनाथ जी महाराज

(18.5.1919 - 12.9.2014)

कल्याण सभी जन का मन से
है किया कि सभी अभय होवें,
होकर अवेद्य भी वेद्य धरा पर
संत प्रवर की जय होवे।

ISSN 0976-0830

9 770976 083000

Published by Maharana Pratap Mahavidyalaya, Jungle Dhusan, Gorakhpur (U.P.)
E-mail : manvikijournal@gmail.com, mpmpg5@gmail.com
Published at Moti Paper Convertors, Betia Raj House, Betiahata, Gorakhpur